सहजानंद शास्त्रमाला

आप्त मीमांसा प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

आप्तमीमांसा प्रवचन

http://sahjanandvarnishastra.org/

[भाग ५, ६]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द जी' महाराज

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

वैजनाथ जैन, सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस सहारनपुर

१९७०] सर्वाधिकार सुरक्षित [न्योछावर ५ रु.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा प्रवचन

[षष्ठ भाग]

●

(प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी)

●

आर्हंत शासनकी जिज्ञासा—भगवान अरहंत आप्त है, क्योंकि उनसे बाह्य पुरुषोंके वचनोंमें परस्पर विरोध है। अतएव वे आप्त नहीं हैं और अर्हंत शासन में जो वचन हैं उनमें विरोध नहीं है। इस बातका वर्णन अभी इस प्रकरणमें किया गया था कि जो आर्हंत शासनसे विपरीत हैं, एकान्तवादी हैं उनके मंतव्यमें विरोध आता है, इस प्रकरणका भाव और अभाव एकान्तका विषय लेकर निरूपण चला था। इस समय कोई पूछता है अथवा मानो भगवान आप्तने ही पूछ लिया है कि जो मेरा शासन प्रसिद्ध प्रमाणसे नहीं बाधा जाता है वह मेरा शासन है क्या? इसके उत्तरमें श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं:

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥

आर्हंत शासनका प्रारम्भिक दिग्दर्शन—हे प्रभो! तुम्हारे सिद्धान्तमें वस्तु कथंचित सत् ही है और वही वस्तु कथंचित् असत् ही है तथा वही कथंचित् उभयरूप है एवं वही वस्तु कथंचित् अवाच्य है। ये सब परिज्ञान नयोंके योगसे होते हैं। यदि इन धर्मोंको, किसी को सर्वथा मान लिया जाय तो वह बाधित होता है। जैसे पदार्थ सर्वथा सत् ही है अथवा सर्वथा असत् ही है अथवा निरपेक्ष रूपसे सत् और असत् दोनों रूप ही है। अथवा पदार्थ सर्वथा अवक्तव्य ही है, ऐसा कथन बाधित हो जाता है। इस कारिकामें चार भंगोंकी बात कही गई है। कथंचित् सत्, कथंचित् असत्, कथंचित् उभय और कथंचित् अवक्तव्य। शेष ३ भंगोंकी सूचना इस कारिकामें आया हुआ 'च' शब्द दे रहा है। च शब्दसे यह संग्रह करना कि पदार्थ कथंचित सत् अवाच्य ही है कथंचित् असत् अवाच्य ही है, कथंचित् उभय अवाच्य ही है ऐसा प्रभो आपका शासन है। इस कारिकामें सत्त्व धर्मकी अपेक्षा लेकर सप्तभंगी का वर्णन किया है सप्तभंगीका स्वरूप है—प्रश्नके वशसे एक वस्तुमें बिना विरोधके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करना सप्तभंगी कहलाता है। इस कारिकामें नय योग से इन भंगोंकी सिद्धि की गई है। तो "नय योगसे" इस वचन द्वारा यह सिद्ध होता है कि नय वाक्य ७ ही हुआ करते हैं। उनसे अतिरिक्त ८ वाँ या अन्य प्रकार किसी प्रकार भी भंग सम्भव नहीं है।

विधिकल्पनाको ही सत्य स्वरूप मानकर एक ही भङ्ग मानने वालों के प्रति प्रतिषेधकल्पनाकी भी असत्य स्वरूपताकी प्रमाणसिद्धता— शंकाकार कहता है कि सत्य तो एक विधिकल्पना ही है। जो आप संयोगी भंग अनेक बता रहे हैं उन संयोगसे कुछका तो उन हीमें अन्तर्भाव हो जाता है और कुछ पुनरुक्त हैं जो ऐसे कुछ भंग बताये हैं—जैसे पहिला दूसरा और चौथा भंग इनमें परस्पर दो दो और तीनके संयोगसे उत्पन्न होने वाले भंग हैं। उनका कुछ हीमें अन्तर्भाव होता है और फिर अन्य प्रकारके जो भंग किए गये जैसे तीसरा ५ वाँ छठवाँ ७ वाँ, इन भंगोंका परस्पर दो दो या तीन चारके संयोगसे जो कुछ भी भंग बनाया जाय वह पुनरुक्त हो जाता है। अतः अतिरिक्त भंगोंकी कल्पना ही सत्य स्वरूप होती है और उस विधि कल्पनाके द्वारा एक ही वाक्य बनेगा इस प्रकार यहाँ शंकाकार कह रहा है। शंकाकारके मतमें यह बात आयी कि एक ही धर्म बताया जावे कि पदार्थ सत् रूप है। बस मान लेना चाहिए कि पदार्थ सत् रूप ही है। अब उसमें असत्‌की कल्पना करना तो प्रतिषेध रूप होनेसे असत्य है और संयोग जन्य भंग जो बताया जाता है तो वह मूक विधिमें ही शामिल हो जाता है। यों तो फिर उन भंगोंके भंग से भी अनेक भंग बनाते जाइये। कोई व्यवस्था नहीं बनती इस कारणसे एक ही वाक्य होना चाहिए, सात वाक्य सम्भव नहीं हैं, तब सप्तभङ्गीका स्वरूप नहीं बनता। शंकाकारकी उक्त शंकाका समाधान करते हुए पहिले यह बतला रहे हैं कि विधि कल्पना ही सत्य स्वरूप है, ऐसा एकान्त समझ लेना ही गलत है क्योंकि प्रतिषेध कल्पनामें भी सत्य स्वरूपकी व्यवस्था है। किसी भी वस्तुको सतरूप सिद्ध करनेके लिये यह कहना ही पड़ेगा कि यह वस्तु अन्य पदार्थरूप नहीं है। तो जैसे घट घटरूप है ऐसे ही विधिकी बात सत्य है। इसी प्रकार यह घट इस घटके सिवाय अन्य पदार्थ रूप नहीं है, यह बात भी सत्य माननी होगी। तो जैसे विधिकल्पना सत्यस्वरूप है उसी प्रकार प्रतिषेध कल्पना भी सत्य स्वरूप है। तब दो भङ्ग तो मानने ही पड़ेंगे कि पदार्थ स्वरूपसे सत् है तो पररूपसे असत् है। अब जहां ये दो भङ्ग मान लिए गए तो चूँकि इन दोनों धर्मोंका एक साथ कथन नहीं हो सकता इस कारण अवक्तव्य है। फिर इन्हीं धर्मोंकी क्रमसे समझ बनानेपर शेष भङ्ग और बनते हैं। तो यह कल्पना करना कि केवल एक ही विधि वाक्य हो सकेगा, अन्य भंग नहीं, यह बात बिना विचारे ही कही गई है।

प्रतिषेधकल्पनाको ही सत्यस्वरूप मानकर केवल प्रतिषेध कल्पनावाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

एक भङ्गको माननेवालोंके प्रति विधिकल्पनाकी सत्यस्वरूपताका निर्देश— यदि शंकाकार यह सोचे कि विधि एकान्तका तो निराकरण किया गया है और आगे भी विधि एकान्तका निराकरण किया जायगा अर्थात् पदार्थ सत्‌रूप ही है सर्वथा सत् है इसका निराकरण किया गया, इस कारण प्रतिषेध कल्पना ही सत्यस्वरूप है फिर ऐसा मान लीजिये कि अन्यापोह ही वस्तुस्वरूप है। इसके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह विचार भी समीचीन नही है। इसका कारण यह है कि जैसे प्रतिषेध कल्पनामें सत्यस्वरूपता है उसी प्रकार विधिकल्पनामें भी सत्यस्वरूपता है। इसी कारण जैसे एकान्तका निराकरण किया गया है इसी प्रकार प्रतिषेध कल्पनाका भी तो एकान्तरूपमें निराकरण किया गया है। यों अभाव एकान्त भी समीचीन नहीं है।

निरपेक्ष विधिकल्पना व प्रतिषेधकल्पना माननेवालोंके प्रति एक सत् में ही उभयरूप तृतीय भङ्गकी सिद्धि— अब शंकाकार कहता है कि विधिकल्पना की अपेक्षासे और प्रतिषेध कल्पनाकी अपेक्षासे वाक्य किसी एक रूप ही है यह नहीं कहा जा सकता। सद्भूत अर्थके प्रतिपादन करनेके लिये विधि वाक्य है और असत् शब्दके कथन करनेके लिये प्रतिषेध वाक्य है, इस प्रकार दो ही निरपेक्ष वाक्य बना लीजिए क्योंकि कहा भी है यह कि तत्त्व सद्वर्ग और असद्वर्ग स्वरूप है याने कुछ तो हैं सद्रूप तत्त्व, जैसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव है असद्रूप। अत: असदरूप और सद्रूप ये दोनों ही प्रकारके तत्त्व हैं। तो इस कारण दो ही वाक्य बना लीजिए। एक वाक्यके एकान्तको यदि पसंद नहीं करते तब दो वाक्य समझ लीजिये। सद्रूप और असद्रूपको छोड़कर अन्य कोई प्रमेय होता ही नही है। अत: दो भंग तो युक्त हैं पर इनके आगे भंग नहीं बन सकते। ऐसा किन्हीं दार्शनिकोंका मंतव्य है। अब उक्त मतव्यका निराकरण कर रहे हैं। देखिये ! वस्तु कोई सत् स्वरूप है और कोई असत्‌स्वरूप है। इस तरह अलग अलग विभाग नही है – किन्तु प्रत्येक वस्तु तदसदात्मक है। सत् स्वरूप और असत्‌स्वरूप प्रत्येक पदार्थ हैं। अब उनके लिये धर्मको प्रधानरूपसे कहा जायगा तो वहाँ उस धर्मके कथनका भंग बनता है। जहाँ सत् स्वरूपको प्रधानरूपसे कहा जायगा वहाँ उस सत् स्वरूपका वाक्य बनता है। तथा जहाँ असत्त्वस्वरूपको प्रधानरूपसे कहा जायगा वहाँ उस असत्त्वरूपका वाक्य बनता है। तो ये जो दो वाक्य हैं वे प्रधानभूत एक एक धर्मरूप हैं, लेकिन उस सद सदात्मक वस्तुको एक साथ नहीं कहा जा सकता है उन दोनो धर्मोंको क्रमसे कहा जा सकता है तब वहाँ फिर यह एकान्त न रहेगा कि उसे सत्त्व वचनसे ही कहा जाय अथवा असत्त्व वचनसे ही कहा जाय। तो क्रमसे विवक्षित इस सत्त्व और असत्त्वको प्रथम और द्वितीय भंगसे नहीं बताया जा सकता। इस कारण उभय को विषय करने वाला तीसरा वाक्य भी मानना ही पड़ेगा। तब तीन भंगोंकी सिद्धि यहाँ तक हो ही गई। सो एक विधि कल्पनाका एकान्त करना युक्त न ठहरा, और प्रतिषेध कल्पनाका एकान्त करना युक्त न ठहरा, तब दो भंग बने और उन दोनों धर्मों

http://sahjanandvarnishastra.org/

को जिनको कि क्रमसे कहा जा सकेगा उनको कहनेका साधन बनना न केवल विधि कल्पनाका भंग है और न केवल प्रतिषेध कल्पनाका भंग है। तब तृतीय भंग कहना ही पड़ेगा कि क्रमसे विवक्षित होनेपर वस्तु उभयरूप है।

स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्तिकी भांति शेष चार भंगोंकी भी प्रतीतिसिद्धता—अब यहाँ कोई यह हठ करले कि चलो तीन भंग ही मान लो, वस्तु कथंचित् सत् है, कथंचित् असत् है और कथंचित् उभयरूप है, इसके आगेके भंगों की कोई आवश्यकता नहीं। यह विचार भी अयुक्त है, क्योंकि उन दोनों धर्मोंको एक साथ ही कह सके, ऐसा कोई वचन सम्भव नहीं है। तब वह अवक्तव्यपनेका विषय बन गया। तब मानना होगा कि वस्तु कथंचित् अवक्तव्य ही है। अब यदि कोई यहां यह हठ करने लगे कि चलो चार वाक्य ही मान लो जिनका कि इस कारिकामें स्पष्ट वर्णन भी है, शेष तीन भंगोंकी क्या आवश्यकता है ? यह मतव्य भी समीचीन नहीं है, क्योंकि सत् अवक्तव्य, असत् अवक्तव्य और उभय अवक्तव्यको विषय करने वाले अन्य तीन वाक्य भी आवश्यक हो जाते हैं. यों सप्तभंगीकी सिद्धि होती है।

अपेक्षाविवरण सहित सप्तभङ्गीका निर्देश—इन सात रूपोंमें पहिली बात विधिकल्पना, दूसरी बात प्रतिषेध कल्पना, तीसरी बात क्रमसे विधि और प्रतिषेध दोनोंकी कल्पना, चौथी बात एक साथ विधि और प्रतिषेधकी कल्पना पाँचवीं बात विधिकल्पना और साथ साथ विधिप्रतिषेध कल्पना, छठा भंग बनता है प्रतिषेधकल्पना और उसके साथ-साथ विधि प्रतिषेध कल्पना और सातवें भंगमें क्रमसे और एक साथ विधिप्रतिषेध कल्पना बनती है तो चूँकि कल्पनायें सात प्रकारकी हैं सो नय योग भी सात प्रकारसे हैं इस कारणसे सात वाक्य अथवा सप्तभंगीका होना युक्तिसंगत ही है।

सप्तभंगीके लक्षणमें प्रयुक्त अविरोधेन तथा एकवस्तुनि इन दो पदों की सार्थकताका कथन—उक्त प्रकारसे सप्तभंगीकी सिद्धि हुई, लेकिन कोई प्रत्यक्ष आदिकसे विरुद्ध एक सत्में विधि प्रतिषेधकी कल्पना करने लगे तो वहाँ सप्तभंगी न बन सकेगी क्योंकि अविरुद्ध रूपसे ही विधि प्रतिषेधको कल्पनाको संगत बताया गया है। अथवा कोई ऐसा सोचने लगे कि नाना पदार्थोंके आश्रयसे विधि और प्रतिषेधकी कल्पना की जाय वह सप्तभंगी हो जायगी, वहाँ सर्वथा सत् है, सर्वथा असत् है, सर्वथा उभय है, यों ७ भंग बना लिए जायेंगे। सो यह भी युक्त नहीं है। इसका कारण यह है कि एक ही वस्तुमें ७ भंगोंकी कल्पना है। तब यह बात भली प्रकार सिद्ध हुई कि एक ही वस्तुमें अविरुद्ध रूपसे प्रश्नके वशसे विधि और प्रतिषेधकी कल्पना करना सप्तभंगी है।

एक ही वस्तुमें अनन्त धर्मोंकी अपेक्षा अनन्त सप्तभंगियोंके होनेकी भी अभीष्टताका प्रतिपादन—अब यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि इस तरह तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

एक ही वस्तुमें अनन्त धर्मोंका सद्भाव है तब अनन्त भंगी बन जायगी। जैसे एक जीव पदार्थमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक अनन्त धर्म हैं और उनमें प्रत्येक की विधि और प्रतिषेधकी बात लगाई जा सकती है तब तो एक पदार्थमें अनन्तभङ्गी बन जायगी एक वस्तुमें सप्तभंगी न रही। इसके समाधानमें कहते हैं कि अनन्त धर्मों को निरखकर अनन्त सप्तभंगियाँ बना लेना भी इष्ट है। बन गई अनन्त सप्तभंगी ही बनी। यों अनन्त सप्तभंगी बन जायें, इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है, किन्तु जिस किसी भी पदार्थका विचार चल रहा हो उसके सम्बन्धमें ७ ही भङ्ग हो सकते हैं, मूल बात यह तब भी निर्बाध कहा जा सकता है। इसमें बाधा नहीं आ सकती। किसी भी पदार्थमें धर्म अनन्त होते हैं। उदाहरणमें जीव वस्तुको ही ले लो। जीव पदार्थमें एकत्व, सत्व, नित्यत्व ज्ञान, दर्शन, आदिक अनेक धर्म हैं। और जितने धर्म हैं वे सब सप्रतिपक्ष हैं याने उनका सत्व स्वरूपसे हैं तब पररूपसे असत्व है। तो यों विधिरूप और निषेधरूपसे अनन्त धर्म सद्भावकी कल्पना बनती है। तो वहाँ वह अनन्त भङ्गी न कहलायेगी। पदार्थके उन अनन्त धर्मोंमेंसे किसी भी एक धर्मके सम्बन्धमें ७–७ भङ्ग होते हैं। तो यों सप्तभंगी अनन्त धर्मोंके बन जाते हैं। तो अनन्त सप्तभंगियाँ इष्ट ही हैं। जैसे एकत्व धर्मके सम्बन्धमें जब भङ्ग लगायेंगे तो उसका प्रतिपक्ष है अनेकता और क्रम विवक्षित होनेपर, अथ एक साथ विवक्षित होने पर अवक्तव्य फिर इसके अन्य संयोगी भङ्ग। यों सप्तभङ्ग हो गए।

प्रत्येक वस्तुधर्मके प्रसङ्गमें सात ही भङ्ग हो सकनेके कारणपर प्रकाश सभी धर्मोंमें सप्तभंगकी उत्पत्ति होती है क्योंकि जो समझने वाले अथवा प्रतिपाद्य जन हैं उनमें प्रश्न सात प्रकारसे ही हो सकते हैं। प्रश्नके ही वशसे सप्तभंगीका नियम बनता है। अब यहाँ कोई यह जानकारी चाहे कि सात प्रकारके ही वस्तु धर्मके सम्बन्धमें प्रश्न क्यों होते हैं? तो उत्तर उनका यह है कि किसी भी प्रतिपाद्य पुरुषकी जिज्ञासायें सात प्रकारसे ही घट सकती हैं और वे सातों जिज्ञासायें इस कारण हुआ करती हैं कि वस्तु धर्मके सम्बन्धमें ७ प्रकारसे ही संशयकी उत्पत्ति बनती है। और ७ प्रकारसे ही संशयकी उत्पत्ति क्यों बनती है? इसका उत्तर यह है कि विषयभूत वस्तुके धर्म ७ प्रकारसे ही बनते हैं।

प्रथम व द्वितीय भङ्ग माननेकी अनिवार्यतापर प्रकाश जैसे सर्वप्रथम यह जिज्ञासा हुई कि पदार्थ क्या सत् है? क्या वहां सत्व वस्तुधर्म है? तो इसके समाधानमें उत्तर आता है कि हाँ वस्तु सत् है अपने स्वरूपकी दृष्टिसे। यदि सत्व वस्तु धर्म न रहे तो इसके मायने यह है कि सत्व तो रहा नहीं। तब वस्तुमें वस्तुपना ही न रहेगा, पदार्थ ही न रहेगा कुछ। जैसे कि खर विषाण, आकाश फूल आदिक ये कोई वस्तु नहीं हैं, क्योंकि यहाँ सत्व ही कुछ नहीं है। तो जब कोई वस्तु अपने स्वरूपसे सत् है यह न माना जाय तो वह पदार्थ ही न ठहरेगा। इस कारण प्रथम

http://sahjanandvarnishastra.org/

भंग मानना आवश्यक है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है। इसी प्रकार पदार्थमें कथंचित् असत्त्व है क्योंकि जैसे वह अपने स्वरूपसे सत् है वैसे वह पररूपसे सत् नहीं है। यदि स्वरूपादिकसे जैसे सत् है उस तरह पररूपादिकसे भी सत् मान लिया जाय, पररूपकी अपेक्षासे वस्तुमें असत्त्व न माना जाय तो अब वस्तुका प्रतिनियत स्वरूप तो रहा नहीं, लो पदार्थ अपने स्वरूपसे भी है और परस्वरूपसे भी है। तो जब स्वपररूप दोनोंसे उसमें सत्त्व आ गया तो यह अमुक पदार्थ है अन्य नहीं है ऐसा प्रतिनियत स्वरूप नहीं घटित हो सकता। जब प्रतिनियत स्वरूप न रहा तो वस्तुमें प्रतिनियतता न रही कि यह घड़ा घड़ा ही है अन्य कुछ नहीं। तो मानना होगा कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है। इसमें प्रथम भंग न माना तो पदार्थ ही न रहा, द्वितीय भंग नहीं माना तो पदार्थका प्रतिनियम ही न रहा कि यह यह ही है अन्य नहीं है, इस कारण स्यात् अस्तित्व और स्यात् नास्तित्व ये दो भंग मानना आवश्यक है।

शेष तृतीयादिक सवभङ्गोंकी प्रसिद्धता—अब इसके बादके भङ्गोंकी बात सुनो! जब सत्त्व वस्तु धर्म सिद्ध हो गया और असत्त्व भी धर्म हो गया तो अब क्रम से जब विवक्षा की जायगी इन दोनों धर्मोंकी, स्यात् अस्ति और स्यात् नास्ति जैसे कि दोनों भङ्गोंकी सिद्धि की गई है उनको जब क्रमसे विवक्षित किया जाता है तो यह भी वस्तुमें धर्म बन गया कि यह वस्तु उभयरूप है. सत्रूप है असत् रूप है। अपने स्वरूप से सत् स्वरूप है, पर स्वरूपसे असत् स्वरूप है यदि यह उभय धर्म न माना जाय जो क्रमसे पदार्थके सम्बन्धमें सत्त्व और असत्त्वका व्यवहार किया जाता है वह शब्द व्यवहार फिर न हो सकेगा और वह शब्द व्यवहार बन ही रहा है। इसी प्रकार जब इन दोनों भङ्गोंका अथवा वस्तुके सत्त्व और असत्त्व इन दोनों धर्मोंको एक साथ विवक्षित किया जाता है तो वहाँ अवक्तव्यपना प्रसिद्ध होता है। यों अवक्तव्यत्व वस्तुका धर्म बना। यदि इस भङ्गको अंगीकार न किया जाय तो अवक्तव्यपनेका शब्द व्यवहार होना ही न चाहिए किन्तु होता है। तो यह अवक्तव्यपना भी वस्तुका धर्म है। इसी प्रकार शेष तीन भङ्ग भी प्रमाण प्रसिद्ध है। यदि वे भङ्ग न होते तो उस प्रकारका शब्द व्यवहार न बन सकता था। किन्तु व्यवहार होता है तो यह व्यवहार विषय रहित तो नहीं है। जिस विषयको लेकर व्यवहार चलता है वह विषय है ही।

सविषय व्यवहारसे प्रसिद्ध सप्तभङ्गीकी पद्धतिसे प्रयुक्त आर्हत शासन की निर्बाधता—सप्त भङ्गोंमें जो व्यवहार चलता है उससे प्रसिद्ध होता है कि उन भङ्गोंका विषयभूत धर्म है। इस कारणसे ७ भङ्गोंमेंसे किसी भङ्गका लोप नहीं किया जा सकता। यह व्यवहार निर्विषय नहीं है क्योंकि इस व्यवहारमें, भी वस्तुकी जानकारी, प्रवृत्ति, वस्तुकी प्राप्ति और वस्तुका निश्चय समझा जाता है। इसी प्रकार रूपादिक व्यवहार भी इसी आधारपर चलते हैं। यदि रूपादिक व्यवहारोंको भी निर्विषय कह दिया जाय, रूपादिकके व्यवहार होते हैं मगर उनका विषय कुछ नहीं है ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मान लिया जाय तो समस्त प्रत्यक्षादिक व्यवहार नष्ट हो जायेंगे, फिर किसी भी पुरुष के इष्ट तत्त्वकी व्यवस्था न बन सकेगी, इससे मानना होगा कि वस्तुके धर्म ७ प्रकारके हैं तभी वस्तुमें किसी भी जानकारीके उत्सुक पुरुषके ७ प्रकारके ही संशय हो सकते हैं और ७ प्रकारके संशयकी सम्भावना होनेसे जिज्ञासा भी ७ प्रकारकी होती है और ७ प्रकारकी जिज्ञासा होनेसे प्रश्न भी ७ प्रकारके ही हो सकते हैं। तो ७ प्रकारके प्रश्नों के समाधानमें यह सप्तभङ्गी पद्धति बनी है। तो यों सप्तभङ्गीकी पद्धतिसे जो वस्तु स्वरूपकी चर्चा आती है वह अरहंत देवके शासनकी चर्चा है। यहाँ किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न नहीं होती अतएव प्रभुका शासन किसी भी प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधित नहीं होता।

विवक्षित स्वरूपसे एक वस्तुमें दो सत्त्वोंकी असंभवता होनेसे प्रथम व तृतीय भङ्गके संयोगवाले भङ्गकी अनुपपत्ति—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जैसे निरूपित सप्तभङ्गीमें पहिले और दूसरे धर्म बताये हैं कि पदार्थ स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है और इसीके आधारपर आगे संयोगी भङ्ग बनाये हैं, जैसे पदार्थ सत् असत् रूप है यह तृतीय भङ्ग बनाया फिर एक साथ निरूपित न हो सकने के कारण अवक्तव्य धर्म बताया है तो यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि जैसे पहिले और दूसरे भङ्गको मिलाकर तृतीय भङ्ग बनाया गया है तो ऐसे ही प्रथम और तृतीय इन भङ्गोंका संयोगी भङ्ग क्यों नहीं बना लिया जाता? जैसे प्रथम भङ्ग है स्यात् अस्ति नास्ति तो संयोगी भङ्गोंमें ऐसा भङ्ग क्यों न बन जायगा कि स्याद अस्ति स्यात् नास्ति। प्रथम भङ्ग है अस्ति और तृतीय है अस्ति नास्ति, इन दोनों भङ्गोंका संयोग करके यह भङ्ग बना लिया जायगा। समाधान इसका यह है कि एक वस्तुमें दो सत्त्व नहीं रहा करते। स्याद अस्ति, स्याद अस्ति नास्ति, इस प्रकारके धर्ममें दो सत्त्व आ पड़ते हैं एक तो अस्ति ही कहा गया दूसरा तृतीय धर्ममें भी अस्ति कहा है। तो एक पदार्थमें दो सत्त्व सम्भव नहीं हैं, क्योंकि विवक्षित स्वरूपसे जो सत्त्व है वह वही है अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे सत्त्व बताना यह प्रथम भङ्गमें कहा है। अब तृतीय भङ्गमें जो अस्ति नास्ति है वह क्रमसे अर्पित स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अस्ति और पर द्रव्य क्षेत्र काल भावसे नास्ति तो यहाँ भी अस्ति कहा है। अब इनका संयोग करनेपर अस्ति दो बार पड़ा लेकिन एक वस्तुमें दो सत्त्वका क्या अर्थ? अतः प्रथम और तृतीय धर्मको मिलाकर भङ्ग नहीं बताया गया।

एक वस्तुमें अनेक गुणोंकी अपेक्षासे अनेकरूप सत्त्वकी कल्पना होने पर भी विवक्षित धर्मकी अपेक्षामें दो सत्त्वोंकी असंभवता—यदि ऐसा सोचा जाय कि विवक्षित स्वरूप सत्त्वसे भिन्न अन्य स्वरूपसे सत्त्व भी तो कोई दूसरा सम्भव है। जैसे नित्यत्वकी दृष्टिमें जो माना उसके अतिरिक्त एकत्वकी दृष्टिमें जो समझा जाय वह भी तो है। या जीवमें अनन्त धर्म हैं। ज्ञानस्वरूपसे असत्त्व है, लेकिन ज्ञान-

स्वरूपसे सत्त्व है उस कालमें दर्शन चारित्र आदिक स्वरूपसे भी तो सत्त्व है। तो अन्यस्वरूपसे भी दूसरा सत्त्व सम्भव है। फिर कैसे कहा गया कि एक वस्तुमें दो सत्त्व सम्भव नहीं होते ? उसके समाधानमें यह समझना चाहिए कि दूसरा सत्त्व सम्भव है। पर पर्यायदृष्टिसे अथवा विशेष दृष्टिसे अथवा विशेषदृष्टिसे उसका जब वर्णन करते हैं तो उसका प्रतिपक्षभूत असत्त्व भी आ जाता है। तो अब यहाँ दूसरी सप्तभंगी सिद्ध हो गयी। इस कारण यह उलहना नहीं दी जा सकती कि वस्तुमें जो एक विवक्षित सत्त्व कहा गया है उसके अतिरिक्त अन्य गुणोंकी अपेक्षासे सत्त्व मानने की बात तो सही है किन्तु जहाँ अन्य गुणकी अपेक्षासे सत्त्व माना वहाँ उस हीकी सप्तभंगी बन जाती है। अतः यह निश्चित हो गया कि जिस धर्मको लेकर सप्तभंगी कहा जा रहा है। अस्तित्व धर्म बताया जा रहा है उस प्रसंगका अस्तित्व दो बार भङ्गमें न आना चाहिए इनमें दृष्टिभेदके अन्तरसे तो दुबारा धर्मको कहा जा सकता मगर उसी दृष्टिको लेकर अन्य भंगमें मिलाकर दो सत्व नहीं बताये जा सकते और इसी तरह दो असत्व भी नहीं बताये जा सकते।

एक वस्तुमें एक अपेक्षासे दो असत्त्वोंकी असभवता होनेसे द्वितीय तृतीयके संयोगके भंगकी अनुपपत्ति—कोई ऐसा सोचे कि पहिले और तीसरे भंग मिलकर भंग नहीं बनते तो न बनें दूसरे और तीसरेको मिलाकर बना लिए जायेंगे। दूसरा भंग है स्याद् नास्ति और तीसरा भंग है स्याद अस्ति नास्ति। तो इस नास्तिको, द्वितीय भंगका अस्ति नास्तिके साथ याने तृतीय भंगके साथ संयोग कर दिया जायगा। तो यह आशंका भी समीचीन नहीं है। कारण—जैसे कि एक वस्तुमें दो सत्त्व सम्भव नहीं है इसी प्रकार एक वस्तुमें दो असत्त्व भी सम्भव नहीं हैं।

शंकासमाधानपूर्वक अन्तिम सप्तभंगीके अन्तिम सप्तभंगीके अन्तिम तीन भङ्गोंकी उपपत्तिका प्रतिपादन—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि फिर तो प्रथम और चतुर्थ भङ्गका द्वितीय और चतुर्थ धर्मका तथा तृतीय और चतुर्थ धर्म का संयोग मिलाकर जो तीन धर्म कहे वे भी न कहे जा सकेंगे। जैसे पहिले और तीसरे धर्मका संयोग नहीं बना दूसरे और तीसरे धर्मका संयोग नहीं बना ऐसे ही अन्य धर्मोंका भी संयोग न बने फिर वह भंग किस तरह बन सकेगा ? समाधान इस शंकाका यह है कि प्रथम धर्म है स्याद अस्ति, चतुर्थ धर्म है स्याद अवक्तव्य तो चौथा जो अवक्तव्यरूप धर्म है उसमें सत्त्व और असत्त्वका विचार नहीं बन रहा। अवक्तव्यरूप इसमें तो यह दृष्टि है कि वहाँ दोनों धर्म एक साथ कहे नहीं जा सकते, उनका युगपत् प्रतिपादन किया जाना अशक्य है। इसी आधारपर अवक्तव्यत्व धर्म है। सो इसका विषय सत्त्व और असत्त्वसे निराला है। अतः इस अवक्तव्यत्व भंगके साथ सत्त्वका, असत्त्वका और क्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्वका संयोग कराया जा सकता है। अतः शेष संयोगी भंग ३ बननेमें कोई बाधा नहीं आती। अवक्तव्यत्व शब्दके द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह कथन नहीं किया गया कि एक साथ अर्पित उन दोनों धर्मोंका कथन किया गया हो। किन्तु एक साथ विवक्षा में आनेपर उन दोनों धर्मोंको सर्व प्रकारसे कहा ही नहीं जा सकता। अतएव अवक्तव्यत्व धर्म बना तो इस अवक्तव्यत्वके चौथे भंगके द्वारा कोई धर्मान्तर ही बताया गया। न सत्व बताया गया न असत्व बताया गया। किन्तु दोनोंके प्रतिपादनकी अशक्यताका वर्णन किया गया?

सप्तभंगीमें वर्णनकी पद्धति व प्रतीति—यहाँ यह नहीं कह सकते कि अवक्तव्यके साथ सत्व असत्व और उभयकी अप्रतीति हो जानी चाहिए अथवा अन्य धर्मकी सिद्धि न होनी चाहिए। यह बात यों नहीं कह सकते कि वहाँ अवक्तव्यकी अन्य रूपसे ही प्रतीति हो रही है। सत्वरूपसे नहीं, असत्वरूपसे नहीं, किन्तु प्रतिपादन की अशक्यतारूपसे इस धर्मकी प्रतीति है। इस कारण अवक्तव्यत्व नामका अन्य धर्म है ही, तब उसके साथ प्रथम द्वितीय और तृतीय भंगोंका मेल करके संयोगी भंग बनाया जाना युक्तिसंगत है। तब किस तरहसे प्रतीति होती है इन सात भंगोंमें सो भी सुनो! प्रथम भंगमें तो प्रधानरूपसे सत्वकी प्रतीति है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है, द्वितीय भङ्गमें प्रधान रूपसे असत्वकी प्रतीति है कि पदार्थमें अन्य पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपसे असत्व है। तृतीय भङ्गमें विवक्षित सत्व और असत्वकी प्रतीति है। ये पदार्थ स्वरूपसे सत् हैं पररूपसे असत् हैं. चतुर्थ भङ्गमें अवक्तव्यत्व धर्म की प्रतीति है अर्थात् यह सब कुछ एक साथ कहे जानेके लिए अशक्य है। पञ्चम भङ्गमें सत्व सहित अवक्तव्यपनेकी प्रतीति है। छठवें भङ्गमें असत्व सहित अवक्तव्यपने की प्रतीति है। ७ वें भंगमें क्रमसे प्रतीत हुए सत्व असत्व धर्मसे युक्त अवक्तव्यत्व धर्म की प्रतीति है। क्योंकि प्रथम आदिक भंगोंमें अन्य शेष धर्मका गौण रूपसे निरूपण बना हुआ है। तो ये ७ भंग प्रधानताकी दृष्टिसे कहे गए हैं। यदि इन भंगोंमें जो एक विषय आया है धर्म, उसका ही एकान्तसे प्रतिपादन किया जाय तो वह अप्रमाण हो जायगा, कुनय हो जायगा। इस कारणसे अन्य धर्मका गौण भावसे प्रतीति रखना और उस धर्ममें जो विषय किया गया धर्म है उसकी प्रधानतासे प्रतीति रखना इस पद्धतिसे इन सप्तभंगोंके नयवादके व्यवहारकी प्रसिद्धि होती है।

स्याद वक्तव्य नामका आठवाँ भङ्ग बनानेकी शंका और उसका निराकरण—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि वस्तुमें जैसे अवक्तव्यको अन्य धर्म मान लिया इसी तरहसे वक्तव्य भी एक धर्म मान लीजिए यानें वस्तु अवक्तव्य है, बोलने में नहीं आ सकता। वस्तुके उन धर्मोंका प्रतिपादन एक साथ नहीं किया जा सकता, यों वस्तुमें अवक्तव्यपना है। तो आखिर वक्तव्यपना भी तो है। किन्हीं भी भंगोंके रूपमें वस्तुका प्रतिपादन भी तो किया जा सकता है। तो वक्तव्य नामका एक धर्म और मानना चाहिए। तब सप्तभंगीके स्थानमें अष्टम भंगोंका प्रयोग करना चाहिए। ७ भंग तो ये ही हैं जो अब तक बताये गए और ८वां भंग बन गया स्याद् वक्तव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थात् वस्तु धर्म कहा भी जा सकता है। फिर ७ प्रकारके ही धर्म हों और सप्तभंगी के इस तरहसे ७ धर्म ही विषय हों यह बात तो सिद्ध नहीं हुई। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि पद्धति तो सप्तभंगोकी ही प्रमाण सिद्ध है। अब यहाँ शंकामें जो वक्तव्य धर्मकी बात कही गई है याने सत्वरूपसे कहा जाने योग्य धर्म भी है तो जब यों वक्तव्यत्व धर्म लेते हैं तो उसका प्रथम उत्तर तो यह है कि अवक्तव्य धर्मको छोड़कर जो शेष भंग बताये गए हैं वे सब वक्तव्यत्व धर्ममें ही आ गए स्याद अस्ति कहा तो वस्तु धर्म वक्तव्य ही बना। तो वक्तव्य इस प्रयुक्त भंगमें शामिल ही है। सामान्यरूपसे वह सब धर्म वक्तव्य है। अब कहा कि वक्तव्य नाम करके ही पद्धति रूपसे एक धर्म और बढ़ाना चाहिए तब तो इसमें अनवस्था आ जायगी। अथवा मान लो दोनों धर्मोंकी सिद्धि है। वक्तव्यपना भी है और अवक्तव्यपना भी है लेकिन उन दोनों धर्मोंके साथ विधि और प्रतिषेधकी कल्पना बनेगी सो उनमें सत्व असत्वकी तरह एक नई सप्तभंगी बन जायगी. स्याद् वक्तव्य, स्याद् अवक्तव्य, स्याद उभय आदिक रूपसे सो इस क्षेत्रमें भी सप्तभंगी बनेगी। तो अब अष्टभंगी होनेका अवकाश तो न रहा और न ७ प्रकारके धर्मके नियमका घात बन सका. इस कारण यह बात युक्तिसंगत ही कही गई है कि वस्तु धर्मके विषयभूत धर्म ७ हैं। अतएव ७ प्रकारसे ही संशय हो सकता है और उस कारणसे ही ७ प्रकारकी जिज्ञासा बन सकती है और ७ प्रकारके इसी कारण प्रश्न बन सकते हैं। तो ७ प्रकारके प्रश्न एक वस्तुमें ७ प्रकारके भंगोंके नियमका कारण बनता है। इस कारण यह बात आचार्य संतोंने समीचीन ही कही है कि वाणी सप्तभंगी रूप है और वह सत्वादिक धर्मोंको विषय करने वाली है।

सप्तभंगीकी स्याद्वादामृतपूरितता— सत्वादिक धर्मको विषय करने वाली सप्तभंगी वाणीमें स्याद्वादरूप अमृत भरा हुआ है। यहां स्यात् वचनके अर्थको कथंचित् शब्दसे कहा गया है। उस कथंचित् शब्दके द्वारा जो अनेकान्तका द्योतक है अथवा अनेकान्तका वाचक है उस कथंचित् शब्दके द्वारा सप्तभंगीमें एकान्तका निराकरण किया गया है। जिस धर्मका कथन किया गया है उस धर्मका वहाँ एकान्त नहीं है इस बातका प्रकाश स्यात् शब्द द्वारा होता है। स्यात् शब्दके कहनेसे जो बात कही गई वह तो प्रकट है ही, किन्तु यह भी ध्वनित होता है कि इसका प्रतिपक्षरूप धर्म भी इस वस्तुमें है जिसकी गौणरूपसे इस भंगमें सिद्धि की गई है। वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है, उनमें जब किसी एककी मुख्यता होती है तो प्रतिपादन तो उस मुख्यका है किन्तु अन्य गौणधर्मका भी वहाँ प्रकाश रहता है। इस कारण सप्तभंगीकी वाणीमें स्याद्वादका अमृत होनेसे ही उत्कृष्टता है और हितरूपता है जिसके उपदेशसे यह जीव कभी भी उन्मार्गमें पतित नहीं हो सकता।

स्यात् शब्दके प्रयोगके साथ विशेषधर्मके प्रयोगकी आवश्यकता—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ शंकाकार कहता है कि स्यात् शब्दकी तरह कथंचित् शब्दके द्वारा भी अनेकान्त का प्रतिपादन हो गया, तब फिर सप्तभंगीमें सत् आदिकका वचन कहना निरर्थक है। जैसे कि सप्तभंगीका रूप इस प्रकार है कि स्यात् जीव सत् तो स्यात् शब्दके कहते ही एकदम सब बोध हो जाता है। यह स्यात् ऐसा प्रकाशक शब्द है कि जो वक्तव्य हैं वह स्यात् शब्दके सुनते ही प्रतिपादित हो जाता है। फिर सत् आदिकका वचन कहना निरर्थक है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि सामान्यसे अनेकान्तका ही तो बोध हुआ स्यात् शब्दके द्वारा। पर किस प्रकारका अनेकान्त है? कौन सा धर्म है, ऐसी विशेष जानकारीकी इच्छा रखने वाले पुरुषोंके लिए सत् आदिक विशेषोंका प्रयोग करना आवश्यक है। सामान्यसे प्रतिपादन होनेपर भी विशेषकी चाह रखने वालोंके लिए विशेषका प्रयोग करना ही चाहिए। जैसे वृक्ष ऐसा सामान्यरूपसे कह दिया तो उसमें विशेष जानकारीके लिये वट आदिक विशेष शब्दोंका प्रयोग करना होता है। तो स्यात् शब्द यद्यपि ऐसा सूचक शब्द है कि उससे ही अनेकान्त ध्वनित हो जाता है किन्तु वे अनेक अनन्त धर्म किस प्रकारके हैं इसका वर्णन करानेके लिये विशेष शब्द बोला जाता है। और, साथ ही यह समझना चाहिए कि विशेष धर्मका प्रतिपादन किए बिना स्यात् शब्द क्या कहता है, किसका प्रकाश करता है, यह भी प्रकट नहीं हो सकता। अतः सामान्य और विशेष दोनों प्रकारके शब्दोंकी योजनासे ही वाक्य बनता है। स्यात् शब्द द्योतक भी है और वाचक भी है। तो वाचक पक्षकी बात अब तक वर्णन की गई अब द्योतक पक्षको लेकर भी यदि विचार करें तो वहाँ सत् आदिकका वचन कहना तो न्यायप्राप्त ही है।

द्योतकत्वके नाते भी विशेष धर्मके प्रयोगके साथ साथ स्यात् शब्दके वचनकी आवश्यकता— द्योतकका अर्थ इतना ही तो है कि किसी कही हुई चीजका द्योतन करदे। सत् आदिक वचनके द्वारा कहा गया जो अनेकान्त तत्त्व है उसका स्यात् शब्दके द्वारा अथवा कथंचित शब्दके द्वारा प्रकाश होता है, यदि कथंचित शब्द द्वारा अनेकान्तका प्रकाश न हो तो सर्वथा एकान्तकी शंकाका निराकरण न हो सकेगा। और जब अनेकान्तकी प्रतिपत्ति न हो सकेगी, तो जैसे एवकार शब्दका प्रयोग किसी वक्तव्यका अवधारण करनेके लिए होता है याने 'ही' शब्दका प्रयोग कहाँ होता है? जहाँ जो बात कही गई है उस बातका भले प्रकार निश्चय कराया जाता हो तो 'ही' उसके निश्चयका प्रकाश करता है। इसी प्रकार जो धर्म कहा गया है उस धर्मका द्योतन करता है कथंचित् शब्द। तब कथंचित् शब्दके साथ-साथ सत् आदिकका वचन कहना भी युक्तिसंगत ही है। शंकाकार कहता है कि कथंचित् शब्द न भी कहा जाय तो भी चूँकि वस्तुकी अनेकरूपताको सिद्ध किया जा रहा है उस सामर्थ्यसे स्वयं ही सिद्ध हो जायगा कि यह बात किसी अपेक्षासे कही जा रही है। फिर कथंचित् शब्द कहनेकी आवश्यकता ही क्या है? जैसे कि एवकार शब्दका प्रयोग न भी कहा जाय तब भी उसका अवधारण जान लिया जाता है। अनेक वाक्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोले जाते हैं। वे सब अपने अर्थका निश्चय ही तो कराते हैं। प्रत्येक वाक्योंमें एव शब्द बोलनेकी कहाँ प्रक्रिया है? समाधानमें कहते हैं कि उक्त शंका इस कारण ठीक नहीं है कि शिष्यजनोंके प्रति, जिनके प्रयोजनके लिए वर्णन किया जा रहा है जो स्याद्वाद न्यायके समझनेमें प्रवीण नहीं हैं उनको स्यात् कथंचित् शब्दके प्रयोग बिना स्याद्वाद न्यायका परिचय नहीं हो सकता है, इस कारण स्याद् वचन कहना कहीं अवश्यंभावी ही होता है। हाँ जो पुरुष स्याद्वादकी नीतिके समझनेमें कुशल हैं उनके लिए कथंचित् शब्दका प्रयोग न भी किया जाय तब भी अभीष्ट है। सब कुछ अनेकान्तात्मक पदार्थ है। उसका जब प्रमाणसे साधन कर दिया गया तो वहाँ इतना ही कह दिया जाय कि सर्व सत् तो इतनेसे ही यह बात समझमें आ जाती है कि समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक है, किन्तु जिनको प्रथम बोध कराया जा रहा है ऐसे शिष्यजनों के प्रति पूर्वापर समस्त अर्थको समझानेके लिए स्यात् कथंचित आदिक शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक है। इस प्रकार सप्तभंगीमें स्यात् सामान्य शब्दका प्रयोग और सत् आदिक विशेष शब्दोंका प्रयोग करनेपर ही सप्तभंगीका समग्ररूप निर्देश होता है।

दर्शनक्षण, अवग्रहक्षण आदि क्षणोंके अलावा अन्य किसी जीवके अभावका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—यहाँ क्षणिकवादी शंका करता है कि यह बताना कि जीवादिक पदार्थ सत् ही हैं कथंचित्, यह बात असिद्ध है, क्योंकि जीव पदार्थ अलगसे कुछ भी नहीं है। जो दर्शन, अवग्रह, ईहा आदिक प्रतिभास विशेष होते हैं वे ही पदार्थ हैं, उनको छोड़कर जीवादिक पदार्थ अन्य कुछ नहीं पाये जाते। विशेष और विषयीका जो सन्निपात होता है अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थका जो सम्बन्ध होता है तत्क्षण जो सामान्य प्रतिभास है वह तो दर्शन है उसके पश्चात् जो वस्तुके सम्बन्धमें कुछ जानकारी बनी वह अवग्रह है. इसके पश्चात् उस वस्तुमें अन्य शंकाओं का व्यवच्छेद करता हुआ जो परिज्ञान होता है वह ईहा है। उसका ही पूर्ण निश्चय होना अवाय है, फिर कभी न भूल सकेगा इस प्रकारका विशेष परिज्ञान होना धारणा है, आदिक रूपसे जो जैन शासनमें विवरण किया है वह प्रत्येक क्षण अर्थात् दर्शनक्षण, अवग्रहक्षण ये ही स्वयं परिपूर्ण तत्त्व हैं। इनको छोड़कर जीव अन्य कुछ नहीं है अतः जीव असत् है इसको कथंचित् सत कहना असिद्ध है।

दर्शन अवग्रह आदिक परिणमनोंकी एक स्वजीव आधारमें सिद्धि करते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि अवग्रह ईहा आदिक ये प्रतिभास तो हैं किन्तु इनको यदि स्वलक्षणके भेदसे एकदम भिन्न भिन्न पदार्थ ही मान लिया जाय कि जब इनका लक्षण जुदा-जुदा है तो ये परिपूर्ण पदार्थ ही जुदे-जुदे हैं। इस तरह इनमें भेदका एकान्त कर दिया जाय तब तो अवग्रह जिस वस्तुमें एक धारासे चल रहे हैं कि ईहा, अवाय आदिक ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिर वहाँ वह धारा न रहेगी, एक संतान न रहेगा । एक स्वात्मामें जो अवग्रह आदि ज्ञान हो रहे हैं वहाँ भी संतानभेद हो जायगा। जैसे अन्य--अन्य जीवोंमें जो ज्ञान चलते हैं उन सब ज्ञानों संतानभेद है एक पुरुषने कुछ जाना दूसरे पुरुषने कुछ जाना, ऐसे अनेक पुरुषोंने जो कुछ जाना है वह सब ज्ञान एक संतानमें तो नहीं कहलाता और इसी कारण एक पुरुषके ज्ञानका स्मरण दूसरे पुरुषको नहीं हो पाता। लेकिन यहाँ एक स्वात्मामें जो अवग्रह ईहा आदिक ज्ञान होते हैं वे तो एक संतानमें हैं अर्थात् एक जीवमें हैं और उस जीवके वहाँ अवग्रह ईहा आदिक परिणमन हैं। यदि इन अवग्रह आदिक ज्ञानोंका एकान्तभेद कर दिया जाय तो अन्य जीवोंकी तरह निज प्रवाहमें संतानभेद हो जायगा। अर्थात् उनके आधारभूत जो जीव हैं उनमें फिर अवग्रह आदि का अन्वय न बन सकेगा।

एक संतानमें, एक आधारमें दर्शन अवग्रह आदिकी प्रतीतिसिद्धता—यदि शंकाकार यह कहे कि संतान भेद होता है तो होने दो अवग्रह ईहा आदिक वे भिन्न-भिन्न जगह हैं, एक जगह नहीं, एक संतानमें नहीं। यदि यह बात सिद्ध होती है तो होने दो ! सो शंकाकार ऐसा कह नहीं सकता क्योंकि अनुभव हो यह बता रहा है कि अवग्रह आदिक ज्ञानोंमें जो कुछ जाना गया है वह सब एक संतानमें जाना गया है, ऐसा अनुभव होता है कि उसने जो कुछ विषय और इन्द्रियके सन्निधानके समय सम्बन्धके समय देखा वही वर्ण और आकार आदिक सामान्याकारमें जाना और वही उसके द्वारा प्रतिनियत विशेष आकाररूपमें निश्चित् किया गया और वही उसके द्वारा उस विशेषाकार रूपमें अवधारित किया गया और वही उसके द्वारा ऐसा नर्णीत हुआ कि ज्ञानान्तरमें भी स्मृतिका वह कारण बन जाय और उसका ही कालान्तरमें स्मरण भी किया गया। उसके ही द्वारा वही 'तदेव इदं" आदिक आकार रूपसे प्रत्यभिज्ञात हुआ, और जो इस प्रकार है, जो यों कार्य करने वाला है वह उस प्रकार ही होता है. यों तर्क द्वारा भी समझा गया और कार्य वगैरह देख करके वही उसके द्वारा अनुमान किया गया और उस हीको शब्द योजनासे दूसरेको समझाया है। तो इस तरह इन सब प्रतिभासोंके सम्बन्धमें एक संतानमें ही निर्णय हो रहा है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि अवग्रह ईहा आदिक अत्यन्त भिन्न हैं. इनकी संतान जुदी-जुदी है। ये सब एक संतानमें हैं एक जीवमें ही ये सब प्रकट होते हैं।

वासनाप्रबोधसे अनुसन्धानका अवबोध बताकर शंकाकार द्वारा जीव तत्त्वके निराकरणका विफल प्रयास—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि अवग्रह. ईहा आदिकके सम्बन्धमें जो ऐसा बोध चलता है कि उसे ही देखा, उस हीमें मैंने सुना उस हीको मैंने समझा उस हीका मैंने स्मरण किया, उस हीको मैंने तर्क ज्ञानसे जाना उस हीको मैंने अनुमान प्रमाणसे निश्चित् किया आदिक जो एक संतान सम्बन्धी निर्णय होता है वह उस प्रकारकी वासनाके उठनेसे होता है। चूंकि वहाँ प्रत्यभिज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की बुद्धि उस प्रकारकी वासनाके प्रबोधसे जग रही है अतएव केवल संस्कारवश ही यह धारणा बनती है कि उन सब ज्ञानोंमें कोई एक ही जीव है, जिसकी कि ये परिणतियाँ हैं, वे सब प्रतिभासलक्षण भिन्न–भिन्न हैं और पृथक पृथक तत्त्व हैं। शंकाकार का यह कथन व्यर्थका परिश्रममात्र है क्योंकि वासनाप्रबोधके स्वरूपपर विचार करने से यह शंका निर्मूल हो जायगी।

दर्शन अवग्रहादिसे वासनाको भिन्न माननेपर उनके अनुसन्धानकी अनुपपत्तिका प्रसङ्ग —उक्त शंकाके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है कि अनुसंधान वासना जिसको शंकाकार कह रहे हैं तो वह अनुसंधीयमान अर्थात् प्रत्यभिज्ञानके द्वारा विषय किए गए दर्शन आदिकसे भिन्न है या अभिन्न है ? यदि कहो कि दर्शन, अवग्रह आदिकसे वह वासना भिन्न है तो अन्य संतानमें जैसे दर्शन, अवग्रह आदिककी वासना नहीं जगती उसी प्रकार स्वसंतानमें भी अनुसंधानका ज्ञान न बन सका। अब तो उस वासनाको भी अवग्रह, ईहा आदिकसे भिन्न मान लिया गया है। तो जैसे भिन्न–भिन्न पुरुषोंके ज्ञानमें वासना नहीं बना करती, कोई कुछ जान रहा कोई कुछ जान रहा, उनका ज्ञान भिन्न–भिन्न है, उन सब ज्ञानोंमें एकताकी वासना नहीं बनती उसी प्रकार एक संतानमें भी उत्पन्न हुए दर्शन, अवग्रह आदिकमें भी वासना नहीं बनेगी, क्योंकि जैसे अन्य–अन्य पुरुषोंके ज्ञानोंमें भिन्नता है उसी प्रकार यहाँ भी अवग्रह आदिक ज्ञानोंको सर्वथा भिन्न मान लिया गया।

दर्शन अवग्रादिसे वासनाको अभिन्न माननेपर भी निरंशवादमें अनुसंधानकी अनुपपत्तिका प्रसंग —यदि शंकाकार यह कहे कि दर्शन आदिकसे वह अनुसंधान वासना अभिन्न है तब तो जैसे वे दर्शन अवग्रह आदिक भिन्न हैं नाना हैं तो जितने दर्शन आदिक हैं उतनी ही वे वासनायें बन जायेंगी, क्योंकि जो भिन्नसे अभिन्न होते हैं वे अभिन्न नहीं कहलाते किन्तु भिन्न ही कहलाते हैं। दर्शन, अवग्रह आदिक अनेक प्रकारके जुदे–जुदे ही पदार्थ मान लिए गए हैं। तो अब उन–उन पदार्थोंसे जो अभिन्न होगा वह उन ही रूप तो हो गया। अब सबमें अभेदरूपता न आ पायेगी, किन्तु जितने ही वे प्रतिभास माने गए हैं उतने ही वे उन उनकी वासना बन जायगी। और ऐसा स्वयं क्षणिकवादियोंने कहा है कि भिन्नसे अभिन्न जो हो वह अभिन्न नहीं कहलाता। तो जब वे वासनायें भी उतनी प्रकारकी बन गई, तब वासना के प्रबोधसे दर्शन अवग्रह आदिक प्रतिभासोंमें एक अनुसंधान ज्ञान कैसे बन सकता है ? इस कारण यह कहना कि दर्शन अवग्रह आदिक ज्ञानोंमें अनुसंधानकी वासना बननेके कारण एक संतान जैसा बोध होता है, वस्तुतः वे दर्शन, अवग्रह आदिक प्रतिभास जुदे–जुदे ही हैं—और वे स्वयं परिपूर्ण पदार्थ हैं। उनसे भिन्न जीव नाम का कोई सत् नहीं है। यह कथन क्षणिकवाद सिद्धान्त माननेवालेका अयुक्त है।

दर्शन अवग्रह आदि प्रतिभासोंमें वासनाको कथंचित् अभेद माननेमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जीव तत्वका ही समर्थन—यदि उन अवग्रह आदिक ज्ञानक्षणोंसे कथंचित अभिन्न माना जाय वासनाको, क्योंकि वहाँ भेद करना अशक्य है। यह अनुभव बनता है कि मैंने अभी जिस पदार्थको जाना था उस ही पदार्थका स्मरण किया है आदिक रूपसे सो उन ज्ञानोंकी वासना अलगसे क्या दिखाई जावे. यों जब उनका विवेचन करना अशक्य हो गया जो वासना उन अवग्रह आदिकमें है वह अशक्य विवेचन होनेके कारण अभिन्न है इस प्रकार यदि माना जाता है और फिर वह वासना अवग्रह आदिक ज्ञानोंका हेतुभूत माना जाता है तो इससे यही तो सिद्ध होता है कि जिसमें अहं-अहंकी बुद्धि जग रही है वहीं ही तो दर्शन आदिक पर्यायोंका अनुभवन हो रहा है। जो कुछ भी पदार्थ मैं देखता हूँ मैं जानता हूं आदिक रूपसे इन दर्शन अवग्रह आदिक पर्यायोंका अनुभव कर रहा है ऐसा कुछ भी पदार्थ अनादि अनन्त और स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्षभूत हुआ, सहभावी गुणोंको और क्रमभावी पर्यायोंको प्रतिभासित करता हुआ एक जीव सिद्ध ही है। जैसे कि चित्र सम्वेदन ज्ञानमें नील आदिक विशेष प्रतिभास अनुभवन करता हुआ वह ज्ञान अपने लक्षणसे प्रत्यक्षभूत माना गया है। जहाँ अनेक पदार्थोंका सम्वेदन हो रहा है वह चित्र सम्वेदन सभी जीवोंको प्रसिद्ध है। सभी कोई अनुभव करते हैं कि हम इन परस्पर भिन्न-भिन्न आकारोंको समझ रहे हैं तो जैसे परस्पर भिन्न अपने आकारको जानता हुआ चित्र सम्वेदन ज्ञान सर्व लोकको प्रसिद्ध है इसी प्रकार दर्शन, अवग्रह आदिक पर्यायोंका अनुभव करता करता हुआ कोई आत्मा प्रसिद्ध ही है। उस ही जीवका वासना नाम कर लिया है। शंकाकारने जो यह कहा था कि वासनाके कारण ऐसा ज्ञान होता है कि मैंने ही देखा और उस देखेको मैंने ही जाना, उस जाने हुएको मैंने ही याद किया आदिक रूपसे जो बोध चलता है वह वासनाके कारण चलता है। सो वासना भी क्या है जीवका ही एक नाम रख लिया गया है ?

दर्शन अवग्रह आदिका आत्माके साथ तादात्म्य न होनेका एकान्त ठाननेपर एक सन्ततिके व अनुसन्धानके अभावका प्रसङ्ग—यदि दर्शन, अवग्रह आदिका आत्माके साथ एकत्व न माना जाय तो फिर चित्र सम्वेदन ज्ञान भी सिद्ध नहीं हो सकता। नील आदिक विशेष अर्थोंमें जिनका नियत रूपसे ग्रहण है ऐसे नाना संतान सम्वेदन रूप जो ज्ञान हैं उनमें जैसे सम्वेदन नहीं बनता उसी प्रकार दर्शन, आदिक भी न बनेगा। तो जैसे यहाँ नाना संतानके सम्वेदनोंमें चित्र सम्वेदन नहीं बनता यों स्वयंके सिद्धान्तमें दोष आयगा। शंकाकार कहता है कि क्रमसे होने वाले सुख दुःख आदिककी तरह दर्शन, अवग्रह आदिक प्रतिभासोंका एक संतानमें वर्तन होता है इस कारण अनुसंधान और मनन आदिकका वह कारण माना गया है। समाधानमें कहते हैं कि तब तो बात स्वयं ही स्पष्ट कर दी गई। वही संतति तो आत्मा है जिस संतानमें दर्शन अवग्रह आदिक डाले गए हैं वही जीव है, सो ऐसे ही ज्ञान वासनाकी तरह सुख आदिकके विषयमें भी बोध होता है कि जो ही मैं सुखी था,

वह ही मैं सुखी होता हूँ। क्रमसे वर्तने वाले सुख आदिकका आत्माके साथ तादात्म्य न माननेपर व मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिकका भी तादात्म्य न माननेपर अर्थात् वे एक आत्मामें परिणमन हुए हैं ऐसा तादात्म्य न माननेका एकान्त करनेपर उनकी संतति न बन सकेगी। जैसे कि मैं सुखी हूँ वही मैं दुखी हूँ, यह संतति नहीं बनती अनेक जीवोंमें जैसे इन पर्यायोंकी संतति नहीं बनती, उस ही प्रकार एक जीवमें भी दर्शन, अवग्रह आदिकमें तादात्म्य न माननेपर अर्थात् एक आत्माके साथ इसका तादात्म्य है, ऐसा स्वीकार न करनेपर संतति न हो सकेगी।

अव्यभिचारी कार्यकारणभाव, नैरन्तर्य व समर्थ्यसमर्थकभावके कारण सुखादिकोंकी व मतिज्ञानादिकोंकी एक संतति सिद्ध करनेका शङ्काकार द्वारा प्रयास—यहां शंकाकार कहता है कि सुख आदिक और मतिश्रुत आदिकका निरन्तर वर्तना चलता रहता है उसके बीच काल आदिकका व्यवधान नहीं है कि प्रतिभास किसी समय रुक गया हो और कुछ क्षण बाद फिर प्रतिभास शुरू हुआ हो। तो काल आदिकका व्यवधान न होनेसे वहाँ अव्यभिचारी कार्यकारण भाव है इस कारण तथा वहाँ समर्थ्य समर्पक भाव है अतएव भेद नहीं जाना जाता। यों एक संतति बन जाती है। जैसे सुख दुःख निरन्तर चलते ही रहते हैं। कोई बीचमें ऐसी स्थिति नहीं आती कि सुख या दुःखका इनमेंसे किसी भी परिणतिका अभाव हो, निरन्तर चलता है। ऐसे ही ज्ञान प्रतिभास भी निरन्तर चलता है। उस धाराके बीच किसी समय कोई ज्ञान न हो यह नहीं बनता। तो यों अव्यभिचारी कार्यकारण भाव वहाँ बन गया और साथ ही वहां पूर्व क्षण उत्तर क्षणको अपना स्वरूप समर्पित करके नष्ट होता है। सो यों प्रत्येक क्षण प्रत्येक ज्ञान अगले समयके ज्ञानक्षणको अपना स्वरूप सौंप कर नष्ट हुआ करता है, इस कारण वे सब ज्ञानक्षण भिन्न–भिन्न होकर भी उनका भेद नहीं समझा जा पाता। यों उनकी एक संतति होती है। पर अनेक पुरुषोंमें न तो अव्यभिचारी कार्यकारण भाव है और न समर्थ्य समर्पक भाव है इस कारणसे वहाँ एक संतति होनेका प्रसंग नहीं आता। एक पुरुषका ज्ञानक्षण जब नष्ट हो तब दूसरे पुरुषके ज्ञानक्षणको अपना स्वरूप सौंप दे वह बात नहीं हुआ करती। अतः यह दोष न देना चाहिए कि जैसे भिन्न भिन्न ज्ञानक्षणोंका भिन्न भिन्न पुरुषोंमें संतान नहीं बनता इसी प्रकार इन भिन्न–भिन्न ज्ञानक्षणोंका एक संतानमें पतन नहीं होता, यह बात नहीं कही जा सकती।

जीव सत्त्व माने बिना शंकाकारोक्त कारणोंमें ज्ञानक्षणोंकी एकसंतति सिद्ध करनेकी अक्षमता—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यहां सुख दुःख आदिकका और मतिश्रुत आदिक ज्ञानोंका निरन्तर वर्तना चल रहा है ऐसे ही सुगत ज्ञानोंमें भी निरन्तरता है, सभीके ज्ञानोंमें निरन्तरता है सो निरन्तरताकी सर्वत्र समानता है, चाहे वे सुगतके ज्ञानक्षण हैं या अन्य साधारणजनोंके ज्ञानक्षण हों जब उनमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निरन्तरताकी अविशेषता है तो संतानका भेद भी कैसे सिद्ध होगा अथवा समझिये कि एक जीवने जो दर्शन अवग्रह स्मरण आदिक चल रहे हैं वे भी परस्पर भिन्न हैं और निरन्तरतासे चल रहे हैं और सुगतका ज्ञान भी निरन्तरतासे चल रहा है अथवा अन्य जीवोंका ज्ञान भी निरन्तरतासे चल रहा है तो वहाँ इस बातका भेद डालने वाला क्या है कि एक जीवमें निरन्तरतासे चलने वाले ज्ञानोंमें तो संतति मान ली गई और अनेक पुरुषोंके निरन्तर चलने वाले ज्ञानक्षणोंमें संतति नहीं मानी जाती इस भेदका नियम करने वाला तो अभेद परिणाम ही है। तादात्म्यको छोड़कर अन्य कोई उपाय ऐसा नहीं है जो वहाँ यह भेद डाल सके कि यह तो भिन्न संतानका ज्ञानक्षण है और यह एक संतानमें होने वाला ज्ञानक्षण है।

ज्ञानक्षणोंमें, सन्तानियोंमें सर्वथा भेद सिद्ध करनेका शंकाकारका असफल प्रयास - अब शंकाकार कहता है कि भाई संतानियोंका अर्थात् ज्ञानक्षणोंका तो परस्परमें भेद परिणाम ही है, वहाँ अभेद परिणाम नहीं किया जा सकता। यदि उन अवग्रह स्मरण आदिक ज्ञानोंमें अभेद परिणाम कर दिया जायगा तो संकर होने का प्रसंग हो जायगा। सब एकमेक हो जायगा। फिर उनमें स्वलक्षण भी न रह सकेगा और यह बोध भी न हो सकेगा कि यह अवग्रह है, यह स्मरण है आदिक दोष आनेके कारण यह मानना होगा कि ज्ञान क्षणोंमें तो भेद परिणमन ही है, अभेद परिणाम नहीं है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इन सब ज्ञानक्षणोंमें और अर्थ क्षणोंमें जिस स्वरूपसे अभेद है आत्माके साथ उस स्वरूपसे संकरपना माना ही गया है। जैसे यह अर्थक्षण और यह आत्मा सत्त्वकी अपेक्षा एक है, द्रव्यत्वकी अपेक्षा एक है, यह समस्त ज्ञानक्षण चेतनत्वकी अपेक्षा एक है यदि जिस स्वरूपसे अभेद है उस स्वरूपसे सांकर्य न माना जाय तो हर्ष विषाद आदिक नाना प्रकारके अनुभव बन न सकेंगे, और ऐसा अनुभव होता है कि जैसे वायु या धूप आदिकके विषयमें मेरे पहिले हर्ष होता था उस हीमें अब मुझे द्वेष डर आदिक हो रहा है। जो धूप शीत ऋतुमें हर्षकारी हो रही थी वही धूप अब गर्मीके दिनोंमें दुःखकारी हो रही है। तो एक पदार्थके विषयमें भी हर्ष विषाद आदिकका पूर्वापर अनुभव होता है। मैं ही पहिले हर्षवान था और वही मैं अब विषाद द्वेष आदिक वाला हो रहा हूं अन्य कोई नहीं। इसी प्रकार जो क्रमसे नाना प्रकारके अनुभवोंका परिज्ञान होता है वह बाधा रहित है।

जीवतत्त्वके माननेपर अनुसन्धान, एक सन्तान आदि सब व्यवस्थाओंकी सिद्धि —अनुसन्धान, एकसन्तान, व्यवस्था आदि सब बात इसी बात पर हो तो निर्भर है कि यह जीव एक है और है वह चैतन्य स्वरूप, निरन्तर परिणमने वाला, सो प्रति समय ज्ञानका परिणमन करता चला जाता है, नवीन-नवीन कर्म इसमें उत्पन्न होते रहते हैं। तो एक जीवके ज्ञान परिणमन होनेके कारण वहाँ प्रत्यभिज्ञान बनता है कि वही मैं पहिले हर्षवान था, वही मैं अब विषादवान हो रहा हूं, इससे ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मैंने पहिले दर्शन किया था और इसे ही मैंने अब ज्ञान किया है आदिक जो अपने परिणामोंमें एकत्वका प्रतिभास हो रहा है उससे सिद्ध है कि जीव सत् ही है। जब जीव सत् सिद्ध हो गया तो जैसे एक जीवमें बिना व्यवधानके अवग्रह आदिक और सत् आदिक स्वभावका संसर्ग परिणमन है उसी प्रकार सर्व चेतन अचेतनमें भूत भविष्य वर्तमानमें उस स्वभावका कभी अभाव नहीं होता है इस कारण यह मानना ही पड़ेगा कि जीवादिक तत्त्व कथंचित् सत् रूप ही हैं। मेरे सत्त्वमें किसी भी प्रकारका कोई बाधक प्रमाण नहीं होता इसी प्रकार क्षणिकवादियोंके प्रति ऊहापोहपूर्वक जीवादिकका सत्त्व सिद्ध किया है।

सर्वथा सत्त्ववादका प्रतिषेध—इस प्रसंगमें अब सांख्य सिद्धान्तके अनुयायी कहते हैं कि उसे सत् ही मानो। अर्थात् सर्व पदार्थ सत् ही हैं, किसी भी प्रकार असत् नहीं हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि सर्व पदार्थ सत् ही हैं, असत् नहीं हैं यह बात यों नहीं बनती कि पदार्थमें यदि पररूपकी अपेक्षा असत्त्व न माना जाय तो सभी पदार्थ परस्परमें एकमेक बन जायेंगे। किन्तु ऐसा कहाँ है ? ये सभी पदार्थ हैं ऐसा इनका अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि ये स्वरूपसे हैं किन्तु पर रूपसे नहीं हैं। तो यों प्रत्येक पदार्थमें असत्त्वकी भी सिद्धि है। ऐसे जीव अजीव सभी पदार्थ उनके भेद प्रभेद, प्रत्येक जीव प्रत्येक द्रव्योंमें अपने स्वभावकी व्यवस्था है। यदि पदार्थ सभी सत् ही हों, उनमें असत्त्व किसी अपेक्षासे न माना जाय तो पदार्थमें अपने अपने स्वभावकी व्यवस्था नहीं बन सकती। तो ये जीव और अजीवकी सब व्यक्तियाँ अर्थात् प्रत्येक जीव, प्रत्येक अजीव ये सजातीय विजातीय अन्य पदार्थोंसे व्यावृत्त हैं। अर्थात् एक जीव अन्य जीवके स्वरूपसे सत् नहीं है। और कोई जीव समस्त पुद्गल आदिक अजीवोंके स्वरूपसे सत् नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपनेसे अभिन्न, अन्य पदार्थसे भिन्न ही रहता है। और इतना ही क्या, यह भी निरखिए कि क्षणिकवादियोंके द्वारा माने गए चित्रज्ञान क्षणमें भी जो कहीं ग्राह्य ग्राहकका प्रतिभास हो रहा है वह परस्पर परिहारकी स्थितिके कारण ही तो हो रहा है। सम्वेदनमें जो यह बोध हो रहा है कि यह तो ग्राहक है और यह ग्राह्य है। यह ज्ञान तो पदार्थका ग्रहण करने वाला है। और ये पदार्थ ग्राह्य (ज्ञेय) हो रहे हैं अथवा एक ही सम्वेदन ज्ञानमें यह तो ग्राह्याकार है और यह ग्राहकाकार है, इस प्रकारका जो बोध होता है यह तब ही तो होता है कि ग्राह्याकार रूपसे ग्राहकाकार नहीं है और ग्राहकाकार नहीं है और ग्राहकाकारसे ग्राह्याकार नहीं है। तो यों परस्पर परिहारकी स्थितिसे ही ग्राह्याकार और ग्राहकाकारकी व्यवस्था बनी है और एक ही पदार्थके विषयमें श्वेतादिक वर्णोंका ज्ञान और अंशमात्र परमाणुका सम्वेदन इसमें भी जो व्यवस्था बनी है कि यह तो निरंश परमाणु पदार्थ है और यह श्वेतादिका प्रतिभास है सो यह स्वरूप व्यवस्था एक दूसरेसे परिहार पूर्वक रहनेके कारण ही बनी है अन्यथा अर्थात् वहाँ अवयवोंका बहुतपना न माना जाय तो स्थूल चित्र विचित्र जैसा कि देखा जा रहा है उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभाव हो जायगा। तब जैसे एक अंशमें परिहारकी स्थिति नहीं होती उसी प्रकार स्थूल और चित्र विचित्रमें परस्पर परिहारकी स्थिति नहीं होती वहाँ एकस्वरूपता आ जाती है। फिर भेद नहीं हो सकता। तो तत्त्वोंमें लाक्षणिक परस्पर भिन्नता न हो तो ग्राह्य ग्राहकभेद और श्वेत आदिक प्रतिभास अवयव परमाणु सम्वेदन, इन सबमें एक परमाणु स्वरूप होनेकी आपत्ति आ जायगी।

पदार्थस्थितिकी परस्परपरिहारपूर्वकता—पदार्थकी स्थिति अन्यके परिहारपूर्वक रहती है। जैसे जीव परिहार अजीव स्थितिको बनाता है, घटपरिहार पटस्थितिको बनाता है, नीलपरिहार अनीलस्थितिको बनाता है। जो कोई भी लोग जो मंतव्य मानते हैं उसके विरोधका परिहार उस मंतव्यको सिद्ध करता है। तो इस तरह यह सिद्ध होता है कि पदार्थमात्र सत्रूप ही नहीं है किन्तु वह प्रतिपक्षके अभावरूप भी है। यदि ऐसा न माना जाय तो जो यह भेद नजर आता है—कोई पदार्थ स्थूल है और चितकबरा भी है जैसे कि मोटी गाय, और हो चितकबरी तो वहाँ दो बातें अलग-अलग प्रतीत होती हैं कि यह मोटी है और चितकबरी है। तब इस तरहका दर्शन न होना चाहिए क्योंकि परस्पर परिहार तो माना नहीं जा रहा। पदार्थ सत्रूप ही है, सर्वथा सत् है इस प्रकारका आग्रह किया जा रहा है। तो वहाँ यह भेद नजर न आ सकेगा क्योंकि स्थूलतामें सबल आदिकका परिहार है और सबलमें स्थूल आदिकका परिहार है, यह तो समझा ही नहीं जा रहा। तो जहां अन्यका परिहार नहीं माना जाता कथंचित् असत्त्व नहीं माना जाता तो वहाँ तो सब कुछ एक हो गया और जैसे एक अंशमें एक परमाणुमें कोई दो स्वरूप नहीं देखे जा सकते इसी प्रकार सब पदार्थोंमें भी परस्पर विविक्तता नहीं नजर आ सकेगी। एक परमाणु स्थूलरूपसे अथवा चितकबरे रूपसे देखा नहीं जा सकता है क्योंकि वह निरंश है, सूक्ष्म है, एक अंशरूप है, एकमें यह भेद नहीं नजर आ सकता। तो ऐसे ही जब परस्पर परिहार न माना जाय वस्तुमें अन्य वस्तुका असत्त्व न माना जाय तो वे सब एक एक अंशरूप हो जायेंगे, फिर वहाँ कुछ भी स्वरूप न बन सकेगा। इससे सिद्ध है कि सर्व पदार्थोंमें सम्वेदनोंमें अन्य सजातीय विजातीयका अभाव है। जैसे एक यह मैं आत्मा हूं तो इस मुझ आत्मामें सजातीय अन्य सर्व आत्माओंका परिहार है और विजातीय सकल पुद्गल आदिकका परिहार है। तो ऐसे ही प्रत्येक पदार्थमें सजातीयका परिहार सिद्ध होता है।

वस्तुत्वके प्रतिपादनमें स्याद्वाद शासनकी निर्दोषता—उक्त विवरणसे यही निर्णय हुआ कि जितने भी चेतन हों, अचेतन हों, कोई ज्ञान हो, कोई अंश विशेष हो अथवा एक ही पदार्थमें कल्पित अनेक शक्तियां हों उनका स्वरूप सभी कुछ परस्पर विविक्त स्वरूप सिद्ध होता है। क्योंकि किसी भी अपने स्वभावका अन्य स्वभावके साथ मिश्रण नहीं होता। इससे सिद्ध है कि यह सारा लोक अन्योन्याभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मात्र है। एकमें अन्यका अभाव है। यदि लोक यह पदार्थ समूह अन्योन्याभावरूप न हो तो सर्वथा एकपना हो जायगा फिर तो सभी वस्तु अनेक कहां कहलायेंगे ? सब एक हो गया क्योंकि किसीमें किसी अन्यका अभाव नहीं है। और, वहां भी जो एकत्व का प्रसंग आया सो एकताका ही प्रसंग क्या ? एकत्व तो अर्थात् अन्वय तो विशेषकी अपेक्षा रखता है याने व्यावृत्तिकी अपेक्षा रखता है। सो अब असत्त्व यहां माना नहीं जा रहा तो जब व्यावृत्ति न रही तो उस अन्वयका भी अभाव हो जायगा तो जगत एक बन जायगा। इतना ही प्रसंग नहीं आता किन्तु जगत शून्य हो जायगा। क्योंकि व्यावृत्तिसे निरपेक्ष याने कथंचित् असत् स्वरूप न माना जाय तो ऐसा स्वतंत्र सत् अन्वय एकत्व कभी भी प्रतिभासमान होता ही नहीं, इस कारण हे प्रभो ! आपके शासनमें जो यह बात प्रसिद्ध की गई कि वस्तु कथंचित असत् ही है, यह बात भली प्रकार सिद्ध है और इष्ट है।

सर्वथा भावाभावरूप मन्तव्यका निराकरण—अब कोई दार्शनिक कहता है कि सत् और असत्के सम्बन्धमें इतने विवाद किए जा रहे हैं। कोई सर्वथा सत् ही मानते हैं कोई सर्वथा असत् ही मानते हैं और उनके निराकरणमें यह मान लीजिए कि पदार्थ सर्वथा सत् असत् उभयरूप है। क्योंकि वहां सद्भाव और असद्भाव दोनोंको प्रमाणसे सिद्ध किया गया है। तब न भाव, अभावका निराकरण किया जा सका। कोई पदार्थ केवल अभाव रूप ही है और इसी कारण भावरूप पदार्थोंको जानने वाला प्रमाण भाव विषयक है और अभावरूपसे जानने वाला प्रमाण अभाव नामका माना गया है। तब इस समस्त जगतको सर्वथा भावाभावरूप उभयरूप स्वीकार कर लेना चाहिए। उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सर्वथा भावाभावरूपकी कल्पना करनेवाला दार्शनिक भी तत्त्ववेदी नहीं है, क्योंकि युक्तियोंके द्वारा सर्वथा भावस्वरूप और अभावस्वरूपका निराकरण हो जाता है। इस सर्वथा उभयात्मकके मंतव्यमें यही तो प्रकट किया गया है कि कोई पदार्थ सर्वथा भावरूप है और कोई पदार्थ सर्वथा अभाव रूप है। सो यहां भी आखिर दोनों एकान्त ही तो हुए, पर न तो कोई भाव एकान्त है ऐसा कि जो प्रतिपक्ष रहित हो और न कोई अभाव एकान्त है ऐसा कि जो प्रतिपक्ष रहित हो। निष्कर्ष भाव एकान्त और अभाव एकान्त नहीं माना जा सकता। कुछ है तो वही वह नहीं है। इस प्रकार उस ही एक वस्तुमें विधि और प्रतिषेध दोनों सिद्ध होते हैं। इस कारण सर्वथा भावाभाव रूप पदार्थ न मानना चाहिए, किन्तु कथंचित् भावाभावात्मक पदार्थ है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए। देखिये ! द्रव्यनय की अपेक्षासे ही समस्त पदार्थ सत् समझा गया है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे ही अर्थात् व्यतिरेक विशेषकी दृष्टिसे ही सब पदार्थ असदात्मक प्रतीतिमें आते हैं। यदि इससे उल्टा समझा जाय तो उसकी उपपत्ति और प्रतीति नहीं बनती अर्थात् द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे सबको असत् कहा जाय यह सम्भव नहीं है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अर्थात् व्यतिरेक विशेषकी दृष्टि रखकर सर्व सत् कहा जाय यह भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतीतिमें नहीं आता। इस कारण यह जगत सर्वथा भावाभावात्मक है, यह मतव्य युक्ति संगत नहीं है। प्रत्येक पदार्थ द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे, अन्वय और व्यतिरेककी दृष्टिसे सदसदात्मक है अतएव प्रत्येक पदर्थ स्यात् सत् है स्यात् असत् है। सत्का अधिकारी कोई अलग पदार्थ हो, असत्का अधिकारी कोई अलग पदार्थ हो ऐसी व्यवस्था युक्तिसंगत नहीं है।

वस्तुमें सर्वथा जात्यन्तररूपताकी असिद्धि—अब यहाँ कोई दार्शनिक कहता है कि जब भावस्वभाव और अभावस्वभाव दोनोंके निर्णयमें इतनी समस्यायें आ रही हैं तब तो पदार्थको भावाभावस्वभावसे रहित कोई अन्य जातिका ही जान लेना चाहिए अर्थात् वस्तु न भावस्वभावरूप है न अभावस्वभाव रूप है। किन्तु दोनों ही स्वभावोंसे रहित कोई जात्यंतररूप है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि वस्तु सर्वथा जात्यंतररूप माननेकी बात भी साररहित है। पदर्थको सर्वथा जात्यंतर रूप माननेपर इस पदार्थमें जो भावांश और अभावांश निबंधनक विशेषका ज्ञान होता है फिर इस ज्ञानका अत्यन्ताभाव हो जायगा। अर्थात् पदार्थके सम्बन्धमें हम आपको सद्भावका भी बोध होता है और अन्य पदार्थका असत्त्व है इसमें इस तरह अभावका भी बोध होता है, किन्तु सर्वथा जात्यंतर रूप पदार्थको मान लेनेपर फिर इस भावांश का बोध न हो सकेगा। इस जानकारीका अत्यन्ताभाव हो जायगा। पर अत्यन्ताभाव तो नहीं है। तो बोध होता ही है इस प्रकार कि यह अपने स्वरूपसे है पररस्वरूपसे नहीं है। सत् असत् उभयात्मक वस्तुमें अपने स्वरूपसे सत्त्व और पररूपसे असत्त्व यह बराबर प्रतीतिमें आ रहा है। तो यों उस वस्तुकी विशेष जानकारी होनेसे जो कि सुनय और प्रतीतिसे बराबर प्रसिद्ध है यह सिद्ध होता है कि वस्तु जात्यंतर रूप नहीं है किन्तु वह सदसदात्मक है। जैसे कि दही और गुड़ मिलकर कोई विलक्षण स्वाद तो आया। न दहीरूप वह स्वाद रहा और न गुड़ रूप रहा। किन्तु उसे दही गुड़ दोनोंसे अत्यन्त रहित एक सर्वथा जात्यंतररूप नहीं माना जा सकता, क्योंकि उस स्थितिमें भी विवेक करनेपर दधि अंशकी और गुड़ अंशकी विशेष प्रतिपत्ति होती है तभी तो लोग उस पानकको उस दधि गुड़ मिले हुएको पीकर बता देते हैं कि इसमें गुड़ ज्यादह है अथवा कम है। तो उसे प्रतिपत्ति ही तो हो रही है। उन दोनोंसे बिल्कुल ही विलक्षण सर्वथा जात्यंतर कुछ नहीं माना जा सकता।

अनेकौषधिपानककी तरह सर्वथा जात्यन्तरताकी व सर्वथा एकांश प्रतीतिकी वस्तुमें असिद्धि—अनेक औषधियोंको मिलाकर जो कोई पानक बनाया जाता है तो उसे भी उन सब औषधियोंसे अत्यन्त विलक्षण सर्वथा जात्यन्तर नहीं माना जा सकता, क्योंकि वहाँ भी एक एक औषधिकी प्रतिपत्ति सम्भव है। किसी अंशमें किसी रूपमें वहाँ सब कुछ समझा जाता है इस कारण जात्यंतर रूप ही है पदार्थ इस प्रकार भी कहा नहीं जा सकता। यों सर्वथा उभयरूप माननेपर जात्यंतर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की जानकारी भी नहीं बन सकती। जैसे कि पानकको सर्वथा उभयरूप मान लिया जाय और उसमें उन अंशोंका कुछ भी सद्भाव न माना जाय तो जात्यंतरकी प्रतीति भी नहीं बन पाती और ऐसा भी नहीं कह सकते कि दो पदार्थोंके मेलमें यह जात्यंतर नहीं होता है किंतु वे दोके दो ही पदार्थ हैं, यों भी नहीं कह सकते। जैसे दधि गुड़ का मेल बननेपर वहाँ कोई आग्रह करे कि भले ही मेल हो गया किन्तु दधि गुड़ अलग अलग ही हैं वहाँ वह जात्यंतररूप पानक न हो ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि वहां यह अनुभव होता है कि यह पानक स्वादिष्ट है यह पानक सुगंधित है। जो यदि वहाँ अलग–अलग ही चीज पड़ी हुई है उनके मेलमें कोई जात्यंतरता नहीं आई है तो यह बोध नहीं हो सकता कि यह पानक स्वादिष्ट है अथवा सुगंधित है। दूसरे यह आपत्ति आयगी कि अनेक औषधियोंके संयोगसे जो कुछ भी पानक तैयार होता है उसमें जैसे रोगको दूर करनेका सामर्थ्य है वह सामर्थ्य न रह सकेगा। जैसे कि अलग-अलग एक एक औषधिके उपयोगसे रोग दूर नहीं होता, इसी प्रकार अनेक औषधियोंके मेल प्रयोग से भी रोग दूर नहीं हो सकता। सदसदात्मक पदार्थमें सत् आदिक अंश ही केवल प्रतीतिमें आते हों ऐसा भी नहीं है। वहां भी प्रमाण दृष्टिसे उभयात्मक ज्ञानमें आरहा है। जैसे कि दधि गुड़ मिलाया जानेपर दधि गुड़ात्मक उस पानकमें केवल दधि और केवल गुड़ अंश ही प्रतीतिमें आ रहा है। केवल सद् आदिक अंश ही प्रतीतिमें माने जायें तो फिर जात्यंतरभूत पानक, अंशी, पूर्ण पदार्थ प्रतीतिमें न आ सकेगा और जब जात्यन्तरकी प्रतीति नहीं मानी गई तब अनवस्था आदिक दोष आ जायेंगे। किस प्रकार सो सुनो।

विवक्षानुसार सत्त्व असत्त्वके न माननेपर अनेक आपत्तियोंका दिग्दर्शन—जिस स्वरूपसे पदार्थका सत्त्व माना गया है उस स्वरूपसे ही पदार्थका असत्त्व मान लिया जाय तो वह प्रत्येक उभयरूप मान लेनेसे अब वहाँ व्यवस्था न रहेगी। जिस पररूपसे पदार्थका असत्त्व माना गया है उस ही पररूपसे पदार्थका सत्त्व माना जाय तो वहां भी सत्त्व और असत्त्वकी उभयरूपता मान लेनेसे सर्वथा दोष आयगा। और यदि उस प्रकार नहीं माना जाता, सत्त्वको असत्त्वकी पद्धतिसे न माना जाय और असत्त्वको सत्त्वकी पद्धतिसे न माना जाय और असत्त्वको सत्त्वकी पद्धतिसे न माना जाय तब यहाँ सर्वथा उभयात्मकका आग्रह करने वाले दार्शनिककी प्रतिज्ञाका विरोध हो जाता है। उनकी प्रतिज्ञा है कि सर्व कुछ पदार्थ उभयस्वभावरूप हैं इसपर वस्तुस्वरूपकी दृष्टि रखनेसे एक ही पदार्थका उभयस्वभावरूप तो न रहा। पदार्थ अपने स्वरूपसे असत् है। अपने जिस स्वरूपसे पदार्थका सत्त्व है उस ही स्वरूपसे पदार्थका असत्त्व मान लिया जाय तो वहाँ विरुद्ध, संकर, व्यतिकर, संशय, और अप्रतिपत्ति एवं अभाव आदिक सभी दोष वहाँ उपस्थित हो जाते हैं, इस कारण मानना होगा कि पदार्थ जिस स्वरूपसे सत् है उस ही स्वरूपसे असत् नहीं है। किन्तु अन्यरूपसे असत् है। इस तरह पदार्थ कथंचित सत्रूप है और कथंचित असत्रूप है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ऐसे हे प्रभो ! जो आपके शासनमें कहा गया है वह पूर्णरूपसे युक्तिसंगत है।

विरोधादिक दोषरहित वस्तुत्वको सिद्ध करनेमें स्याद्वाद शासनकी क्षमता—वस्तु जिस स्वरूपसे असत् माननेपर ८ दोष आते हैं। वे किस प्रकार हैं सो सुनो ! प्रथम तो जिस स्वरूपसे असत् होनेका विरोध है। जैसे शीत स्पर्श और उष्ण स्पर्शका परस्पर विरोध है। दूसरी बात विरुद्ध दो चीजें एक आधारमें नहीं टिक सकती। जैसे शीत स्पर्श और उष्ण स्पर्श, ये दोनों एक वस्तुमें नहीं रह सकते। अगर वह ठंडा है तो गर्म नहीं है अगर गर्म है तो ठंडा नहीं है। इसी प्रकार जिस स्वरूपसे सत् है उसी स्वरूपसे असत् हो इसका आधार ऐक वस्तु नहीं हो सकता। अतः वैयाधिकरण दोष है। एक साथ सत् और असत् दोनों हो बैठें जब कि जिस स्वरूपसे सत् माना है उसी स्वरूपसे असत् मान लिया गया तो उसमें संकर और व्यतिकर दोष आते हैं। जिस स्वरूपसे सत् है उसी स्वरूपसे असत् माननेपर परस्पर एक दूसरे विषयमें गमन हो गया इस कारणसे संशय दोष हुआ। अब वस्तुमें निश्चय नहीं बन सकता कि सत्त्व तो कैसे है और असत्त्व कैसे है इस कारण संशय दोष आ जाता है। और जब एक ही वस्तुमें कैसे सत्त्व है, कैसे असत्व है यह निश्चय न बन सका तो वहाँ अप्रतिपत्ति दोष आता है और इसी कारण वहाँ अभाव दोष भी आता है तब जिस स्वरूपसे सत्त्व है उस स्वरूपसे असत्त्व रह नहीं सकता और उसी स्वरूपसे असत्त्व है तो सत्त्व नहीं रह सकता। तो न सत्त्व रहा न असत्त्व रहा। इस प्रकार अभाव दोष आ गया। यों ५ प्रकारके दोषोंके निवारणकी अगर इच्छा है कि वस्तु निर्दोष सिद्ध हो जाय तो मानना होगा कि सभी वस्तुवें कथंचित उभयात्मक हैं अर्थात् स्वरूपसे सत् हैं, पररूपसे असत् हैं। हाँ इस उभयको भी सर्वथा नहीं मान सकते कि सर्व प्रकारसे उभय हो। जिस स्वरूपसे सत् है उसी स्वरूपसे असत् है। इसी प्रकार उभयात्मक नहीं मान सकते क्योंकि स्यात् शब्दके प्रयोगसे यह भी सिद्ध होता है कि उस उभयात्मकतामें जात्यंतरता है। यों वस्तुके सत्वकी सिद्धिमें दो भंग बने थे—कथंचित् सत् है और कथंचित असत् है और यह उभय नामका भंग बना। यहाँ आचार्य समंतभद्रदेव प्रभुके शासनकी अविरुद्धता दिखा रहे हैं कि आपके मतमें कथंचित् सत् ही है कथंचित असत् ही है, कथंचित् उभय ही है ऐसा निर्बाध सिद्ध होता है।

सर्वथा अवाच्यत्वका निराकरण— अब एक दार्शनिक कहता है कि तब न पूरे तौरसे सत् ही कहा जा सका न असत् ही कहा जा सका और न सर्वथा उभय भी बताया जा सका तब तो यह दर्शन मानना चाहिए कि वस्तु है ऐसा भी मैं नहीं कहता हूँ, वस्तु नहीं है ऐसा भी नहीं कहता हूँ, और जो कुछ कहता हूँ उसे भी नहीं कहता हूं तब तो ऐसा दर्शन मान लिया जाना चाहिए। उसके उत्तरमें कहते हैं कि इस प्रकार का अभिप्राय रखने वाला शंकाकार भी विपरीत बुद्धिमें चल रहा है। देखिये ! यदि

http://sahjanandvarnishastra.org/

वस्तुको सद्भाव और असद्भाव दोनों प्रकारसे अवर्णित कर दिया जायगा अर्थात् न रूपसे कहा जा सकता न असत्त्वरूपसे कहा जा सकता। तो इसका अर्थ यह होगा कि सारा जगत मूक बन जाना चाहिए। जब कुछ भी नहीं कहा जा सक रहा, नहीं कहा जा सक रहा यह भी न कहा जा सका तो फिर सारा लोक मूक बन जायगा, क्योंकि अब तो न विधिका व्यवहार चलाया जा सका और न प्रतिषेधका व्यवहार चलाया जा सका और न प्रतिषेधका व्यवहार चलाया जा सका क्योंकि शब्द द्वारा वस्तुको अभिलाप्य ही नहीं माना जा रहा। यदि शंकाकार यह कहे कि विधि प्रतिषेधका व्यवहार निर्विकल्प प्रत्यक्षसे हो जायगा तो यह बात भी नहीं मानी जा सकती। विशेषकी तरह सामान्यरूपसे भी अनभिलाप्य स्वभाव वाला पदार्थ मान लिया गया, उसको निर्विकल्प ज्ञान निश्चित नहीं कर सकता है। जब सर्व प्रकारसे ही अकथित हो गया पदार्थ, शब्दों द्वारा कहा ही नही जा सकता, न विशेषरूपसे कहा जा सकता न सामान्यरूपसे कहा जा सकता तो ऐसे तत्त्वको निर्विकल्प ज्ञान भी निश्चित नहीं कर सकता, न उससे विधि प्रतिषेधका व्यवहार बन सकता। और देखिये ! वस्तु अगर अपरिज्ञात है, जानी नही जाती है तो वह प्रमाणका विषय नही बन सकता। तब वस्तुको प्रमाणका विषयभूत न कहा जाय यह तो बन नहीं सकता। वस्तु प्रमाणका विषय है विधि और प्रतिषेधका व्यवहार वहाँ होता है। देखिये ! प्रमाण ग्रहण किए गए पदार्थ भी अनिश्चित होनेपर अग्रहीतकी तरह हो जाते हैं जैसे कि मूर्छा दशाको प्राप्त किसी चेतनके द्वारा पहिले जो कुछ ग्रहण किया गया था अब वह अग्रहीतकी तरह हो जाता है। निर्विकल्प दर्शनमें प्रतिभासित होने वाली वस्तु व्यवस्थित नहीं रह सकती जिस कारणसे कि बोलता हुआ भी कोई उसे देख सके।

वस्तुको सर्वथा अभिलाप्य माननेकी शंका– अब यहां शब्दाद्वैतवादी आशंका करता है कि देखिये, ऐसा लोकमें कोई भी ज्ञान नहीं है जो शब्दके जाने बिना होता हो। अनुभव भी बताता है कि हम जिस किसी भी पदार्थको निरखते हैं तो वह पदार्थ शब्दसे बींधा हुआ समझमें आता है। जहां जाना कि यह चौकी है तो चौ और की ये शब्द भीतरमें उठ ही बैठते हैं। तो शब्दका अनुगम किए बिना लोकमें कोई भी ज्ञान नहीं होता। सर्व वस्तु शब्दसे ही बींधी हुई प्रतिभासमें आती हैं और इस तरह सिद्ध होता है कि सर्व पदार्थ शब्दमें ही प्रतिष्ठित हैं। यदि यह वचन मुद्रा, यह सरस्वती वाणी, शाश्वती वाग्रूपता ज्ञानका उल्लंघन करदे तो बोध हो न सकेगा। क्योंकि प्रकाशका कारणभूत तो यह वचनरूपता ही है। वचन योजनाके बिना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुआ करती। इस प्रकार शब्दाद्वैत सिद्धान्तमें जो बताया गया है कि सर्व कुछ मात्र शब्द ही है ज्ञान तक भी शब्दसे बोधा हुआ है और पदार्थ जो कुछ ज्ञानमें आता है वह शब्दयोजना सहित ही ज्ञानमें आता है। इससे सिद्ध है कि सारा जगत शब्दमय है। तत्त्वके बारेमें, वस्तुके सम्बन्धमें ऐसे सत्त्व असत्त्व आदिक की कल्पना करना और वह शब्दरहित है, अनभिलाप्य है, ये सब कल्पनायें करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यर्थ है। वस्तु शब्दमय ही है।

शंकाकारोक्त शब्दमयता व सर्वथा अभिलाप्यताकी असिद्धि—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शब्दमयताका दर्शन भी बिना विचारे कहा गया है क्योंकि जैसे सामान्यरूपसे वस्तु अभिधेय होता है उसी प्रकार विशेषरूपसे भी वस्तु अभिधेय हो जाय, सर्वप्रकारसे वस्तु अभिधेय हो तो वहाँ प्रत्यक्ष और परोक्षका भेद नहीं ठहर सकता. क्योंकि वाच्य विषयकी अपेक्षा उनमें भेद हो सकता था, किन्तु जहाँ सब कुछ शब्दमय है और सभी ज्ञान शब्दमय हैं, और शब्दमय पद्धतिसे ही ज्ञान है, वस्तु स्वरूप है, यह मान लिया गया है वहाँ किसीको प्रत्यक्ष कहना किसीको परोक्ष कहना यह भेद न बन सकेगा। शंकाकार कहता है कि प्रत्यक्ष और परोक्षमें भेद चक्षु आदिक शब्द आदिक सामग्रीके भेदसे बन जाते हैं। शब्द आदिक सामग्रीसे अप्रत्यक्षता और चक्षु आदिक सामग्रीसे प्रत्यक्षता सिद्ध हो जाती है। इसके समाधानमें कहते हैं कि अब तो जैसे प्रत्यक्षसे वस्तु विशेषका ज्ञान किया जाता है उसी प्रकार शब्दादिकसे भी वस्तु विशेषका ज्ञान मान लिया गया है। तब उस जानकारीमें कोई भेद ही सिद्ध नहीं होता। तब प्रत्यक्ष और परोक्षमें भेद न बन सकेगा। प्रत्यक्षके विषयभूत विशेष को यदि शब्दका अविषयभूत मान लेते हो तो लो अब यहाँ प्रत्यक्षका विषयभूत विशेष अनभिधेय बन गया वह तो शब्दोंद्वारा नहीं कहा गया फिर यह प्रतिज्ञा करना कि ज्ञान पदार्थ सब कुछ शब्दोंसे ही बींधा है इस प्रतिज्ञाका फिर खण्डन हो जाता है। यदि यह हो कि प्रत्यक्षात्मक शब्दका विषयभूत होनेसे प्रत्यक्षका विषयभूत विशेष भी अभिधेय हो जाता है शब्द द्वारावर्णित हो जाता है तो इसके समाधानमें यह आपत्ति आ जाती है कि फिर उस ही प्रकार अनुमान आगम ज्ञानात्मक शब्द जिसका विषय है ऐसी प्रत्यक्ष और परोक्षकी बात आ जाय अर्थात् प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनोंमें अभिधेयताकी अविशेषता हो गयी वह भी शब्दों द्वारा कही गई और अप्रत्यक्ष भी शब्दों द्वारा कहा गया। तब प्रत्यक्ष और परोक्षमें स्पष्ट विशेष प्रतिभास सिद्ध हो गया। तो प्रत्यक्ष परोक्षमें भेद इसी विशेषतापर तो कहा जाता था कि जो स्पष्ट प्रतिभास हो सो प्रत्यक्ष है और जो अस्पष्ट प्रतिभास हो सो परोक्ष है अब जब दोनोंमें स्पष्ट विशेष प्रतिभास हो गया तो अपेक्षा भेद न रहा। प्रत्यक्ष और परोक्षमें भेद माननेपर प्रत्यक्ष और परोक्षात्मक शब्दमें भी भेद आ जायगा तो शब्द भी अनेक बन बैठेंगे। तब शब्द द्वैत कैसे सिद्ध हो गया। पदार्थ अनेक हैं, ज्ञान अनेक हैं और शब्द भी अनेक हैं। तो इस तरह भी शब्दाद्वैत मतकी सिद्धि नहीं होती।

उपाधिभेदसे ही भेद बताकर शब्दके अद्वैतत्त्वका शंकाकार द्वारा समर्थन—शंकाकार कहता है कि शब्द तो अद्वैत ही है। केवल प्रत्यक्ष उपाधि सहित शब्द है तो वह स्पष्ट विशेष प्रतिभास वाला बनता है और यदि शब्दादिक उपाधि सहित शब्द है अर्थात् यह आगम ज्ञानात्मक शब्द है या अनुमान ज्ञानात्मक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द है। इस प्रकार शब्दादिककी उपाधि सहित वही शब्द फिर अस्पष्ट सामान्य प्रतिभास वाला हो जाता है। तो शब्द यद्यपि एक है, मगर उन शब्दोंमें उपाधि साथ हो जानेसे शब्दोंका भेद प्रतीत होने लगता है पर वस्तुत: शब्द अद्वैत ही है। जैसे कि पीत और लाल आदिक उपाधिके सम्बन्धसे स्फटिक मणिमें पीत लाल आदिकका प्रतिभास होने लगता है, पर स्वयं स्फटिक तो स्वच्छ ही है। वहाँ पील लाल आदिकरूप नहीं है। इस प्रकार प्रत्यक्षकी उपाधिके कारण और शब्दादिक की उपाधिके कारण शब्दमें भेद प्रतीत होने लगता है यह स्पष्ट प्रतिभासरूप प्रत्यक्ष गोचर शब्द है और यह अस्पष्ट प्रतिभासरूप परोक्ष गोचर शब्द है ऐसा उन शब्दोंमें उपाधिके कारण होता है। वस्तुत: शब्द अद्वैत ही है।

उपाधि भेदमात्रसे शब्दभेदकी कल्पना आदि शंकाकारके मंतव्योंका निराकरण—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस तरहके प्रत्यक्ष और शब्दादिककी उपाधियोंको भी शब्दात्मक मानते हो या नहीं? यदि प्रत्यक्ष और परोक्ष उपाधि भी शब्दात्मक ही है, जिसके कारण शब्दोंमें भेद डाला जाता हो, तो जब भेद करने वाला तत्त्व स्वयं शब्दात्मक है तब वहाँ भेद कैसे सिद्ध हो सकता है। और जब भेद सिद्ध न होगा शब्दमें तो प्रत्यक्ष और परोक्षका भेद नहीं ठहर सकता। स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास सभी एक हो जायेंगे। यदि कहो कि प्रत्यक्ष और शब्दादिककी उपाधियाँ शब्दात्मक नहीं हैं तो शब्दाद्वैतका खण्डन यों हो जाता है। अब यह प्रतिज्ञा कहाँ ठीक रह सकी कि सर्व कुछ लोकमें शब्दाद्वैतमय हो है। लो ये प्रत्यक्ष और शब्दादिककी उपाधियाँ तो शब्दरूप नहीं हैं। यदि कहो कि प्रत्यक्ष और परोक्षकी उपाधियाँ अवस्तु रूप हैं तो भला जो अवस्तुरूप होगा वह स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभासके भेदका कारण नहीं हो सकता। अवस्तु तो किसी भी अर्थक्रिया का साधन नहीं बन सकती। जब प्रत्यक्ष और शब्दादिक उपाधियोंको अवस्तुरूप मान लिया तो वह असत् ही कहलाया। अब उनके द्वारा यह भेद न बन सकेगा कि लो प्रत्यक्ष उपाधिके कारण यह स्पष्ट प्रतिभास बना और शब्दादिक उपाधिके कारण यह अस्पष्ट प्रतिभासमें अभेद मान लेते हो कि चलो जब अनेक यत्न करनेपर भी बात सिद्ध नहीं होती तो स्पष्ट और अस्पष्ट प्रतिभास भी एकमेक रह जायेंगे तो उन प्रतिभासोंमें अभेद स्वीकार कर लेनेपर बात वही आयी कि अब प्रत्यक्ष और परोक्षमें कोई विशेष नहीं ठहरता।

सर्वथा अभिलाप्यकी असिद्धिकी तरह सर्वथा अनभिलाप्य पक्षकी भी असिद्धि—इस प्रसंगमें जो कुछ कहा जा रहा उस सबका सारांश यह है कि यदि सर्वथा अवाच्य स्वीकार करते हो वस्तुको कि वस्तु है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, वस्तु नहीं है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, और जो कुछ भी कहा जा रहा यह भी नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार पदार्थको सर्वथा अवाच्य स्वीकार कर लेनेपर फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत्य और असत्यका भेद नहीं रह सकता। जो सत् हैं वे सभी क्षणिक हैं ध्रुव हैं। क्योंकि क्षणिकमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया बनती है और न एक साथ अर्थक्रिया बनती है आदिक मन्तव्य सिद्ध करनेकी तरह जो सत् है वह क्षणिक ही है, क्योंकि सर्वथा नित्यमें न क्रमसे अर्थक्रिया बनती है और न एक साथ अर्थक्रिया बनती है, इत्यादिक वाक्यमें भी असत्यता आ जायगी। जब सर्वथा अनभिधेय मान लिया तो वहाँ यह भेद नहीं किया जा सकता कि मेरे मंतव्य वाला वाक्य तो सही है और दूसरेके मतव्य वाला वाक्य असत्य है। अथवा उल्टा प्रसंग आ जायगा। कहो अपने मंतव्य वाला वाक्य असत्य बन जाय और दूसरेका मतव्य वाला वाक्य सत्य बन जाय। क्योंकि अब तो वस्तु अनभिधेय मान ली गई अथवा अक्षणिकमें क्षणिकपना आ जायगा और क्षणिकमें अक्षणिकपना आ जायगा क्योंकि अब तो सत्य वाक्य भी अर्थको नहीं छूते हैं, क्योंकि वस्तु अनभिधेय है लोग तो किसी भी वाक्यका कोई अर्थ बतावेंगे। सो यों किसी भी अनुमान वाक्यको यदि अनभिधेय मानते हो तब तो किसी भी अनुमान वाक्यसे कथंचित् अर्थका स्पर्श करने वाला मानते हो कि लो यह सामान्य अर्थका प्रतिपादक है तो इस तरह यदि किसी अनुमान वाक्यको कथंचित अर्थमें संस्पृष्ट ही मान लेते हो अब फिर वस्तु सर्वथा अनभिधेय है यह बात नहीं ठहर सकती।

स्वपक्षको अभिधेय बनाकर वस्तुको सर्वथा अनभिधेय बतानेका आश्चर्य - अब देखो ! कि यह क्षणिकवादी स्वपक्षका तत्त्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो कुछ भी बात तो बता रहा है वाक्यकी रचना तो कर रहा और प्रतिज्ञा कर रहा कि वस्तु सर्वथा अनभिधेय है, कहा ही नहीं जा सकता। स्वयं कह कहकर तो अपने पक्षकी सिद्धिका यत्न कर रहा है और परपक्षकी असिद्धिका यत्न कर रहा है, तिसपर भी प्रतिज्ञा यह की जा रही है कि वस्तु सर्वथा अनभिधेय है यह बड़े आश्चर्यकी बात है। यदि सर्वथा अनभिधेय रहता है वस्तु तो सर्वथा अभिधेय रहित अनुमान वाक्यसे किसीको सत्य स्वीकार करा देना और किसीको असत्य स्वीकार करा देना यह बात सम्भव नहीं हो सकती। साध्यके कथनसे किसी पक्षका कहा जाना परम्परासे भी समर्थ नहीं हो सकता। वह साध्यका ज्ञान नहीं करा सकता, क्योंकि अब तो वस्तुको सर्वथा अनभिधेय मान लिया गया है साध्यका परम्परासे कहनेवाला हेतुवचन स्वयं असत्य ही है। अर्थात् जब अनभिधेयताका आग्रह कर लिया गया है तब न तो हेतुवचन बन सकता और न साध्य वचन बन सकता। तब देखिये ! कितना अपने पक्षका आग्रह है कि हेतु वचनके द्वारा की गई वस्तुकी सिद्धिको तो मान रहा है, वस्तु सिद्ध कराना चाहता है और यह स्वीकार नहीं कर रहा कि उस वचनके द्वारा कोई वाच्य बन जाता है, इस हेतु वचनसे साध्य कहा जाता है इस बातको स्वीकार नहीं कर रहा तब इस अपने पक्षका राग मात्र ही कहना चाहिए और इस तरह अनवस्था भी रहती है कि स्ववचनसे तो तत्त्वकी सिद्धि हुई और पर वचनसे तत्त्वकी सिद्धि नहीं हुई ऐसी व्यवस्था यहाँ नहीं बनाई जा सकती। सो जब अपने मंतव्यकी सत्यता असत्यताकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती तब तो सारा जगत मूक ही बन जायगा। वह कुछ कर ही न सकेगा। वस्तुमें अनुमान वाक्यसे वाच्यपना है ऐसा जब स्वीकार नहीं किया जा रहा तो वचन द्वारा की गई सिद्धि भी तो सम्भव नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि यदि शब्दको वाचक और अर्थको वाच्य नहीं माना जाता तब न अनुमान प्रयोग सही बन सकता और न अपने पक्षकी सिद्धि और परपक्षकी असिद्धि किसी प्रकार की जा सकती है ? अतः वस्तु कथंचित् अवाच्य है न कि सर्वथा अवाच्य है यह स्वीकार कर लेना चाहिए वाच्यकी जो दृष्टियाँ हैं उन सब दृष्टियोंको एक साथ लेनेसे वह अवाच्य होता है किन्तु सर्वथा अवाच्य नहीं।

सर्वथा अवाच्यत्वकी असिद्धि तथा कथंचित् अवाच्यत्वकी सिद्धि—शब्द द्वारा पदार्थको वाच्य न माननेपर पदार्थको क्षणिक सिद्ध करने वाला अनुमान वाक्य वस्तुकी क्षणिकताको सिद्ध न कर सका और यदि कहा जाय कि अनुमान वाक्यसे पदार्थ वाच्य नहीं होता तो इसका अर्थ यह हुआ कि अनुमान वाक्यसे की जाने वाली सिद्धि भी न हो सकेगी। फिर कैसे वस्तुको क्षणिक सिद्ध किया जायगा या अपना मंतव्य सिद्ध किया जायगा ? और वाच्यता न माननेपर वाक्य मात्रमें यदि किसी मंतव्यकी सिद्धि करली जाती है तो अनिष्ट अर्थात् प्रतिपक्षीके वचनसे भी अपने मंतव्यकी सिद्धि होनेका प्रसंग हो बैठेगा। अपने वाच्यसे रहित भी स्व वचनसे उसकी सिद्धि मान ली जाय और परवचनसे अपने तत्त्वकी सिद्धि न मानी जाय यह भी व्यवस्था नहीं बन सकती। जब शब्द किसी भी वाच्यको कहता ही नहीं है तो उसके लिए जैसे अपने वचन वैसे प्रतिवादीके वचन। अब वहाँ यह विवेक न बन सकेगा कि अपने वचनसे तो मंतव्यकी सिद्धि होती और परवचनसे मंतव्यकी सिद्धि नहीं होती। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि मेरा वचन तो क्षणिक वस्तुके दर्शनकी परम्परामें उत्पन्न हुआ है पर दूसरेका वचन नहीं हुआ है वस्तु दर्शनकी परम्परामें। तो यह तो केवल अपने सिद्धान्तका आग्रह मात्र है ऐसी तीव्र आशक्ति है अपने मंतव्य में कि वहाँ परीक्षाको ताकमें रख दिया है। यह तो परीक्षाप्रधान पुरुषका चिन्ह नहीं है क्योंकि अब तो सभी वचन विवक्षाके विषयभूत बन गए। कुछ भी वचन बोले जायें, अपना जो सिद्धान्त है उस सिद्धान्तको कह देगा, इस कारण वस्तुतत्त्व सर्वथा अभिधेय नहीं है। तो सर्वथा अनभिधेय भी नहीं है। किन्तु कहना चाहिए कि वस्तु तत्त्व कथंचित अवाच्य ही है। जैसे कि कथंचित् सत् ही है कथंचित् असत् ही है और कथंचित उभय ही है इसी प्रकार कथंचित अवाच्य ही है। यों स्याद्वाद शासनमें वस्तु तत्त्वका स्वरूप कहा गया है।

कारिकामें शेष अर्थात् अन्तिम तीन भङ्गोंकी ध्वनि—इस कारिकामें च शब्दका प्रयोग होनेसे शेषके तीन भङ्ग भी लगा लेना चाहिए कि वस्तु कथंचित् सत् अवाच्य ही है, वस्तु कथंचित् असत् अवाच्य ही है और वस्तु कथंचित् सत् असत्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अवाच्य ही है। कथंचित सत् अवाच्य किस प्रकार है सो सुनो। वस्तु यदि सर्वज्ञ असत् हो तो वह अनभिधेय भी नहीं बन सकता। जो अवस्तु है याने स्वरूप आदिक चतुष्टय की अपेक्षा जैसे वस्तु सत् है यों ही स्वरूप आदिककी अपेक्षा वस्तुको असत् कह दिया जाय तो सर्व प्रकारसे असत् वस्तुमें अनभिधेयपना भी नहीं ठहर सकता. इस कारण वस्तुको कथंचित सत् अवाच्य ही बताया गया है। इसी प्रकार वस्तु कथंचित् असत् अवाच्य किस प्रकार है कि यदि वस्तुको सर्वथा ही सत् मान लिया जाय कि जैसे वस्तु स्वरूपसे सत् है वैसे ही पररूपसे भी सत् मान लिया जावे दोनोंसे ही वह सत् है तो भी उसमें अनभिधेयताका स्वभाव नहीं बन सकता। उस वस्तुका अभिधेयपना भी हुआ करता है। अतः वस्तु कथंचित् असद् अवक्तव्य है। इसी प्रकार वस्तुको जब स्वरूप और पररूपसे निरखते हैं तो वह सदसदात्मक है। और वैसे ही जब एक साथ इन धर्मोंको निरखते हैं तो अवक्तव्यता सिद्ध है। यों कथंचित् सदसदवक्तव्यत्व सिद्ध होता है। इस तरह शेषके ये तीन भंग भी युक्तिबलसे सिद्ध हो जाते हैं। तो इस कारिकामें कहे गए चार धर्म हैं, पर चारों धर्मोंकी सिद्धि होनेसे जिसको नहीं कहा है वह भी सिद्ध हो जाता है। लेकिन इसमें ऐसे सभी धर्म जो कि प्रतिज्ञा में नहीं हैं। वस्तुस्वरूपमें नहीं हैं उनका समर्थन नहीं बनता। किसी ही प्रतिज्ञात धर्मकी सामर्थ्य से गम्यमान अन्य धर्मोंमें भी प्रतिज्ञातपना सिद्ध होता है। तो जैसे चारों धर्म कहे गए हैं उनसे ही सम्बंधित और युक्तिसे अबाधित शेष ३ भंग लगाना चाहिए। इस तरह सप्तभंगी रूप प्रतिज्ञा निर्वाध सिद्ध हो जाती है। और नैगम आदिक नयोंके प्रयोगसे यहाँ सप्तभंगीमें ७ संख्या ही अबाध सिद्ध होती है अब प्रथम और द्वितीय भंगमें नयका योग दिखाते हैं कि किस नयसे, किस अभिप्रायसे वस्तु सत् है और किस अभिप्रायसे वस्तु असत् कहा गया है।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्;
असदेव विपर्यासन्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥

स्वरूपचतुष्टयसे सत्त्व व पररूपचतुष्टयसे असत्त्व माननेपर ही वस्तु व्यवस्था—स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षासे सभी वस्तु सत् ही हैं ऐसा कौन न मानेगा ? और, पररूपचतुष्टयकी अपेक्षासे वस्तु असत् ही है ऐसा भी कौन स्वीकार न करेगा ? ऐसे तो वस्तुत्वकी व्यवस्था नहीं बनती। समस्त पदार्थ चाहे चेतन हों अथवा अचेतन हों सभी द्रव्य पर्याय आदिक भ्रान्त हों अथवा स्वयं इष्ट हो, अथवा अनिष्ट हो। स्वरूप आदिक चतुष्टयकी अपेक्षासे सत् ही है ऐसा मानना होगा और इसी तरह पर रूपादिक चतुष्टयकी अपेक्षासे असत् ही है ऐसा मानना पड़ेगा। कोई भी पुरुष चाहे लौकिक हो अथवा परीक्षक हो अथवा स्याद्वाद शासनका मानने वाला हो या सर्वथा एकान्त वादका कहने वाला हो, यदि वह कुछ भी बुद्धिमान है तो इस प्रकारसे मानेगा ही कि वस्तुस्वरूपकी अपेक्षासे सत् है और पररूपकी अपेक्षासे असत् है,

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि प्रतीति ही इस प्रकारकी हो रही है प्रतीतिका लोप करनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता है। अब यदि स्वयं इस प्रकारकी प्रतीति करते हुए भी वस्तु तत्व ऐसा अनुभवमें आ रहा है इतनेपर भी यदि कुनयके अभिप्रायके कारण विपरीत बुद्धि हो गई और वह ऐसा स्वीकार नहीं करता है तो फिर वह किसी भी इष्ट तत्वकी व्यवस्था नहीं बना सकता इसका कारण यह है कि वस्तुमें वस्तुतत्व स्वरूपके ग्रहण और पर-रूपके त्यागकी व्यवस्थासे ही बनता है। वस्तु है यह बात तभी सम्भव है जब कि वह स्वरूपका तो ग्रहण किए हुए हो और पररूपका परिहार किए हुए हो। ऐसी बात व्यवहारमें आने वाले इन सब पदार्थोंमें घटित हो रही है। जो कुछ भी देखा जा रहा है वह सब अपमें स्वरूपसे तो सत् है और परपदार्थोंके रूपसे असत् है। तभी ये सब नजर आ रहे हैं। यह खम्भा अपने ही स्वरूपसे सत् है, बाकी, भींट किवाड़, दरी, चटाई आदिक सब पररूपोंसे निराला है तभी तो यह एक पदार्थ है। तो पदार्थ का स्वरूप स्वरूपके ग्रहण और पररूपके परिहारकी व्यवस्थासे ही बना हुआ है।

स्वपररूपोपादानापोह न माननेपर विडम्बनाका दिग्दर्शन— जैसे पदार्थ स्वरूपसे सत् है यों ही पररूपसे भी सत् बन जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि चेतन अपने स्वरूपसे सत् है तो जो अचेतन है उनके स्वरूपसे भी सत् हो गया। तब चेतनमें अचेतनताका प्रसंग हो गया, अचेतनमें चेतनताका प्रसंग हो गया, क्योंकि अब तो सब कुछ ही पदार्थका स्वरूप बन बैठा। इसी प्रकार यह भी निरखिये कि जैसे पदार्थ पररूपसे असत् है इसी तरह स्वरूपसे भी असत् हो जाय तो सर्वथा शून्यपना आ गया तो वस्तुमें पररूपका स्वरूप नहीं है और स्वयंका भी कोई स्वरूप नहीं है। परसे असत् है ऐसा स्वय भी असत् है तब फिर पदार्थ रहा ही क्या? जैसे स्वद्रव्यकी दृष्टिसे वस्तु सत् है यों ही परद्रव्यसे भी सत् बन बैठे तो द्रव्यमें प्रति-नियम भी नहीं रह सकता यह दवात दवात ही है यह नियम कैसे बनेगा, क्योंकि यह दवात्के स्वरूपसे भी सत् है और चौकी चटाई आदिक स्वरूपसे भी सत् बन गया। तो अब यह दवात ही है अन्य कुछ नहीं है, यह नियम आयगा कहांसे ?

स्वपररूपोपादानापोहन न माननेपर संयोगविभागादिसे द्रव्य प्रति-नियम व्यवस्थाका अभाव—शंकाकार कहता है कि संयोग विभाग आदिकके कारण जो कि अनेक द्रव्योंके आश्रय होते हैं, उन संयोग विभागोंके द्वारा द्रव्यका प्रतिनियम बन जायगा। द्रव्यकी प्रतिनियमताका विरोध न आयगा अर्थात् अपने स्वरूपका संयोग है, अन्य गुणोंका विभाग है अथवा संयोग विभाग ये अनेक द्रव्योंके आश्रय रह रहे है, फिर भी उन संयोग विभागोंके कारण ही याने किसका सम्बन्ध है, किसका नहीं है, इस विशेषतासे ही द्रव्योंका प्रतिनियम बन जायगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि संयोग विभाग आदिक अनेक द्रव्योंके गुण हैं तो अनेक द्रव्य होमें स्वद्रव्यपना बन जायगा। स्वयंके अतिरिक्त संयोग विभाग आदिकका आश्रय न रखने वाले द्रव्यान्तरमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परद्रव्यता हो जानेसे और उस परद्रव्यसे भी सत्व मान लेनेपर अपने आश्रयके कारण भी द्रव्यमें नियम नहीं बनाया जा सकता है। ऐसा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि इन दो द्रव्योंमें संयोग नहीं है। सो द्रव्यके प्रतिनियमका व्याघात अर्थात् यह यह ही है अन्य नहीं है ऐसी द्रव्यको समझ लेनेकी बात न बन सकेगी। वह बात अब भी ज्योंकी त्यों खड़ी हुई है और फिर जब यह आपत्ति सामने आयी है तो इसी तरह परद्रव्यसे जैसे पदार्थ असत्व है इसी प्रकार स्वद्रव्यसे भी असत्व मान लिया जाय तो समस्त द्रव्योंका मन अपनापना सिद्ध हो जायगा। अब तो गुण किसी भी द्रव्यमें न ठहर सके। तो यों इष्ट द्रव्यका ही आश्रय करे गुण सत्व उसका विरोध बन जायगा।

स्वपर क्षेत्रकालोपादानापोहनके बिना भी वस्तुत्वव्यवस्थाकी असिद्धि द्रव्यके इस कथनके प्रकारसे जैसे स्वक्षेत्रसे सत्व है ऐसे ही परक्षेत्रसे भी सत्व मान लिया जाय तो किसी भी पदार्थमें प्रतिनियत क्षेत्रपनेकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती कि यह अपने ही प्रदेशमें है, अन्यके प्रदेशमें नहीं है और इसी तरह जैसे परक्षेत्रसे वस्तुका असत्व है यों ही स्वक्षेत्रसे भी असत्व मान लिया जाय तब वस्तुमें क्षेत्र ही सिद्ध न हो सकेगा। वस्तु क्षेत्र रहित प्रदेश रहित हो जायगा इसी प्रकार वस्तु जैसे स्वकालसे सत् है इसी तरह परकालसे भी सत् मान लिया जाय तो वस्तुमें प्रतिनियत कालकी भी व्यवस्था न बन सकेगी। यह वस्तु इस ही परिणमनरूप है, अन्य परिणमनरूप नहीं है यह व्यवस्था न बन सकेगी। और, इसी प्रकार जैसे वस्तु परकालसे असत् है ऐसे ही स्वकालसे भी असत् मान लिया जाय तब तो समस्त परिणमन असम्भव हो जायेंगे अर्थात् कोई परिणमन ही न रहे। जैसे परकी पर्यायसे वस्तु असत् है इसी प्रकार स्वकी पर्यायसे भी वस्तु असत् मान लिया गया। फिर कुछ परिणमन कैसे ठहर सकेगा? समस्त वस्तु निष्पर्याय हो जायेंगे? फिर कैसे यह व्यवस्था बनायी जायगी कि यह अपना इष्ट तत्व है और यह दूसरेका?

प्रभुके स्याद्वादशासनकी निर्दोषता तात्पर्य यह है कि मूल सिद्धान्त यह है कि स्वरूपसे सत् और पररूपसे असत् है। इसे स्वीकार न करनेपर न अपने मंतव्य का समर्थन किया जा सकेगा और न परके मंतव्यका परिहार किया जा सकेगा। कारण हे प्रभो! आपके शासनमें जो यह बात बतायी गई है कि स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षासे वस्तु सत् है और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे वस्तु असत् है, यह बात युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन होनेके कारण आप निर्दोष हैं यह बात सिद्ध होती है। वचनोंसे ही निर्दोषताकी परीक्षा होती है। जैसे रोगी पुरुषके वचन यह सिद्ध कर देते हैं कि अब यह पुरुष दोषसहित है और जब उस पुरुषके रोग नहीं रहता तो उसके निकलने वाले वचन यह सिद्ध कर देते हैं कि अब यह पुरुष नीरोग और निर्दोष हो गया है। तो इसी तरह आपकी युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन यह प्रमाणित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करते हैं कि प्रभु आप ही निर्दोष हैं।

स्वरूपसे सत्त्व है इस धर्मका शंकाकार द्वारा खण्डन - अब यहाँ नैयायिक प्रश्न करता है कि स्वरूपसे सत्त्वका विधान बनानेपर तो यह बताइये कि स्वरूप में भी तो स्वरूप और पररूप होना चाहिए। अब तो स्याद्वादशासनमें एक यह ही पद्धति अपना ली गई है कि जो है वह अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नहीं है। तो सत् स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है तो उस स्वरूपकी भी बात बताइये जिस स्वरूपसे सत् सिद्ध किया जा रहा है उस स्वरूपका भी स्वरूप कुछ होगा जिससे कि स्वरूपका अस्तित्व बन सके या नहीं है दूसरा कोई स्वरूप ? यदि स्वरूपका कोई स्वरूप है। स्वरूपान्तर है तो अनवस्था दोष होता है। स्वरूपका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए अन्य स्वरूपसे सत् बताना होगा। फिर अन्य स्वरूपका भी अस्तित्व जाननेके लिए अन्य स्वरूपान्तर मानना होगा। इस तरह अनवस्था दोष होगा, व्यवस्था न बन सकेगी। यदि कहो कि स्वरूप आदिकका स्वरूपादिक अन्य नहीं हुआ करता तो व्यवस्था फिर कैसे बने कि स्वरूप है. इससे स्वरूपसे है पररूपसे नहीं, यह व्यवस्था तो नहीं बनायी जा सकती। क्योंकि स्वरूपका स्वरूपान्तर कुछ माना ही नहीं है, जिससे कि स्वरूपका सत्त्व सिद्ध किया जा सके। स्वरूपान्तर यदि नहीं है तो वह व्यवस्था नहीं बनती और स्वरूपान्तर यदि माना जावे तो अनवस्था दोष आनेसे व्यवस्था नहीं बन सकती। बहुत स्वरूपान्तरकी कल्पना करते करते यदि किसी जगह बहुत दूर जाकर स्वरूपान्तरका अभाव माननेपर भी किसी स्वरूपकी व्यवस्था बना ली जाय तब फिर यहाँ ही अपने घरमें मान लेने जैसी प्रक्रियामें क्या फायदा है ? फिर तो सीधा वस्तुका सत्त्व मान लो। वहाँ स्वरूपसे सत् है। पररूपसे असत् है, इस प्रकारका वाग्जाल बनानेकी क्या आवश्यकता है ? जैसे स्वरूपका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए स्वरूपान्तर मानते मानते किसी जगह स्वरूपान्तरके बिना ही स्वरूपका अस्तित्व मान लेना पड़ा तो ऐसा ही एकदम इस ही समय वस्तुका सत्त्व माननेके लिए स्वरूपसे सत् है, पररूपसे असत् है, इसके कहनेकी भी क्या आवश्यकता है ? जैसे प्रतीति हो रही है न्याय दर्शनमें जिस तरहसे द्रव्य, गुण आदिक भेद प्रभेद की कल्पना है उसके अनुसार, वस्तु व्यवस्था बना ली जाय फिर स्याद्वादकी और इस प्रथम द्वितीय भंगोंकी क्या आवश्यकता है ?

स्वरूप सत्त्वकी स्पष्ट प्रतीति होनेसे शंकाकारके दुराग्रहका दिग्दर्शन उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि स्वरूपमें स्वरूपान्तर है या नहीं ? ऐसा विकल्प उठाकर स्वरूपसे सत्त्व पररूपसे असत्त्व इस प्रणालीका निराकरण करने वाला शंकाकार वस्तुस्वरूपकी परीक्षाके अभिमुख नहीं है। केवल अपने सिद्धान्तके आग्रहका ही अनुरागी है। यदि वस्तु स्वरूपकी परीक्षा करने बैठें तो विदित होगा कि वस्तुकी प्रतीति इसी प्रकार हो रही है और इसी प्रकार वस्तु स्वरूपका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्ररूपण किया जा सकेगा कि प्रत्येक सत् अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नहीं है। अन्यथा अर्थात् जो वास्तविक प्रतीति हो रही है उस प्रतीति बनाकर यदि वस्तुका प्ररूपण न किया जाय तब तो नाना जो मनमाने विवाद हैं उनका निवारण न किया जा सकेगा। यदि प्रतीतिके अनुसार वस्तु स्वरूपका निर्णय नहीं किया जाता है तब फिर कोई भी विवाद दूर नहीं हटाया जा सकता है। वस्तु प्रतीतिके बलपर वस्तुस्वरूप मान लेनेसे अनवस्था दूषण नहीं आता। वस्तुकी जैसी निर्बाध प्रतीति हो रही है उस ही प्रकार वस्तुका स्वरूप है। वह स्वरूप उस वस्तुसे अन्य ही प्रतीत नहीं होता। जिस कारणसे कि वस्तुके स्वरूपको सिद्ध करनेके लिए स्वरूपान्तरकी अपेक्षाकी जाय। वस्तुका स्वरूप वस्तुमें ही तन्मय है। स्वरूप कोई अलग पदार्थ नहीं है जिससे कि स्वरूपान्तरकी अपेक्षा की जाय और यदि स्वरूपादिकका स्वरूपान्तर ही माननेकी हठ करते हो तो मान लीजिए। स्वरूपादिकका स्वरूपान्तर मान लेनेपर भी अनवस्था दोष नहीं आता, क्योंकि जिस ही समय स्वरूपान्तरमें अजानकारी है उसी समय प्रथम स्वरूपमें व्यवस्था बनती है और जिस ही जगह स्वरूपका अपरिचय है वहाँ ही उसकी अनवस्था बनती है स्वरूपका कोई लक्षण ही तो हुआ करता है। जो लक्षण है वही स्वरूपका स्वरूप है। तब वह स्वयं ही उस स्वरूपसे सत् है। वस्तुका स्वरूप वस्तुमय है। तब वस्तुके स्वरूपका स्वरूपका स्वरूप भी तन्मय है। कोई अन्य चीज नहीं है। एक वस्तुके जाननेपर कोई अन्य चीज नहीं है यह जान लिया, इस ही ज्ञानमें दृढ परिचय है। अतएव एक वस्तुके जाननेपर स्वरूप जान लिया गया। स्वरूपके जान लेनेपर सर्वस्वरूप जान लिया गया। तो वस्तु स्वरूपसे सत् है। पररूपसे असत् है, यह तो प्रतीति सिद्ध ही बात है।

जीवके उपयोगमें, ज्ञानोपयोगमें, ज्ञानविशेषोंमें स्वपररूपव्यवस्था—अब जीवद्रव्यके स्वरूपपर विचार करिये! जीवका सामान्यसे उपयोग स्वरूप है। उपयोग कहते हैं चैतन्य शक्तिके व्यापारको। उपयोग लक्षण वाला ही जीव माना गया है। सूत्रजीमें भी कहा गया है कि 'उपयोगो लक्षणं' जीवका उपयोग स्वरूप है और वह उपयोग ज्ञानदर्शनरूप है। तो जीवका उपयोग तो स्वरूप हुआ और उससे भिन्न हुआ अनुपयोग, वह है पररूप। तो जीव उपयोगकी अपेक्षा सत् है और अनुपयोगकी अपेक्षा असत् है, यही अर्थ हुआ। जीव स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत है। अब जीवके उपयोगका भेद किया जाय तो उपयोग दो प्रकारके कहे गए हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानका स्वरूप है स्वार्थाकार व्यवसाय अर्थात स्व और अर्थके आकारका स्वरूपका निश्चय होना ज्ञानका स्वरूप है। जैसे आत्माका स्वरूप ज्ञान है ऐसे ही ज्ञानका स्वरूप है स्वार्थाकार व्यवसाय। अब वहाँ तीसरा स्वरूप और क्या माना जायगा? वस्तुका स्वरूप जान लिया और स्वरूपका लक्षण पहिचान लिया। अब आगे अन्य स्वरूपकी न जिज्ञासा है और न सिद्धिकी आवश्यकता है। दर्शनका लक्षण अनाकार ग्रहण है। आकारका जहां व्यवसाय नहीं है किन्तु सामान्य प्रतिभास है वह दर्शनका

स्वरुप है ; अब उस स्वरुपके और भेद किए जायें तो ज्ञानके दो भेद है—परोक्ष और प्रत्यक्ष । परोक्षका स्वरुप है अवैशद्य । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान माने गए हैं । इनमें अविशद प्रतिपाद्य होता है स्पष्ट प्रतिभास नहीं है । तो परोक्षका स्वरुप है अस्पष्ट परिज्ञान होना और प्रत्यक्षका स्वरुप है वैशद्य अर्थात प्रत्यक्षज्ञान द्वारा वस्तुका स्पष्ट प्रतिभास होता है । तब जिसका जो स्वरुप है उसको छोड़कर अन्य पररुप बन जाते हैं । जैसे परोक्षका स्वरुप है स्पष्ट प्रतिभास । तो पररुप हो गया स्पष्ट प्रतिभास । इसी प्रकार प्रत्यक्षका स्वरुप है स्पष्ट प्रतिभास । तो इसका पररुप हो गया अस्पष्ट प्रतिभास । यद्यपि यह कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं है किन्तु जिसका अस्तित्व समझा जा रहा है, जिसका परिचय किया जा रहा है बुद्धिमें यह एक विवक्षित तत्त्व होगया । अब उसकी सिद्धि स्वरुपसे है, पररुपसे नहीं है, यह झलक तो वहाँ भी होगी ।

दर्शनोपयोगविषयोंमें स्वपररूप व्यवस्था—दर्शनोपयोगके चार भेद हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । चक्षुदर्शनके निमित्तसे जो वस्तु परिज्ञान होता है उससे पहिले जो तत्प्रसंगमें सामान्य प्रतिभास है उसका नाम चक्षु दर्शन है अर्थात चक्षु इन्द्रियके द्वारा जो कुछ भी आलोचन होता है ग्रहण होता है वह चक्षुदर्शन है, चक्षु इंद्रियको छोड़कर शेष चार इंद्रियाँ और मनके निमित्तसे जो कुछ वस्तुका परिज्ञान किया जाने वाला है उसके लिए अथवा उससे पहिले जो सामान्य प्रतिभास है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं । अवधिदर्शनका स्वरुप है अवधिके द्वारा आलोचन करना । अवधिज्ञानसे जो पदार्थ जाना जा रहा है उसके लिये अथवा उससे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास है वह अवधि दर्शन कहलाता है । तो जिस गुणका जो लक्षण है वह उसका स्वरुप है, शेष लक्षण पररुप कहलाते हैं ।

ज्ञानोपयोगविशेषोंमें स्वपर रूपव्यवस्था—इस प्रकरणमें ज्ञानके दो भेद किए गए थे—प्रत्यक्ष और परोक्ष । उनमेंसे परोक्षके भी और प्रत्यक्षके भी भेद प्रभेद करके उनका स्वरुप जाना जा सकता है । परोक्षके दो भेद हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । इन्द्रिय और मनके निमित्तसे जो स्वार्थाकार ग्रहण है वह मतिज्ञानका स्वरुप है । और मात्र मनके निमित्तसे जो स्वार्थाकार ग्रहण है वह श्रुतज्ञानका स्वरुप है । यहाँ संज्ञी पञ्चेन्द्रियका विचारपूर्वक जो उपयोग चलता है उस श्रुतज्ञानकी बात कही गई है । वैसे मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान सर्व संसारी जीवोंके होते हैं । एकेन्द्रिय आदिक के भी होते हैं । वहाँ मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें कुछ और विशेष जो परिज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है । यह लक्षण व्यापक है और वही यहाँ घटित किया जाता है । प्रत्यक्षज्ञानके दो प्रकार हैं—विकल प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष । प्रत्यक्षज्ञान कहते उसे हैं कि जहाँ इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना अपने विषयभूत पदार्थका स्पष्ट परिचय हो जाता है । तो जहाँ कुछ ही पदार्थोंका परिचय होता है वह तो है विकल प्रत्यक्ष और जहाँ समस्त विश्वका अनिवार्यरूपसे परिचय एक साथ होता है वहाँ माना

http://www.jainkosh.org

गया है सकल प्रत्यक्ष । तो विकल प्रत्यक्षके दो भेद हैं, अवधिज्ञान और मन: पर्यय ज्ञान । इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर रूपी पदार्थोंका स्पष्ट ग्रहण होना । इस प्रकार द्रव्य और अर्थके आकारका ग्रहण होना सो तो अवधिज्ञानका स्वरूप है और इन्द्रिय मनकी अपेक्षा न रखकर स्व और विकल्पका ग्रहण होना अथवा मनमें आयी हुई वस्तुका ग्रहण होना सो मन: पर्ययज्ञानका स्वरूप है। प्रत्येक ज्ञानोंमें स्वरूप का व्यवसाय और विषयभूत पदार्थोंका व्यवसाय होता है इस कारण स्वार्थाकार व्यवसाय ज्ञानका स्वरूप है यह लक्षण प्रत्येक ज्ञानोंमें घटित होता है। सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञानका नाम है और उसका स्वरूप है सर्व द्रव्य पर्यायोंका साक्षात्कार कर लेना। उस स्वार्थाकार व्यवसायसे जो कुछ अन्य है वह सब पररूप है। जिस ज्ञानका जिस दर्शनका जो स्वरूप बताया गया है उस स्वरूपसे भिन्न जो लक्षण है वह पररूप है। और इस प्रकार स्वरूप और पररूपसे उन स्वरूपके सत्त्व और असत्त्वका भी परिचय मिलता है। तथा अन्य पदार्थोंका भी स्वरूप और पररूपकी अपेक्षासे सत्त्व और असत्त्वका परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर विशेषके सम्बन्धमें भी स्वरूप और पररूप हुआ करता है। यह विद्वान पुरुषोंको स्वयं समझ लेना चाहिए, क्योंकि जहाँ तक जिज्ञासा चले वहाँ तक विशेषकी प्रतिपत्तियाँ होती चली जायेंगी और ऐसी विशेष प्रतिपत्तियाँ अनन्त हो सकती हैं। यहाँ तक स्वद्रव्यादिकको अपेक्षा अस्तित्व और परद्रव्यादिककी अपेक्षा नास्तित्वका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भागोंमें स्वपररूपव्यवस्था—उपयोगके स्वपररूपत्वके निरूपणके अनुसार द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव इन विशेषोंका भी स्वरूप पररूप समझा जा सकता है। जैसे द्रव्यकी अपेक्षा सत् असत् कहना है तो द्रव्यका दर्शन अभेद और भेद दो पद्धतियोंसे होता है। जबकि अभेद पद्धतिसे द्रव्यका स्वरूप निरखा जा रहा हो तो अभेद स्वरूपसे द्रव्यस्वरूप है और भेद स्वरूपसे वह द्रव्य नहीं है। तो अभेद स्वरूप यहाँ स्वरूप बना और भेदस्वरूप पररूप बन गया। और जब ही उस ही द्रव्य को भेददृष्टिसे गुण पर्याय आदिक नाना रूपोंमें देखने लगते हैं तो उस समय वे सब अनेक द्रव्य भेदस्वरूपसे हैं। अभेदस्वरूपसे नहीं है तब यहाँ भेदस्वरूप तो बन गया स्वरूप तो बन गया स्वरूप और अभेद बन गया पररूप। इसी प्रकार क्षेत्रके भी दो भेद करके सामान्य क्षेत्र और प्रदेशरूप क्षेत्र तो जब हम अखण्ड क्षेत्रका निर्णय कर रहे हैं तब सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षा वह सत् है और प्रदेशभेदात्मक क्षेत्रसे असत् है तो इस प्रसंगमें अभेदस्वरूप तो स्वरूप बना और प्रदेशभेदरूप पररूप हो गया। इसी प्रकार जब कालकी अपेक्षासे हम सत् असत्का निर्णय करते हैं तो काल भी अभेद-रूप और अभेदरूप दो पद्धतियोंसे देखा जाता है। कालका अर्थ यहाँ परिणमन है। तो परिणमनको जब हम सामान्य परिणमनसे देखते हैं तो सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे सत् है और विशेष परिणमनकी दृष्टिसे असत् है। तो यहां सामान्य परिणमन स्वरूप हुआ और विशेष परिणमन पररूप हुआ। इसी प्रकार अब हम भावमें स्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर रूपका निर्णय करने चलते हैं तो भाव भी भेद पद्धति और अभेद पद्धतिसे बोले जाते हैं। तो जब हम अभेद पद्धति स्वरूप हुआ और भेदपद्धति पररुप हुआ। यों प्रत्येक द्रव्य पर्यायमें हम स्वरुप और पररुपको समझ सकते हैं।

शुद्धद्रव्य व व्यवहार द्रव्यकी अपेक्षासे जीवादिद्रव्यषटककी स्वपर-रूपव्यवस्था - अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जीवादिक द्रव्य ६ हैं। और, जब छहों द्रव्योंको एक साथ जानना चाह रहे – जैसे कहते हैं कि लोक षट्द्रव्यात्मक है। तब छहों जीवादिक द्रव्योंका स्वद्रव्य क्या रहा और परद्रव्य क्या रहा जिससे कि हम जीवादिक ६ द्रव्योंका सत्त्व और असत्त्व बना सकें, क्योंकि जब ६ जीवादिक द्रव्योंको पक्षमें रखा, उनका हम वर्णन करना चाह रहे हैं। तो ६ द्रव्योंको छोड़कर अन्य द्रव्य तो कोई होता ही नहीं है जिससे कि हम किसीको पररुप मान सकें तो जब कभी पररुप न रहा तो पररुपसे असत्त्व सिद्ध न किया जा सकेगा और जहाँ पररुपका असत्त्व न बन सका तो वहाँ स्वरुप भी कैसे कहेंगे ? तो इस तरह जीवादिक ६ द्रव्योंका स्वरुप स्वद्रव्य और परद्रव्य नहीं बनता। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि उन छहों द्रव्योंका भी हम शुद्ध द्रव्य और व्यवहार द्रव्य ऐसे दो भेद करके शुद्ध सद्द्रव्यकी अपेक्षासे तो छहों द्रव्योंका सत्त्व प्रतीत होगा और व्यवहार द्रव्यकी अपेक्षा रखकर वहाँ छहों द्रव्योंका असद्भाव सिद्ध होगा इस तरह छहो द्रव्योंके सम्बन्धमें भी शुद्ध सद्द्रव्य तो स्वरुप बनेगा और व्यवहार द्रव्य पररुप बनेगा। शुद्ध सद्द्रव्यका अर्थ है जहाँ केवल सत् सत् यही निर्णय बसा हुआ है। किसी विशेष व्यक्तिरुप सत्का परिचय नहीं है ऐसे सद्द्रव्यको शुद्ध सद्द्रव्य कहते हैं। और, व्यवहार द्रव्यका अर्थ है जहाँ व्यक्ति भिन्न–भिन्न कुछ कुछ द्रव्योंका परिचय है वह व्यवहारद्रव्य रहता है। तो जब छहों द्रव्योंको पक्षमें रखा कि इनका स्वरुप और पररुप बताना है तो उनका स्वरुप है शुद्ध सद्द्रव्य, और पररुप है व्यवहार द्रव्य। अर्थात् जहां केवल सत् सत्की दृष्टि रखकर विचार किया जा रहा है वहाँ वह छहों द्रव्योंका स्वरुप है और जहाँ किसी किसी भिन्न भिन्न व्यक्ति रुपसे द्रव्य देखा जा रहा है जिसे आवान्तर सत् कहते हैं वह अपेक्षासे छहों द्रव्योंका परद्रव्य बनेगा। यों छहों द्रव्योंका भी स्वरुपसे सत्त्व और पररुपसे असत्त्वकी प्रतिष्ठा होती है।

अनेक उदाहरणों सहित शुद्ध द्रव्यके स्वरूपसत्त्व पररूपासत्त्वका प्ररूपण—यहाँ शकाकार कहता है कि शुद्ध द्रव्यमें स्व और परद्रव्यकी व्यवस्था कैसे बन जायगी ? क्योंकि शुद्ध द्रव्य तो समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप हैं और समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको छोड़कर अन्य द्रव्यादिक कोई भी नही है। तो जब कुछ अन्य चीजें भी नहीं मिलीं, कोई परद्रव्य ही नही मिला तो स्व द्रव्य और पर द्रव्यकी व्यवस्था कैसे हो जायगी ? इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शुद्ध द्रव्यमें सत्त्व और असत्त्व निरखनेके लिए स्वरूप तो है सकल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। सो समस्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

द्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे तो शुद्ध द्रव्यकासत्व है और जहाँ सकल द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव नहीं है कुछ ही द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव है ऐसे कतिपय भावोंकी अपेक्षा लेकर असत्वकी व्यवस्था निरखते है तो शुद्ध द्रव्य समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे सत है और कतिपय सद्भावकी अपेक्षासे असत् है, क्योंकि जहां कतिपय सद्भाव निरखा जाता है वहां शुद्ध द्रव्य न देखेंगे वह व्यवहार द्रव्य बन गया। तो यों शुद्ध द्रव्यमें भी अपेक्षासे सत्व असत्वकी व्यवस्था बन जाती है। तब सिद्धान्त में यह वचन है कि सत्ता प्रतिपक्ष सहित होता है पूर्णतया युक्तिसंगत है। इस तरह सत्ता सामान्यमें भी स्व रूप और पर स्वरूपकी व्यवस्था है। स्पष्ट ही किया गया कि सत्ता भी असत्ता करके सहित है शुद्ध सत्ता अशुद्ध सत्ताकी अपेक्षासे असत् है और शुद्ध सत्ताकी अपेक्षासे सत् है। तब इस ही प्रकार जो सकल क्षेत्र है, आकाश है, जो अनादि अनन्त है उसमें भी सत्वको सिद्ध करनेके लिए स्वपर सत्वकी व्यवस्था बनती है। जैसे सामान्य आकाश समस्त क्षेत्रकी अपेक्षासे सत् है और प्रतिनियत क्षेत्रकी अपेक्षासे असत् है तो शुद्ध क्षेत्रमें सकल क्षेत्र तो स्वरूप है और प्रतिनियत क्षेत्र पररूप है इसी प्रकार अनादि अनन्त कालके सत्वके लिए समस्त काल स्वरूप तो स्वरूप है और प्रतिनियत काल पररूप है। इस तरह शुद्ध तत्वमें भी सत्व असत्वकी व्यवस्था बन जाती है। स्वरूप चतुष्टयसे ही सत्व असत्वकी व्यवस्था बनानेसे जो दोष कहे हैं उसका निष्कर्ष यह लेना है कि स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षासे तो वस्तु सत् है और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षा लेकर वस्तु असत् है।

स्वरूपसत्वका छोड़कर अन्य भङ्गोंकी अनुपपत्तिका शंकाकार द्वारा कथन— अब शंकाकार कहता है कि निजके सत्वका ही नाम परका असत्व है तो निजके सत्वमें ही परके असत्वकी प्रतीति होनेसे वस्तुमें स्वरूप सत्व और पररूपासत्व का भेद नहीं है। वस्तु जो है सो ही है उसीको स्वरूपसत् बोलते हैं उसीको परका असत्व बोलते हैं। चीज तो मूलमें एक ही है। इस कारण सत्व असत्वका भेद नहीं बनता। जब सत्व असत्वका भेद नहीं बनता तो प्रथम और द्वितीय ये दो भंग नहीं घटित होते। उनमेंसे कुछ भी एक बोल दिया जाय उसमें ही स्वरूप सिद्ध हो जाता है। तो जब प्रथम और द्वितीय भंग नहीं बनें तो तृतीय आदिक भंग भी नहीं बन सकता, क्योंकि अन्य भंग बननेका आधार तो प्रथम और द्वितीय भंग है। जब दोनों को क्रमसे निरखते हैं तो उभय बना दिया। जब एक साथ निरखते हैं तो अवक्तव्य बना दिया। इसी प्रकार अन्य भी भङ्ग बन जाते हैं। तो जब प्रथम द्वितीय भङ्ग ही नहीं बनते तब तृतीय आदिक भङ्गोंका अभाव होनेसे सप्तभङ्गी घटित ही नहीं होती।

स्यात् सत्व, स्यादसत्व, स्यादुभय आदि धर्मोंको सिद्ध करते हुए उक्त शङ्काका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन युक्तिसंगत नहीं है कि प्रथम द्वितीय भङ्ग नहीं बनते स्वरूपचतुष्टयकी अपेक्षासे स्वरूपमें भेद प्रतीत

Version 1

होता है। और इस तरह एक वस्तुके सत्व और असत्वका भेद उत्पन्न हो जाता है। यदि सत्व असत्वका भेद वस्तुमें न माना जाय तो स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षा से जैसे पदार्थ सत् बताया जाता है उसी प्रकार पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे भी सत्व बन जायगा, अथवा जैसे पररूपकी अपेक्षासे वस्तुमें असत्व कहा जाता है उसी प्रकार स्वरूप अपेक्षासे भी वस्तुमें असत्व बन जायगा। तो सकल जगत शून्य हो जायगा। तो वस्तुमें सत्व और असत्व जब दोनोंकी प्रतीति होती है तो यह असंगत कहा जा रहा है कि प्रथम और द्वितीय भंग नहीं बनते। अपेक्षा भेदसे धर्म भेदकी प्रतीति निर्बाध सिद्ध है। जैसे बेरकी अपेक्षासे बेलमें स्थूलपना है तब उस ही बेलमें बैंगनकी अपेक्षा से सूक्ष्मपना हो जाता है इस प्रतीतिमें कोई बाधा नहीं आ रही। तो अपेक्षा भेदसे धर्म भेदकी प्रतीति होती है। इसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है। यदि समस्त आपेक्षक धर्मोंको अवास्तविक कह दिया जाय तब नील है और यह उससे भी गहरा नील है। यह सुख है, यह उससे और यह इससे भी अधिक सुर्क है आदिक प्रतीतिमें भी वास्तविकता न रहेगी। और प्रत्यक्षमें भी परमार्थता न रहेगी कि यह इससे भी अधिक विशद है और इस प्रकार फिर ज्ञान द्वैतका प्रवेश भी न हो सकेगा। क्योंकि वहाँ ग्राह्याकार जब सिद्ध न हो सका तो ग्राह्याकार भी कहाँसे सिद्ध होगा? इससे सिद्ध है कि वस्तुमें सत्व और असत्व दोनोंके भेदकी उपपत्ति होती है। जब सत्व और असत्वकी एक वस्तुमें सिद्धि हो गयी तब यह निर्णय रखना चाहिए कि पदार्थ सद्सदात्मक हैं अर्थात् कथञ्चित उभयस्वरूप है। सर्वथा पदार्थोंको उभय स्वरूप न मानना चाहिए। कथंचित सत् है और कथंचित असत् है इस प्रकार न माना जाय तो सभी वस्तु प्रत्येक सारे कार्योंको करदें, किन्तु देखा यह जा रहा कि सभी पदार्थ सब कार्योंको नहीं कर पाते। प्रत्येक पदार्थमें अपने अपने अनुकूल ही अर्थ क्रिया है। इससे सिद्ध है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है। लोकमें भी यह सब देखा जा रहा है। पट आदिक पदार्थ घटादिककी तरह अर्थक्रिया नहीं कर सकते कि वह पट घटकी तरह पानी भर ला सके तो इससे सिद्ध है कि पट अपने ही स्वरूपसे है और वह अपने ही अनुकुल अर्थ क्रिया कर सकेगा। घटके स्वरूपसे पट नहीं है तभी पट घटकी अर्थक्रिया नहीं कर सकता। सभी पदार्थ उभयात्मक है। इस प्रसंगमें दृष्टान्त बहुत ही सुगम है और इतना तो सभी प्रवादी निर्विवाद स्वीकार करते हैं कि अपने माने हुए तत्त्वका तो सत्व है और दूसरेके माने गए तत्त्वका असत्व है। यहाँ यही बात तो आयी कि अपने माने हुए तत्वका स्वरूपसे सत्व है और अनिष्ट जो परका माना गया तत्व है उस रूपसे असत्व है। तो स्वपररूपोपादानापोहमें कोई भी विवाद नहीं करता। तो ये ही सब दृष्टान्त बन गये। तो पदार्थ कथंचित सत् और कथंचित असत् है इसमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं उत्पन्न होता।

एक वस्तुमें सत्त्व असत्त्व आदिक नाना धर्मोंकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि एक वस्तुमें सत्व और असत्त्व दोनों कहना युक्तिके विरुद्ध है,

http://www.jainkosh.org

क्योंकि परस्पर विरुद्ध दो धर्मोंका एक अधिकरण नहीं बन सकता। अर्थात् एक वस्तुमें विरुद्ध दो धर्म नहीं ठहर सकते जैसे शीतस्पर्श और उष्णस्पर्शका एक अधिकरण न हो सकेगा। वहाँ भिन्न ही अधिकरण मानना होगा। इसी प्रकार समस्त सद्भूत पदार्थों में सत्व और असत्व युक्तिसे विरुद्ध सिद्ध होते हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका एक वस्तुमें अवस्थान होना विरुद्ध नहीं है, क्योंकि कथंचित् विवक्षित होनेसे उनमें विरोध नहीं रहता। और एक ही वस्तु सत्वरूप है असत्वरूप है इस प्रकारकी जानकारी भी पायी जाती है। जो वस्तुमें एकत्व होना, अनेकत्व होना जहाँ ये दो धर्म परस्पर विरुद्ध हैं, अपना स्वरूप न्यारा-न्यारा रखते हैं फिर भी विवक्षासे एक वस्तुमें दोनोंकी सिद्धि हो जाती है और आगम ज्ञान व प्रत्यक्ष ज्ञानमें जो कि एक वस्तुका ही विषय कर रहा हो अर्थात् आगम ज्ञानसे भी एक वस्तु जाना जा रहा हो और वही वस्तु प्रत्यक्षसे भी जाना जा रहा हो। तो ज्ञान तो वे दो हैं — आगम ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान और एक आत्मामें जाना जा रहा है, तो इन दोनों ज्ञानोंका समवाय भी एक आत्मामें है। फिर भी कारणके भेदके कारण इस ज्ञानका स्वरूप निष्पन्न हुआ है इस कारण इन दोनों ज्ञानोंमें स्वभावभेद है। आगमज्ञानमें तो शब्द कारण है। प्रत्यक्षज्ञानमें इन्द्रियाँ कारण हैं तो इन्द्रियसे प्रत्यक्ष ज्ञान निष्पन्न होता है और शब्दसे आगम ज्ञान निष्पन्न होता है तो इन दोनों ज्ञानोंमें स्वभावभेद हो गया ना। तो जहाँ स्वभाव भेद है वहाँ अनेकान्तताकी बात स्वयं सिद्ध हो जाती है। इतनेपर भी आत्मद्रव्यकी अपेक्षा इन दोनों ज्ञानोंमें एकत्व है। अर्थात् यह एक जीव आगम ज्ञानसे और प्रत्यक्षज्ञानसे एक वस्तुको जान रहा है तो यों इन दोनों ज्ञानोंमें स्वभावभेद होनेसे अनेकता है जिसपर भी कथंचित एकत्व माना गया है कि क्योंकि इनमें भेद नहीं पाया जाता। तो इस तरहसे सिद्ध है कि एक वस्तुमें विरुद्ध नानाधर्म रह सकते हैं।

शाब्दिक ज्ञान और प्रत्यक्षज्ञानमें एकात्मसमवेतता तथा स्वभावभेद होनेपर भी कथंचित् एकत्वकी सिद्धि होनेसे वस्तुकी अनेकान्तात्मकताकी प्रसिद्धि—यहाँ कोई यह नहीं कह सकता है कि शब्दज्ञान और प्रत्यक्षज्ञानमें स्वभाव भेद सिद्ध नहीं है। बराबर स्पष्ट प्रतिभास और अस्पष्ट प्रतिभास स्वभावका यहाँ भेद पाया जाता है। आगमज्ञानमें अस्पष्ट प्रतिभास है और प्रत्यक्षज्ञानमें स्पष्ट प्रतिभास है और ऐसी बराबर प्रतीति हो रही है तो प्रतीतिका लोप नहीं किया जा सकता और न यह कहा जा सकता कि प्रत्यक्षज्ञान और आगमज्ञान एक वस्तुका विषय नहीं करते। और न यह भी कह सकते कि प्रत्यक्षज्ञान और आगमज्ञान एक आत्मद्रव्यके आश्रयमें नहीं है। यदि ये दोनों ज्ञान एक वस्तुको विषय करने वाले न होते और एक वस्तुको विषय करने वाले न होते और एक आत्मद्रव्यके आश्रय न होते तो उस ज्ञानमें और उस विषयभूत वस्तुमें प्रत्यभिज्ञान नहीं बन सकता था। जैसे कि यह प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है कि जो ही मैंने सुना है वही मेरे द्वारा देखा जा रहा है।

Version 1

और जैसा ही मुझमें यह सुना है वह ही मैं दिख रहा हूँ। ऐसी प्रतीति हो रही है जो प्रत्यभिज्ञानसे सम्बन्धित है। किसी प्रकारकी बाधा नहीं आ रही है। उससे यह सिद्ध है कि आगमज्ञान और प्रत्यक्षज्ञानमें दोनोंका आधार आत्मद्रव्य है और इन दोनों ने एक वस्तुको विषय किया है, क्योंकि इनमें विच्छेद भी नहीं पाया जाता। अब शंकाकार कहता है कि उपादानक्षण और उपादेयक्षणमें यह ही वह है ऐसा अनुसंधान सिद्ध हो जाता है इस कारणसे उन ज्ञानोंमें विच्छेद नहीं भी पाया जा रहा है फिर भी एकत्वकी सिद्धि नहीं होती। हाँ एक संतानपनेकी ही सिद्धि हो रही है। एकत्व यों सिद्ध नहीं हो रहा कि इसमें द्रव्यका अभाव है। जो ज्ञानक्षण है और अर्थ क्षण है वह ही वास्तविक सद्भूत पदार्थ है। तो उनमें स्वरूपएकत्वकी सिद्धि नहीं की जा सकती। इसके समाधानमें कहते हैं कि यदि स्वरूपका एकत्व न माना जाय तो उन ज्ञानक्षण और अर्थक्षणोंमें उपादानका और उपादेयताकी उपपत्ति नहीं बन सकती। इस कारण मानना होगा कि वे आगमज्ञान और प्रत्यक्षज्ञान एक आत्मद्रव्यमें हुए हैं। एक वस्तुको विषय करने वाले हैं और इस तरह उन दोनों ज्ञानोंमें स्वभावभेद है स्वभाव भेद होनेपर भी उनमें कथंचित् एकत्व माना ही गया है अतः सिद्ध है कि एक वस्तुमें विवक्षासे विरुद्ध धर्मोंका अवस्थान हो सकता है।

स्वरूपैकत्वके अभावमें उपादानभावकी व उपादेयभावकी अनुपपत्ति- उपादानभूत और उपादेयभूत परिणामोंमें द्रव्यदृष्टिसे स्वरूपकी एकता माननी ही होगी। यदि द्रव्यकी अपेक्षासे उनमें एकत्व न स्वीकार किया जाय और भिन्न-भिन्न ही पदार्थ मान लिए जायें उन परिणामोंमें जिसने पूर्व परिणामको उपादान माना हो और उत्तर परिणामको उपादेय माना हो तो सुनो वहाँ क्या आपत्ति आयगी ? इस मतव्यमें अब उपादान कार्यके सम्बन्धमें अपना स्वरूप न रख सकेगा, क्योंकि उपादान तो पूर्वक्षणमें हुआ और वही नष्ट हो गया और उपादेय अर्थात् कार्य जब हुआ उस समयमें उपादान है नहीं तो जब कार्यके समय उपादान अपने स्वरूपको नहीं रख सकता और वहाँ कार्यकी उत्पत्ति मान ली जाती है अर्थात् उपादानभूत परिणाम के अभावमें उपादेयभूत कार्यका मान लिया गया तो इसी प्रकार बहुत काल हो जाय उपादानसे निवृत्त हुए उस समय भी बात तो यही सामने रही कि कार्यके समयमें उपादान अपना स्वरूप नहीं रख रहा। तो वहाँ भी कार्यकी उत्पत्ति बन जाय। यह नियम न बन सकेगा जब कि उत्तर समयमें ही कार्यका कारण होता है पूर्व उपादान। उपादान अपने समयोंमें कभी भी किन्हीं भी कार्योंका कारण बन जाय और यों बहुत से क्षण पहिले गुजर गए वे सभी उस क्षणमें कार्यके कारण कहलाने लगेंगे। तो अब कार्य समयमें जब उपादान नहीं है और कार्य उत्पन्न हो गया तो वहाँ यह भेद न बन सकेगा कि इस कार्यका उपादान कारण यह है। न जाने कितने ही उपादान कारणों से वह कार्य हो गया हो तो ऐसी आपत्ति आ जायगी और जब द्रव्य दृष्टिसे उन परिणामोंमें एकता स्वीकार की जाती है तब वहाँ यह आपत्तिका प्रसंग नहीं होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूर्वोत्तरपर्यायोंमें द्रव्यदृष्टिसे एकत्वकी व पर्याय दृष्टिसे अनेकत्वकी सिद्धि -इस प्रसगमें शंकाकार यह कहता है कि उपादान और उपादेयको स्वरूपसे एक मान लिया जाय तो जब उनमें एकता ही हो गयी तो समान कालमें उपादान और उपादेय प्राप्त हो गए। जो स्वरूपसे एक रूप हैं वे हर समय एक साथ हैं। तो यों उपादान और उपादेय एक साथ प्राप्त हो जायेंगे। इसके उत्तरमें स्याद्वाद शासनवादी कहता है कि यहाँ यह दोष नहीं दे सकते कि जैसे दाहिना बायाँ सींग सर्वथा समान कालमें हैं तो उनमें उपादान उपादेयभाव नहीं बनते। सो ऐसी बात यहाँ नहीं है। दाहिने बायें सींगकी तरह उपादान उपादेयमें सर्वथा समानकालता नहीं है इसी कारण उन दोनों पर्यायोंमें पूर्व और उत्तर पर्यायमें उपादान उपादेय भावका विरोध नहीं होता, क्योंकि उन पूर्वोत्तर पर्यायोंमें द्रव्य सामान्यकी अपेक्षासे एकत्व माना ही गया है। जैसे मिट्टीका घड़ा बना और घड़ा फूटकर कपाल हो गए तो वहां दो पर्यायें हैं – घट और कपाल। कपाल पर्याय होनेका उपादान है घट पर्याय। तो घट और कपालमें मिट्टीकी दृष्टिसे एकता है अन्यथा कोई भी उपादान किसी उपादेयका उपादान बन बैठता। तो जैसे घटके समयमें कपाल नहीं है। कपालके समयमें घट नहीं है। किन्तु घट और कपाल—दोनों ही कालमें मिट्टी है तो मिट्टीकी अपेक्षासे घट और कपालमें एकता है। हाँ विशेषकी अपेक्षासे याने पर्याय दृष्टिसे यह घट है, यह कपाल है ऐसा मात्र उन पर्यायोंकी दृष्टिसे है, वहां उन परिणामोंमें उपादान उपादेयभूत पर्यायोंमें एकत्व नहीं है। यह बात तो सही है, पर उनमें सर्वथा नानत्व है या सर्वथा एकत्व है यह बात नहीं कही जा सकती। द्रव्यदृष्टिसे उन पूर्वोत्तर पर्यायोंमें एकत्व है। पर्याय दृष्टिसे उन पूर्वोत्तर पर्यायोंमें एकत्व नहीं है, क्योंकि पहिली पर्यायमें होने वाला भाव (स्वभाव) पीछे होने वाली पर्यायमें नहीं है और पीछे होने वाली पर्यायमें होने वाली पर्यायमें होने वाला स्वभाव पूर्वपर्यायमें नहीं है इस कारण पर्याय अपेक्षासे उन पर्यायोंमें उन उपादान उपादेयभूतमें एकत्व नहीं है।

प्रतिभासविशेषके कारण पूर्वोत्तर परिणामोंमें क्रम अक्रमकी एकत्व व अनेकत्वकी सिद्धि— अब यहां शंकाकार कहता है कि इस तरह तो पूर्वोत्तर परिणामोंमें एकत्व बनेगा ही नहीं क्योंकि जहाँ क्रम है वहाँ ही यह कहा जा सकता है कि यह पूर्व पर्याय है, यह उत्तर पर्याय है। तो अक्रम माननेपर तो यह न कहा जासकेगा कि यह पूर्व पर्याय है और यह उत्तर पर्याय है। उपादानभूत पूर्व पर्याय है उपादेयभूत उत्तरपर्याय है. यह बात तो सही है, पर यह जो मान लिया गया है कि इस पर्यायमें अक्रमता है याने द्रव्य अपेक्षासे एकत्व है सो एकत्व होना, अक्रम होना पूर्व और उत्तर पर्यायमें विरोध बनता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि पूर्व और अपर परिणामोंमें अक्रमका विरोध है यह बात युक्तिसगत नहीं है, क्योंकि जब प्रतिभास विशेष होनेके कारण निरपेक्ष क्रम भी मान लिया गया अर्थात् क्षणिकवादमें पर्याय मात्र ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य माना गया है और वहाँ ही यह व्यवस्था मानी गई है कि पूर्व पर्याय उत्तर पर्याय का कारण होता है उपादान होता है तो वहाँ क्रम माना गया ना ! पूर्वद्रव्य और उत्तर और उसे माना है निरपेक्ष मायने जब एकता नहीं है, स्वभाव नहीं है, द्रव्य ही नहीं है तो उन दोनोंका होना तो स्वतंत्र है। जैसे प्रथक-प्रथक पाये जाने वाले पदार्थों में निरपेक्षता है, कोई किसीका सत्त्व लेकर सत् नहीं है, इसी प्रकार इन उपादान उपादेयभूत पर्यायोंमें भी कोई अपेक्षा लेकर सत् नहीं माना है क्षणिकवादमें, किन्तु निरपेक्षक्रम माना गया है और वह प्रतीत होता है प्रतिभास भेदकी वजहसे। घट घट ही है, कपाल कपाल ही है। घटका प्रतिभास और किस्मका है। कपालका प्रतिभास अन्य प्रकारसे है तो प्रतिभास भेदकी वजहसे जब निरपेक्ष क्रम भी मान लिया जाता तब यदि प्रतिभासकी एकता हो रही हो तो उस एकत्वके कारण अक्रम क्यों न मान लिया जायगा ?

पूर्वोत्तर पर्यायोंमें क्रम व अक्रमकी प्रतीतिका उदाहरण जैसे घट और कपालमें क्रम प्रतीत होता है, क्योंकि घटका प्रतिभास अन्य है कपालका प्रतिभास अन्य है ! तो यहाँ ही मिट्टीकी अपेक्षासे एकत्व भी तो प्रतिभासमें आ रहा। मिट्टीको निरखकर घटको भी कहेंगे वही चीज तो है, कपालको भी कहेंगे कि वही मिट्टी तो है तो एक मिट्टीकी दृष्टिसे प्रतिभासमें एकत्व भी तो नजर आया, उस कारणसे फिर इनमें अक्रम क्यों न मान लिया जायगा ? यदि यह हठ करो कि प्रतिभासका एकत्व भी है तो भी वहाँ अक्रम नहीं माना जाता याने घट और कपालमें जो मिट्टीका प्रतिभास हो रहा है उस मिट्टीका प्रतिभास होनेकी दृष्टिसे उन दोनोंमें एकता है, वह भी मिट्टी है, कपाल भी मिट्टी है, तो ऐसे प्रतिभासका एकत्व होनेपर भी यदि मिट्टीका अक्रम नहीं माना जाता कि वह सर्वत्र है, सर्वकाल है, ऐसा एक साथ नहीं माना जा रहा तब फिर प्रतिभास विशेषकी वजहसे क्रम भी कैसे मानने योग्य हो जायगा ? क्रम मानने का हेतु तो यही होता था कि वहाँ प्रतिभास विशेष हो रहा है तो इसमें उल्टी बात होने दो याने प्रतिभास विशेष न हो, प्रतिभासकी एकता हो तो अक्रम मानना चाहिए लेकिन अब प्रतिभासकी एकता होनेपर भी अक्रम नहीं माना जा रहा तो प्रतिभास भेद होनेपर भी क्रम भी न माना जाय। सभी वस्तुओंका उस ही प्रकारसे स्वरूप है जैसा कि प्रतिभासमें आ रहा है। क्रम और अक्रम जब दोनों ही प्रतिभासमें आ रहे हैं, स्पष्ट परिचयमें आ रहे हैं तो उनमें विरोध नहीं माना जा सकता। जैसे घट और कपाल. इनमें क्रम नजर आ रहे हैं पहिले घट, पीछे कपाल और मोटी दृष्टिसे अक्रम नजर आ रहे हैं, पहिले भी मिट्टी अब भी मिट्टी। तो क्रम और अक्रम ये दोनों प्रतिभासमें आ रहे हैं तो वहाँ विरोधका अवतार नहीं है।

वस्तुके क्रमाक्रमात्मक होनेमें सहावनस्थालक्षण विरोधका अभाव—विरोध होता है अनुपलब्धि लक्षणात्मक अर्थात् न पाया जाय उस ही को तो विरोध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कहते हैं। तो विरोध होता है तीन प्रकारसे। सहानवस्थारूप विरोध परस्पर परिहार स्थितिरूप विरोध और वध्यघातकरूप विरोध। सो जब वस्तुमें स्वरूपसे सत्त्व और पररूपसे असत्त्वका अनुपलम्भ नहीं है, पाये ही जा रहे हैं स्पष्ट सामने विदित हैं कि कोई भी पदार्थ हो वह अपने स्वरूप से सत् और पररूपसे असत् है तब यहाँ सहानवस्थारूप विरोध हो ही नहीं सकता। हाँ शीत और उष्णस्पर्शमें सहानवस्थाका विरोध है एक ही वस्तुमें शीत पर्याय और उष्ण पर्याय नहीं बनता लेकिन इसकी तरह सत्त्व और असत्त्वका तो विरोध नहीं है। घट है, अपने स्वरूपसे है अघट रूपसे नहीं है। ये दोनों बातें एक साथ पायी जा रही हैं ना। न पायी जायें तो कुछ भी नहीं रह सकता। मान लो वह वस्तु अघट स्वरूपसे भी सत् हो जाय तो घट कहाँ रहा? यदि घट स्वरूपसे भी सत् न रहे तो घट कहाँ रहा? तो वस्तुके स्वरूपसे सत्त्व और पररूप से उस ही समय असत्त्व पाया जाता है जब सत्त्व और असत्त्वका क्रम और अक्रमका सहानवस्थारूप विरोध तो होता ही नहीं है, तब निर्णय रखना चाहिये कि वस्तु क्रमाक्रमात्मक है।

परस्परपरिहारस्थितिकी विरोधनियामकता न होनेसे क्रम अक्रमकी एक वस्तुमें सिद्धि—अब दूसरे विरोधकी बात सुनो—द्वितीय विरोधका नाम है परस्पर परिहार स्थिति अर्थात् एक दूसरेका परिहार करके ही रह सके। एक हो वहाँ दूसरा न ठहरे। दूसरा हो तो वहाँ वह पहिला न रहे। परस्पर एक दूसरेका परिहार करके हो रह सके ऐसे विरोधका नाम है परस्पर परिहार स्थिति। सो देखिये—परस्पर परिहार स्थिति भी पायी जाती है और विरोध न कहलाया अगर दो तत्त्व एक दूसरेका परिहार करके रह रहे हैं तो यह कोई विरोधैकान्तकी बात नहीं है। वहाँ विरोध हो भी नहीं सकता। जैसे एक आम्रफलमें रूप और रस दोनों पाते जा रहे हैं पर रूपका लक्षण क्या है और रसका लक्षण क्या है? लक्षण तो पृथक्-पृथक् हैं ना जो चक्षु इंद्रिय द्वारा ग्राह्य हो वह रूप है। जो रसना इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो वह रस है। तो रूप रसके लक्षणको स्वीकार नहीं करता और रस रूपके लक्षणको अंगीकार नहीं करता। तो रसका लक्षण रूपका परिहारपूर्वक ही तो है और रूपका लक्षण रसके लक्षणके परिहार पूर्वक ही है तो रूप और रस दोनों आम्रफलमें हैं और हैं वे परस्पर परिहारपूर्वक ही। लेकिन विरोध तो नहीं है। एक ही आम्रफलमें रूप भी पाया जा रहा है और रस भी पाया जा रहा है तब एक वस्तुमें जो भी सम्भव हो सकता है स्वरूपदृष्टिसे उनमें परस्पर परिहार स्थित है तो भी विरोध नहीं है और यह तो सप्रतिपक्ष धर्मकी बात कर रहे हैं। जो सप्रतिपक्ष नहीं है अर्थात् एकदम उसके विपरीत नहीं है। हैं दोनों उनमें भी परस्पर परिहार स्थिति पाई जाती है। जैसे आत्मामें ज्ञान और आनन्द है, ज्ञानका जो स्वरूप है वह ज्ञानका ही है, आनन्दका जो स्वरूप है वह आनन्दका ही है, आनन्द ज्ञानके स्वरूपरूप नहीं बन जाता, ज्ञान आनन्दके स्वरूपरूप नहीं बन जाता। तो लक्षणदृष्टिसे परस्पर परि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हार करके दोनों हैं, लेकिन दोनोंका सद्भाव तो एक आत्मामें पाया ही जा रहा है। तो क्रम और अक्रमके एक साथ रहनेका सत्व और असत्वके एक साथ रहनेका परस्पर परिहार स्थितिरूप विरोध बताकर विवाद नहीं उठाया जा सकता। हाँ जो धर्म एक वस्तुमें असम्भव है अथवा कुछ सम्भव है कुछ असम्भव है उनमें एकत्व या एकाधिकरण नहीं हो सकता है। जैसे पुद्गलमें ज्ञान और दर्शनका सद्भाव नहीं है। क्योंकि पुद्गलमें ज्ञान दर्शन दोनों ही सम्भव नहीं है और पुद्गलमें रूप और ज्ञान इन का विरोध है। यद्यपि रूप पुद्गलमें सम्भव है किन्तु ज्ञान सम्भव नहीं, लेकिन जो सम्भव है ऐसे धर्मोंमें विरोधकी बात नहीं कही जा सकती।

वस्तुमें उपलब्ध सर्व धर्मोंकी समान बलवत्ता होनेसे एकानेकादि धर्मों में वध्यघातक भावरूप विरोधका अभाव— तीसरे प्रकारका विरोध है वध्य घातकभाव एक हननके योग्य है और एक उसका घात करने वाला है ऐसा विरोध वध्यघातक भाव कहलाता है, जैसे सर्प और नेवलेमें वध्यघातक भाव है सो वध्य-घातक भाव वाला विरोध सत्व और असत्वमें नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह विरोध तो दुर्बल और बलवानके बीच होता है। जैसे सर्प और नकुलमें नकुल बल वाला है, सर्प निर्बल है तो उनमें वध्यघातक भाव बन जाता है। नेकला साँपको मार डालता है और कदाचित् कोई सर्प अतीव बलवान हो तो वह निर्बल नकुलको भी मार डालता है। तो वध्यघातक भावरूप विरोध निर्बल और बलवानके बीच हुआ करता है। लेकिन सत्व और असत्वमें इस विरोधकी शंका नहीं की जा सकती, क्योंकि सत्व और असत्व दोनों ही समान बलवान हैं और यह बात आगेकी कारिकामें बताई जायगी। संक्षेपमें यह समझ लीजिये कि वस्तुमें सत्व जितने ही बलपूर्वक है, अर्थात् स्वरूपसे वस्तु सत् है यह बात जितनी दृढ़तासे कायम रहती है उतनी ही दृढ़तासे असत्व भी कायम रहता है अर्थात् पररूपसे असत्व है यह धर्म भी उतनी ही दृढ़तासे कायम रहता है। इन दोनोंमें यह भेद नहीं किया जा सकता कि स्वरूप सत्व तो बलवान है और पररूप असत्व दुर्बल है या पररूपसे असत्व बलवान है और स्वरूपसे सत्व निर्बल है। यद्यपि कुछ दार्शनिकोंने ऐसी ध्वनि निकाली है तो यह आवाज एक मूडका परिणाम है। जिस ओर उनका उपयोग हुआ उसका ही आग्रह कर बैठे। तब वहाँ उन्हें ऐसा विदित हुआ कि पररूपका असत्व बलवान है। किन्हींने ऐसा प्रतीत किया कि सत्व बलवान है। जैसे अन्यापोहवादी कहते हैं कि शब्दका अर्थ सीधा वही नहीं है किन्तु शब्दका वाच्य है अन्यापोह और वहाँ अन्यापोह ही विदित होता है। उसमें फलित अर्थ निकल आता है और सत्ता द्वैतवादी कहते हैं कि सर्व कुछ सत् सत् ही है, असत् कुछ हुआ ही नहीं करता। सत्में ही कुछ बात कही जा सकती, असत्में बात नहीं कही जा सकती। तो यों उन दार्शनिकोंकी भांति कल्पना युक्त नहीं है, क्योंकि स्वरूपसे सत्व और पररूपसे असत्व ये दोनों ही एक समान बलवान हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थके एकानेकाकारात्मकत्व, क्रमाक्रमस्वरूप, सामान्य विशेषात्मकत्वका परिचय उक्त विवरणसे यह सिद्ध होता है कि कोई भी लौकिक पुरुष अथवा परीक्षक पुरुष जानता है कि पदार्थ एक होकर भी अनेकाकाररूप है अर्थात् एकरूप और अनेकरूप है, अक्रम व क्रमस्वरूप है, अन्वय व्यतिरेक स्वरूप है। सामान्य विशेषात्मक है और जिसका सत् और असत् परिणाम है अर्थात् नित्यानित्यात्मक है। स्थिति, उत्पाद और विनाश स्वरूप है। अपने ही शरीरमें व्यापी है। यदि चैतन्य पदार्थको जान रहा है तो वह चैतन्य पदार्थ अपने शरीरमें व्यापक है। जो शरीर प्राप्त हुआ है उसके सर्व प्रदेशमें है और अचेतन पदार्थकी अपेक्षा लगाये तो उसका जो कुछ भी काय है, स्वरूप है वह अपनी ही उस कायमें व्यापक है। अर्थात् उनके जो अवयव हैं उन अवयवोंमें व्यापकर रहने वाला है। तीन कालमें रहता है। ऐसे अपने आपके स्वरूपको और परस्वरूपको कथंचित् प्रत्यक्ष करता है अथवा अनुमान आदिकसे परोक्षरूपमें जानता है जानकार। जैसे कि केश, मच्छर आदिकका विवेक करने वाले अथवा इनके व्यामोह रखनेकी बुद्धि वाले पुरुष उनका कथंचित् साक्षात्कार करते हैं और कथंचित् परोक्षरूपसे जानते हैं। यह आत्मा उस प्रकारके एक चैतन्यस्वरूपको धारण किये हुये है सो जो कि एकात्मक है। क्रमरूप है, अन्वयरूप, सामान्य स्वरूप सत्य परिणामात्मक जो सदा रहने वाले ऐसे एक चैतन्यको धारण करता है वही आत्म वस्तु सुखादिक नाना भेदोंको जो कि परस्परमें अपने सजातीयसे विविक्त स्वरूप हैं और अन्य विजातीयोंसे विविक्त स्वरूप हैं ऐसे सुखादिक भेदोंको भी धारण करता है अर्थात् यदि ऐसा माना जाय कि आत्मा एक एक होको धारण करता है अर्थात् या तो एक चैतन्यको भी धारण करता है या सुखादिकको इसमेंसे किसीका भी एकान्त माननेपर कहीं भी किसी भी प्रकार नियम न रह सकेगा।

एकानेकाकारात्मकताका निरीक्षण – उक्त समस्त वक्तव्यका सारांश यह है कि देखिये—सभी लौकिकजन अथवा बुद्धिमान परीक्षक पुरुष यह तो निरख ही रहे हैं कि आत्मा वह एक है। जो पहिले था वही अब है और अपने बारेमें नाश होनेका भ्रम भी नहीं है कि मैं सर्वथा नष्ट हो भी जाऊंगा। अनुभव होता है तो आत्माको एक और अक्रमरूप अर्थात् सर्व पर्यायोंमें वही वही तो है अन्वयरूप तथा सामान्यात्मक, जिसमें चैतन्य स्वरूप हो तो है ऐसे नित्य स्थिति स्वरूप अपने आपको द्रव्यदृष्टिसे प्रत्यक्ष करते हैं। अर्थात् स्व सम्वेदन ज्ञानके द्वारा स्पष्ट समझते हैं कि इसी प्रकार बाह्य पदार्थ जिनका कि संतानान्तर नाम है उनको भी द्रव्यकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष करता है और ये ही लौकिक व परीक्षक जन लिंगस शब्दसे और अन्य संकेतोंसे इस ही स्व और परको परीक्षारूपसे जानते हैं। अब उस ही स्वपर वस्तुको पर्याय दृष्टिसे भी निरख रहे हैं। पर्यायदृष्टिसे निरखनेपर स्वयं व पर सब अनेकाकार विदित हो रहा है। जहाँ भिन्न अनेक पर्यायें दृष्टिमें लायी जा रही हैं, वे सब व्यतिरेक रूप नहीं हैं। प्रतिक्षण नष्ट होने वाली है। वे सब विशेषरूप हैं। सामान्यरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। एकका दूसरेमें भेद है। अतएव वे सब विशेषात्मक हैं। और उनका परिणाम पहिले न था। वे असत् परिणाम वाले हैं। अब है जो परिणाम वह न पहिले था न आगे रहेगा। वह उत्पत्ति विनाश स्वरूप है। ऐसा पर्याय दृष्टिसे द्रव्य प्रत्यक्ष में अथवा परोक्षरूपमें विदित होता है। क्षेत्रकी अपेक्षासे पर्यायदृष्टिको लेकर यह विदित होता है कि निश्चयनयसे तो वह वस्तु है, दूसरे संदेशमें ही नियत है और व्यवहारनयसे अपने शरीरमें व्यापक है। यदि बाह्य अर्थकी चर्चा हो तो वह अपने अवयवमें व्यापक है, कालकी अपेक्षासे वह त्रिकाल गोचर है, तीनों काल रहने वाला है और पर्यायके सम्बन्धमें पर्यायका सत्त्व है। इस तरह लौकिक अथवा परीक्षक जन बुद्धिमान जन अथवा साधारण पुरुष भी ऐसा जानते हैं प्रत्यक्षरूपमें और परोक्षरूपसे. ऐसे आत्माको अथवा परपदार्थको द्रव्यादिककी अपेक्षा किस तरह प्रत्यक्ष करते हैं अथवा परोक्ष जानते हैं सो सुनो!

प्रत्यक्ष और परोक्षज्ञानोंसे वस्तुके एकानेकत्वका परिचय—साक्षात् करने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक जो विशद ज्ञान है उस निर्मल ज्ञानके द्वारा स्व और परका साक्षात्कार करता है। यह जीव विशद ज्ञान दो प्रकारसे हुआ करते हैं एक मुख्य रूपसे विशद ज्ञान, दूसरा व्यवहार रूपसे विशद ज्ञान। मुख्य विशद ज्ञान तो अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान है। जहां इन्द्रिय मनकी सहायता नहीं है, केवल आत्मशक्तियाँ ही सर्व जानी जा रही हैं। जो उसका विषय है वह तो है मुख्य रूपसे निर्मल ज्ञानकी बात और व्यवहारसे विशद ज्ञान है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष अर्थात् मतिज्ञान, उसके द्वारा जीव स्व और परको साक्षात्कार करता है। और परोक्षज्ञानके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक अविशद ज्ञानके द्वारा, जो अनुमान स्मरण आदिक नाना भेदरूप है ऐसे अविशद ज्ञानके द्वारा स्व और परको परोक्ष रूपसे जानता है। ज्ञानके दो भेद हैं, प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष तो विशद ज्ञानको कहते हैं। स्पष्टज्ञान जहाँ हो वह प्रत्यक्षज्ञान है और जो विज्ञान है वह सब परोक्षज्ञान है। विशद ज्ञान भी दो प्रकारसे है—मुख्य विशदज्ञान और सांव्यवहारिक विशद ज्ञान। तो इस तरह प्रमाण दो भेदरूप है—प्रत्यक्ष और प्रमाण। प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दो ज्ञानोंका ही पदार्थकी जानकारीमें व्यापार हुआ करता है। तो इस तरह सभी पुरुष स्वपर वस्तुको भेदाभेदात्मक रूपसे जान रहे हैं।

उदाहरणपूर्वक एकानेकात्मकताकी सिद्धि—इस अनुमान प्रयोगमें आ केश आदिकमें विवेक बुद्धि रखने वालोंका अथवा व्यामुग्ध बुद्धि वालोंका दृष्टान्त दि है, वह दृष्टान्त भी युक्तिसंगत है। देखा जाता है कि केश मच्छर मक्खी आदिकका जहाँ प्रतिभास हो रहा है ऐसे ज्ञान द्वारा उनका सत्त्व साक्षात्कार किया जा रहा है। जो जीव इन सबमें भेद डाल रहा है, भेदपूर्वक जान रहा है वह इसका सत्त्व साक्षात्कार कर रहा है और किसी अन्य उपायसे लिङ्गसे अर्थात् हेतुसे अथवा शब्दोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुमान भी करता है, सुनता भी है, इस तरहसे परोक्षरूपसे भी जानता है, किन्तु जिसको अविवेक है और उससे व्यामोह हुआ है ऐसे प्रतिभास वाले ज्ञानके द्वारा जो उनमें अभेद परिणाम समझा जा रहा है उस अन्तर परिणामको कथंचित् साक्षात्कार करता है अर्थात् योग्य देशमें और जिस तरहसे वह निरख रहा है वह क्रमरूप सही, मगर कर तो रहा है प्रत्यक्ष और शब्द अथवा अन्य युक्तियोंसे उसे परोक्षज्ञान भी जान रहा है तो जैसे यहाँके व्यामुग्ध और विवेकी पदार्थोंको अभेद रूपसे जान लेते हैं इसी प्रकारसे कोई भी लौकिक अथवा परीक्षक पुरुष इस समस्त वस्तुको एकात्मक और अनेकात्मक दोनों विधियोंसे प्रत्यक्ष करता है अथवा परोक्ष रूप जानता है तब वस्तुमें एकाकारका रहना क्रम अक्रमका रहना अन्वयव्यतिरेकका रहना ये सब सिद्ध हो जाते हैं।

आत्मपदार्थमें एकाकारता व नानाकारताका दर्शन– शंकाकार कहता है कि वह वस्तु अर्थात् आत्म पदार्थ या तो एक चैतन्यको ही धारण करे जो कि अक्रम आदिक रूप है। अक्रम है अन्वय है आदिक रूपको ही धारण करे, सुख आदिक सजातीय अचेतन वस्तुसे भी भिन्न है। ऐसे अनेकाकार सुखादिक भेदोंको न धारण करे। अथवा उन अनेकाकारात्मक सुख आदिक भेदोंको ही धारण करे। चैतन्यको धारण न करे। एक किसीको ही आत्मा धारण करे अर्थात् आत्मामें या तो एक चैतन्यस्वरूप ही माने, अथवा उसमें सुख आदिक नानाकार ही मानें दोनों बातें एक साथ नहीं मानी जा सकती हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यदि वस्तुतः इन दोनोंमेंसे एकाकारता और अनेकाकारता इनमेंसे एकको भी न माना जाय तो दूसरा भी नष्ट हो जायगा। तब दोनों ही न रह सकेंगे। जैसे कि आत्मामें एक स्वरूपता नहीं मानी जाती चैतन्यभाव नहीं माना जाता, तो सुखादिक भेद कहाँ ठहरेंगे? और यदि वहाँ तरंग परिणमन कुछ भी नहीं माना जाता तो वह एक सत्त्व भी कहाँ रह पायगा इस कारणसे मानना होगा कि आत्मतत्त्वमें चैतन्य अभेदस्वरूप है और सुखादिक नानाकार रूप भी है। किसी एकके मान लेनेपर भी या भेदरूप मान लिया अथवा अभेदरूप मान लिया तो केवल किसी एकके स्वीकार करनेपर कथंचित प्रत्यक्ष आदिक रूपसे और अपने ज्ञानादिक रूपसे वहाँ नियम न बन सकेगा। अर्थात् जो माना है वह भी सिद्ध न हो सकेगा। इस कारण यह बात बिल्कुल ही युक्तिसंगत कही गई है कि वस्तु सदसदात्मक है। यदि वस्तुको सदसदात्मक न माना जाय तो वहाँ व्यवस्था नहीं रह सकती। इस प्रकार वस्तु कथंचित् सत् ही है, वस्तु कथंचित् असत् ही है ऐसा जो तुम्हारा शासन है हे प्रभो! वह बिल्कुल निर्दोष है। यों प्रथम भंग और द्वितीय भंगका श्रद्धान कराके अब तृतीय आदिक भंगोंका निर्देश कर रहे हैं।:

क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भंगाः स्वहेतुतः ॥१६॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथंचित् उभयरूप तृतीय भंगकी सिद्धि—जैसे कि प्रथम और द्वितीय भंगमें स्वरूप और पररूपकी अपेक्षा बताया गया अर्थात् वस्तु स्वरूपसे सत है और पररूपसे असत् है। तो जब क्रमसे इन दोनोंकी विवक्षा करनेका आशय होता है तब वस्तु वहाँ द्वैत है अर्थात् उभयरूप है। क्रमसे विवक्षित स्वरूप और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे वस्तु कथंचित् उभयरूप है अर्थात् सदसदात्मक है। इस हीको द्वैत कहा करते हैं। द्वैतशब्दमें दो शब्द हैं—द्वि और इत। जो दोमें इत हो व्याप्त हो उसे द्वैत कहते हैं। दो है सत्त्व और असत्त्व। इन दोनोंमें जो व्याप्त हो उसे द्वैत कहते हैं अर्थात् पदार्थ कथंचित् द्वैत है। इस ही द्वैत शब्दमें क प्रत्यय लगानेसे द्वैत शब्द की सिद्धि होती है।

सप्तभंगीमें चतुर्थ पञ्चम षष्ठ व सप्त भंगकी उपपत्ति—चौथा अवक्तव्य भंग भी एक साथ दोनोंकी अपेक्षा कहा न जा सकनेसे सिद्ध होता है अर्थात् पदार्थ स्वरूप चतुष्टय और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे एक साथ कहा नहीं जा सकता। इस कारण वस्तु कथंचित् अवाच्य है। क्योंकि दोनों अपेक्षाओंको एक साथ कह सकने वाला पद अथवा वाक्य कुछ भी सम्भव नहीं हो सकता है। सत् असत् उभय और अवक्तव्य ऐसे यहाँ चार भंग बताये गए हैं। अब इन चार भंगोंके आश्रय से तीन शेष भंग और भी लगा लेना चाहिए। वे कौन से ? कथंचित् सत् अवक्तव्य कथंचित् असत् अवक्तव्य, कथंचित् सत् असत् अवक्तव्य ये ३ भंग पूर्वमें कहे गए चार भंगोंसे भिन्न हैं और ये तीन भंग अपने हेतुवोंके आधारसे समझ लेना चाहिए। जैसे जब स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षा रखकर फिर एक साथ नहीं कहा जा सकता है यह दृष्टि है तब वहाँ कथंचित् सत् अवक्तव्य सिद्ध होता है। पररूप चतुष्टयकी अपेक्षा रखकर फिर एक साथ नहीं भी कहा जा सकता, ऐसी दृष्टि बनानेपर कथंचित् असत् अवक्तव्य ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार स्वरूप चतुष्टय और पररूप चतुष्टय की अपेक्षा रखकर फिर एक साथ यह नहीं कहा जा सकता, ऐसी दृष्टि रखनेपर कथं-चित् सत् असत अवक्तव्य सिद्ध होता है। यहाँ जो तीन धर्म बताये गए थे प्रथम सत् द्वितीय असत् और तृतीय उभय, इनमेंसे यदि किसी एकको न माना जाय तो वस्तुमें अवक्तव्यत्व धर्म नहीं बन सकता। तब केवल अवक्तव्य नामका चतुर्थभंग कैसे उत्पन्न हुआ सो सुनो ! उन सत् असत् उभयत्व धर्म जो वहाँ पर है उनकी अविवक्षा रहे तब केवल अवक्तव्य भंग बनता है। जैसे अन्तके तीन भंगोंमें सत् असत् उभयको अपेक्षा रखकरके एक साथ नहीं कहा जा सकता है यह दृष्टि रखी थी तब वहाँ अव-क्तव्यके संयोगमें शेष भंग बने, लेकिन जब इन तीनकी अविवक्षा हो जाती है, कोई अपेक्षा नहीं रखी जाती और यह निरखा जा रहा कि कथन किया नहीं जा सकता। तब वहाँ अवक्तव्य नामक भंगकी उत्पत्ति होती है। इस कारण यहाँ विरोधका अव-काश नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तुमें स्वरूपापेक्षया ही सत्का व पररूपापेक्षया ही असत्का दर्शन— यहाँपर यह सिद्ध किया कि क्रमसे उसकी विवक्षायें करनेपर वस्तु द्वैतरूप है, उभय है सो मान लो कदाचित् पर यह बतलाओ कि वहाँ स्वरूपसे ही सत् है पररूपसे ही असत् है, इसके उल्टे ढंग न हों अर्थात् पररूपसे सत् हो स्वरूपसे असत् हो ऐसा नहीं है यह मानने कैसे जाना ? ऐसा भी तो कहा जा सकता कि वस्तु पररूपसे सत् है और स्वरूपसे असत् है, इस प्रकार उभयात्मक है। तब यह निर्णय कैसे किया गया कि स्वरूपसे ही सत् हुआ और पररूपसे ही असत् हुआ ? इसके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा ही देखा जा रहा है कि वस्तु स्वरूपसे ही सत् है और पररूपसे ही असत् है। तो जैसे देखा जा रहा है उसमें युक्तिकी क्या आवश्यकता है ? प्रत्येक वस्तु स्वरूपसे ही सत् है पररूपसे ही असत् है, इससे उल्टी बात नहीं लगायी जा सकती क्योंकि वहाँ ऐसा विपर्यय देखा ही नहीं जा रहा है। अर्थात् पररूपसे सत् हो और स्वरूपसे असत् हो ऐसा वस्तुमें कुछ देखा ही नहीं जा रहा है। समस्त जन इसके साक्षी हैं कि स्वरूप चतुष्टयकी अपेक्षासे ही सत्त्व पाया जाता है और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे ही असत्त्व पाया जा रहा है। उसके विपरीत ढगसे वस्तुमें सत्त्व असत्त्व नहीं है, जब जो देखा जा रहा है और सभी मनुष्य मान रहे हैं उसको प्रमाण करने वाले पुरुषको वस्तु भी उस ही तरह मानना चाहिए. अर्थात् वस्तु स्वरूप चतुष्टयसे सत् है और पररूप चतुष्टय से असत् है यदि ऐसा नहीं माना जाता तो प्रमाण और प्रमेयकी व्यवस्था नहीं बनती फिर बतलाओ कि इस ज्ञानके द्वारा यही जाना गया और यह ही प्रमाण है, यह ही प्रमेय है, यह व्यवस्था कैसे बनेगी ?

तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य व तदध्यवसायकी कल्पना करनेपर भी स्वानुपलम्भव्यावृत्तिसे दर्शनमें प्रमाणत्व माननेकी तथ्यभूतता— शंकाकार कहता है कि तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य और तदध्यवसाय इन तीन लक्षणोंके द्वारा प्रमाण और प्रमेयकी व्यवस्था बनायी जा सकेगी। जो प्रमाण जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है वह उस पदार्थ का जाननहार है। जो ज्ञान जिस पदार्थके आकार रूप परिणमा है वह ज्ञान उस पदार्थ का जाननहार होगा, और जिसका व्यवसाय पड़ा हुआ है अर्थात् वस्तुके दर्शनके पश्चात् जो सविकल्प ज्ञान होता है वह उसकी पुष्टि कर देता है। तब उससे सिद्ध है कि इस प्रमाणने इस प्रमेयको विषय किया। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि कोई पुरुष ताद्रूप्य तदुत्पत्ति और तदध्यवसाय कल्पना भी करले, तब भी यह बात तो माननी ही पड़ेगी दर्शनमें कि यहाँ स्वविषयके अनुपलम्भकी व्यावृत्ति है, अर्थात् जिस पदार्थको विषय किया है उसका अनुपलम्भ नहीं पाया जाता। उपलम्भ है, प्राप्ति है याने खुद उस पदार्थ स्वरूपकी वहाँ उपलब्धि है, ऐसा तो दर्शनमें मानना ही पड़ेगा। अब इस ही बातको स्पष्ट सुनिये, और इस आशंकाको भी दूर करिये कि प्रमाणमें अपने विषयकी उपलब्धि है, यह नियम इन तीन बातोंके माननेपर ही बनता है। तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य और तदध्यवसायके होनेसे ही प्रमाणता होती है इस आशंकाको दूर

Version 1

कर लीजिए। देखिये ! यह निर्विकल्प ज्ञान उस ही पदार्थको जानता है इसमें हेतु शंकाकार यह दे रहा है कि चूँकि यह दर्शन इस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है तो इसी सम्बन्धमें पूछा जा सकता कि जब पदार्थ नाना पड़े हुए हैं तो यह दर्शन इस ही पदार्थ से क्यों उत्पन्न हुआ ? इसी तरह यह पूछा जा सकता है कि पदार्थ जब नाना पड़े हुए हैं तो इस ही प्रतिनियत पदार्थके आकार ही ज्ञान क्यों होता ? और, फिर उसके बाद ऐसा ही सविकल्प ज्ञान क्यों बना ? तो उसके उत्तरमें शंकाकारको यही कहना पड़ेगा कि वहाँ ऐसी ही योग्यता है इस दर्शमें तब तो समाधान हो ही जाता है। देखिये ! जिस योग्यतासे यह निर्विकल्प दर्शन किसी एक पदार्थके आकारका अनुकरण करता है तो उस ही योग्यतासे यह मान लीजिए सीधा कि यह दर्शन इस ही अर्थका उस ही योग्यतासे विषय कर लेता है अन्य प्रकारसे नहीं। फिर परम्परासे अन्य बात सिद्ध करनेका परिश्रम करना व्यर्थ है। शंकाकार कहता है कि नीलादिक पदार्थोंसे जो दर्शन हुआ वह प्रमाण बना तो तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य और तदध्यवसायोंके होनेपर ही बना। इन तीनोंमेंसे किसी एकका भी अभाव माना जाय तो उस दर्शनमें प्रमाणपनेकी प्रतीति नहीं होती। अर्थात् कोई दर्शन किसी पदार्थसे उत्पन्न न हो तो वह प्रमाण न बन सकेगा। किसी पदार्थके आकार न हो तो वह प्रमाण न बन सकेगा। अथवा किसी पदार्थका अध्यवसाय न हो तो वह प्रमाण न बन सकेगा। तो उन तीनोंमेंसे किसी एकको न माननेपर उस दर्शनमें प्रमाणता नहीं बनती है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह मंतव्य संगत नहीं है, क्योंकि अनेक उदाहरण ऐसे आपको देंगे कि त्रिलक्षणताके अभावमें भी, या उनमेंसे किसी एकका भी अभाव हो तब भी वहाँ स्वकी अनुपलम्भ व्यावृत्तिसे ही प्रमाणपना बनता है अर्थात् एक पदार्थ कुछ प्रतिभास किया गया बस इस विधिसे ही उस दर्शनमें प्रमाणता आया करती है। सो सभी जन इस बातका सही अनुभव कर रहे हैं कि वस्तुको एकदम सीधा जहाँ जाना देखा जावे उस ज्ञानमें प्रमाणता आया करती है।

तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य व तदध्यवसायसे प्रमाणत्व होनेके नियमकी असिद्धि—शंकाकार यहाँ मान रहा है कि पदार्थसे उत्पन्न होनेसे पदार्थके आकार रूप होनेसे अथवा पदार्थका विकल्प होनेसे पदार्थमें जो दर्शन होता है वह प्रमाण होता है वह प्रमाण होता है। यह शंकाकारका मंतव्य युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि पदार्थसे उत्पन्न होना यह प्रमाणताको सिद्ध कर सकनेका नियम नहीं बना सकता। देखो—दर्शनकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है और चक्षु आदिक इन्द्रियसे होती है। तो पदार्थ और चक्षु आदिक इन्द्रिय दोनोंसे दर्शनकी उत्पत्ति होनेपर भी दर्शन पदार्थको तो ग्रहण करता है और चक्षु आदिक इन्द्रियको ग्रहण नहीं करता। तब देख लीजिए—यहीं व्यभिचार आ गया। चक्षुसे उत्पन्न होता है दर्शन, किन्तु दर्शन चक्षुको न जानता और न ग्रहण करता है। तो अब यह बात न रही कि तदुत्पत्तिके कारण ज्ञानमें प्रमाणता आती है। अब तद्रूपपनेकी बात देखिये—शंकाकारने यही

http://www.jainkosh.org

तो कहा है कि जो दर्शन जिस पदार्थके आकार होता है वह दर्शन उस पदार्थको ग्रहण करता है तो नीलाकार दर्शन हुआ, अनेक जीवोंको हुआ, तो अनेक संतानोंमें जो नीलाकार दर्शन हुआ तो सबके उस दर्शनने एक ही अर्थाकारको धारण किया। नीलाकारमें जिस प्रकारका आकार होता है वैसा ही आकार होता है वैसा ही आकार संतानोंने, जीवोंने धारण किया। मो वहाँ संतानान्तरके समान ही अन्यके ताद्रूप्य अर्थ विज्ञान हो रहा लेकिन वहाँ प्रमाणता नहीं होती। तो तद्रूप होनेसे भी ज्ञानमें प्रमाणता आये यह नियम नहीं बनता। अब देखिये ये दोनों लक्षण भी पाये जायें अर्थात् जिसके दर्शनमें तदुत्पत्ति भी है और तादात्म्य भी है ये दोनों लक्षण होनेपर भी वह अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। जैसे कि समान अर्थका जो पहिले परिज्ञान हुआ है उस विज्ञानके साथ अनैकान्तिक दोष होते हैं। जो पहिले ही ज्ञान बना है उस ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है अन्य ज्ञान और उसकी तद्रूपता मानी है फिर भी वहाँ प्रमाणता नहीं मानी गई।

त्रिलक्षणताके पाये जानेपर भी वास्तविक प्रमाणत्वके अभावका दिग्दर्शन — जहाँ कहीं तीन लक्षण भी पाये जायें याने तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य और तदध्यवसाय ये तीनों मौजूद हों उस दर्शनका भी फल ज्ञानके साथ व्यभिचार आता है। अर्थात् जिसका भ्रम ही कारण है ऐसा जो फलज्ञान है उन ज्ञानोंमें प्रमाणता नहीं है और त्रिलक्षणता पायी जा रही है। जैसे जिस पुरुषके नेत्रमें कामला आदिक रोग होता है, चक्षुमें बाधा आयी है ऐसे पुरुषको सफेद शंखमें पीताकार ज्ञान होता है। तो अब पीताकार ज्ञान जो उत्पन्न हुआ है वह सविकल्प ज्ञान है, क्योंकि दर्शन तो निश्चायक ज्ञान नहीं है सविकल्प ज्ञान है, अर्थात् दर्शन तो निश्चायक ज्ञान नहीं है, दर्शनके बाद सविकल्प ज्ञान होता है और उस ज्ञानसे वहाँ निश्चय होता है। पीताकार ज्ञानसे उत्पन्न होता है वह सविकल्पज्ञान और वह पीताकार ज्ञानरूप भी बन रहा है पीताकारका निश्चय भी कर रहा है फिर भी ऐसे ज्ञानकी प्रमाणता पायी जाती है पहिले वाले पीताकार ज्ञानमें लेकिन तथ्य तो नहीं है। बात तो गलत समझा है और प्रमाणता आ गई है। यदि उस दर्शनमें जो प्रमाणता आ गई है। यदि उस दर्शनमें जो प्रमाणता आती है उसको न माना जाय तब तो शंकाकारका अपना माना हुआ सिद्धान्त भी असिद्ध हो जाता है। फिर किस साधनके द्वारा यह शंकाकार प्रतिवादी का निराकरण करनेको तैयारी करेगा जिससे कि यह नियत स्वविषयकी उपलब्धि करने वाला दर्शन नियत स्वविषयको जो कि विषयके अनुपलम्भ रूप है शून्याद्वैतमें जिसे माना गया है उसे न प्रमाण करेंगे, क्योंकि स्वयं प्रमाण न माननेपर स्वार्थके अतिरिक्त अपने माने हुए सिद्धान्तकी जानकारी और निश्चिति नहीं होती है। यह सब कहा जा रहा है शून्याद्वैतवादीके प्रति। फिर इस अवस्थामें वह शून्याद्वैत तत्त्वको सिद्ध न कर सकेगा। क्योंकि जो अज्ञात है, शून्य अर्थ है उसको दूसरेके लिए, बतानेके लिए कोई समर्थ नहीं हो सकता। जब समझाने वालेने जाना ही नहीं कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अथवा है ही नहीं कुछ तो उस शून्य तत्त्वको समझानेका फिर साधन क्या रहा ? अथवा पर प्रतिपादितमें उपालम्भ देनेके लिए साधन क्या रहा ? दूसरोंके द्वारा माना गए वह प्रमाण नहीं जाना जा सकता है। सर्वथा शून्यवादमें स्वयं ही अज्ञातको शून्य अर्थको दूसरोंके लिए समझानेको समर्थ नहीं है, या उपालम्भ देनेके लिए भी समर्थ नहीं है।

पराभ्युपगत प्रमाणसे स्वाभिमत शून्य तत्त्वकी सिद्धिकी अशक्यता—यदि कोई यह कहे कि हमने प्रमाण तो नहीं माना किन्तु अन्य दार्शनिकोंने प्रमाण स्वरूप माना है, तो उनके प्रमाण स्वरूप द्वारा भी हम शून्याद्वैतको सिद्ध कर लेंगे, सो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शून्याद्वैतके मतमें सभी शून्य है और दूसरोंके द्वारा माने गएसे अगर दर्शनकी प्रतिपत्ति की जाती है तो इसमें अनवस्था दोष आता है, दूसरोंने जो प्रमाण माना है उसकी प्रमाणता सिद्ध करनेके लिए फिर किसी अन्य का मंतव्य देखना होगा। फिर उस मंतव्यको प्रमाण सिद्ध करनेके लिए तीसरा भी मंतव्य देखना होगा। तो दूसरोंके द्वारा माने गए प्रमाणसे अपने सिद्धान्तकी व्यवस्था करनेमें अनवस्था आती है, इस कारण यह ही मानना चाहिए कि एक ही पदार्थकी प्राप्तिका नियम अन्य पदार्थके अभावको सिद्ध करता है, जो स्वयंका सद्भावरूप हो और पररूपसे अभावरूप हो।

एकोपलम्भनियमसे वस्तुके समग्ररूप समझनेकी धारा—दर्शनने तो एक ही पदार्थकी उपलब्धि की। अब उस उपलब्धिमें दोनों बातें पड़ी हुई हैं कि अपने स्वरूपसे सद्भाव है और पररूपसे अभाव है। तो वह एकोपलम्भका नियम इस भावाभावात्मक तत्त्वको सिद्ध करता है। यदि एकोपलम्भका नियम न माना जाय याने जानने वालेने सीधा विवक्षित इस एकको जान ही लिया है ऐसा एक ग्रहणका नियम न माननेपर तो न कोई प्रवृत्ति कर सकेगा और न कोई निवृत्ति कर सकेगा। केवल दर्शनमात्रसे जिसमें किसी पदार्थका ग्रहण नहीं है उससे कोई न कुछ प्रवृत्ति कर सकता है और न कुछ अनिष्टसे हट सकता है, प्रमाणान्तरकी तरह। जैसे कि दूसरेके आत्मा में होने वाले ज्ञानसे दूसरेको एक पदार्थका उपलम्भ तो नहीं होता, तब दूसरा न तो प्रवृत्ति कर सकता और न निवृत्ति कर सकता। तो इसी तरह स्वयंके उत्पन्न किए हुए दर्शनमें एकका उपलम्भ तो माना नहीं, किसी पदार्थका ग्रहण न माननेपर फिर प्रवृत्ति किस बलपर करेगा ? और अनिष्टसे हटना भी किस बलपर करेगा ? स्वयंका अथवा पदार्थका जिस किसीकी भी एककी जो उपलब्धि है उसीका नाम तो अन्यकी अनुपलब्धि है। जैसे किसी पदार्थको सत्रूपसे जान लिया तो उस हीका अर्थ है कि अन्य रूपसे असत् उस पदार्थको जान लिया। और, उपलब्धिके विषयभूत पदार्थ हैं यों सत्ताको सिद्ध करनेका ही नाम अन्यका निषेध करना कहा जाता है और उपलब्धि के विषयमें प्रवर्तन करने वाला ही तो पुरुष परसे हटा हुआ माना जाता है। इससे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह सिद्ध हुआ कि एक पद थंत्र ग्रहणके नियमसे ही किसी पुरुषकी प्रवृत्ति और निवृत्ति सिद्ध होती है अर्थात् कोई पुरुष इष्टमें लग रहा है तो उसने उस एक इष्टको ग्रहण ही तो किया और उस इष्टको ग्रहण करनेके साथ जैसे उसकी उस इष्टमें प्रवृत्ति हुई है तो वही तो अन्य पदार्थसे निवृत्ति कहलायेगा।

एकोपलम्भका नियम न माननेपर प्रमाणत्वके प्रतिनियमकी असिद्धि यदि एकोपलम्भका नियम न माना जाय तो जैसे अन्य संतानोंमें प्रमाण होता रहता है पर वहाँ उससे कोई प्रवृत्ति नहीं करता और न कोई निवृत्ति करता। हो रहा दूसरे संतानोंमें दर्शन। उन दर्शनोंसे क्या कोई दूसरा इष्टमें प्रवृत्ति कर लेता है अथवा अनिष्टसे हट लेता है क्या? क्योंकि दूसरेका ज्ञान दूसरेके लिए तो कुछ नहीं है, अप्रमाण है। अप्रमाणसे प्रवृत्ति और निवृत्ति मान लेनेपर फिर तो प्रमाणकी खोज करना ही व्यर्थ हो जायगा। और इतना ही अनिष्ट प्रसंग नहीं है, किन्तु अन्य भी विडम्बना बन जायगी। जैसे अप्रमाणसे भी प्रवृत्ति और निवृत्ति बननेका प्रसंग आ जायगा, क्योंकि एकोपलम्भका तो नियम नहीं। किसी भी पदार्थको जाननेकी जरूरत तो है नहीं। जिस किसी भी प्रतिभाससे प्रवृत्ति हो जाय और निवृत्ति हो जाय तब यह निर्णय करना कि चाहे प्रत्यक्ष प्रमाण हो वह अपने और पदार्थकी उपलब्धिके रूपसे तो सत् स्वरूप है और परपदार्थकी उपलब्धि रूपसे असत् रूप है। तो प्रमाण ही स्वयं इस क्रम विवक्षाके अनुसार सद्सदात्मक सिद्ध होता है और इसी तरह प्रमेय भी सद्सदात्मक सिद्ध होता है। अर्थात् प्रमेय वस्तु अपने स्वरूपसे सत् है और पररूप से असत् है।

प्रमाण और प्रमेयके स्वरूपविवरणमें कथंचित् उभयरूप तृतीय भङ्ग की सिद्धि--देखिये! जब प्रमाण सदसदात्मक सिद्ध हुआ और उसकी तरह प्रमेय भी सदसदात्मक सिद्ध हुआ तब फिर क्यों नहीं सब पदार्थोंका क्रम विवक्षाके अनुसार द्वैतरूप मान लेते हो? मानना ही पड़ेगा। इस द्वैततामें किसीको विवाद होता ही नहीं है, हो ही नहीं सकता सब सामने प्रत्यक्षकी बात है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है। चाहे कोई दार्शनिक अपने दर्शनके आग्रहसे ऐसा न भी चाहे, नहीं मान रहा हो लेकिन उसको भी ज्ञान इस ही प्रकारका हो रहा है। जैसे झूठवादी पुरुष दर्शनका ज्ञान करनेपर भी मानते नहीं हैं। क्योंकि रागद्वेष समाया हुआ है। उस रागद्वेषकी प्रेरणासे उस सत्यको मुखसे कहा नहीं जा सकता है लेकिन उस सत्यका भान तो हो ही गया है। तो इसी प्रकार सभी दार्शनिक देख रहे हैं कि प्रत्येक वस्तु सत्स्वरूप है व असत् स्वरूप भी है। अब चाहे उसे न मानें इस प्रकार लेकिन यह ज्ञान खतम कैसे हो सकेगा? वह तो ज्ञानमें आ ही गया है। कोई भी उदाहरण ले लो, सब उदाहरणोंसे सब उदाहरणोंमें स्वरूपसे सत्त्व और पररूपसे असत्त्व पाया ही जायगा और नहीं तो अपना मंतव्य सिद्ध करनेके लिए यह तो कहना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही पड़ेगा कि मेरा मंतव्य सही है और इसके प्रतिपक्ष भेद और अन्य मंतव्य सही नहीं हैं। तो विपक्षको स्वीकार किये बिना पक्ष भी अपना अस्तित्व नहीं रख सकता है। तो ऐसे ही तत्वकी बात, द्रव्यकी बात, गुणपर्यायकी बात और विचारकी बात इस ही प्रकार है कि मेरा जो आशय है उस आशयके अनुसार वस्तु सत्‌रूप है और उससे विपरीत आशयकी अपेक्षासे वस्तु असत्‌रूप है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि पदार्थ क्रमविवक्षासे उभयरूप है। इस तरह सप्तभङ्गीमें तृतीयभङ्गकी सिद्धि होती है।

एक शब्द द्वारा वस्तुके भाव व अभावका कथन न हो सकनेके कारण अवक्तव्यत्वनामक चतुर्थ भङ्गकी उपपत्ति –यहाँ शङ्काकार कहता है कि उभय रूपकी सिद्धिमें जब विवाद नहीं है तब समस्त वस्तुयें फिर अवक्तव्य हैं, यह कैसे कहा जा सकेगा? तो इसके समाधानमें कहते हैं कि वस्तुके अवक्तव्य होनेका यही कारण है कि शब्द भाव और अभाव इन दोनोंको क्रमरहित अर्थात् एक साथ एक ही समयमें विषय नहीं करता है। शब्दकी शक्तिका स्वभाव ही ऐसा है कि शब्द एक समयमें एक ही अर्थका प्रतिपादन करेगा। सभी पद एक ही पदके अर्थको विषय करते हैं। जैसे 'सत्' यह पद बोला, तो 'सत्' यह पद असत्‌को विषय नहीं करता। 'असत्' यह पद सत्‌को विषय नहीं करता। यदि सत् पद असत्‌को विषय करने लगे और असत् पद सतको विषय करने लगे तब तो इन दोनोंमें किसी भी एक पदका प्रयोग करनेपर संशय हो जायगा कि इसमें क्या कहा गया? सत शब्द बोलकर असत भी कहा गया, ऐसी स्थितिमें संशय हो जाना स्वाभाविक बात है कि सत् अर्थ है या असत् अर्थ है?

एक पदकी एक पदार्थवाचकताका कथन – सभी पदोंमें यह बात लगा लेना चाहिए कि वह एक ही अर्थका प्रतिपादन करता है। गो' यह पद बोला गया तो यद्यपि कोषमें यह बताया है कि गो शब्द दिशा आदिक अनेक अर्थोंको विषय करने वाला गो शब्द एक नहीं है, किन्तु अनेक है। जब जिस अर्थकी धुनमें गो शब्द बोला है तब गो शब्दकी मुद्रा भीतरमें अर्थके ही अनुकूल होती है। तो गो शब्द भी तत्वत: अनेक है, मगर सादृश्यके उपचारसे ही गो शब्दका एक रूपसे व्यवहार है। चूँकि 'ग' और 'ओ' ये ही अक्षर हैं। उनके सबके वाचक ऐसा ही गो शब्द है तो ऐसी सदृशताके उपचारसे 'गो' शब्दसे एक रूपमें व्यवहार किया गया है। अन्यथा अर्थात् सादृश्य उपचारसे एकत्वका व्यवहार न माना जाय किन्तु सर्वथा एकत्व माना जाय। उपचारकी बात समाप्त कर दी जाय तो सब ही पदार्थ एक शब्दके द्वारा वाच्य बन जायेंगे। क्योंकि अब सादृश्य उपचारके बिना ही 'गो' में एकत्व मान लिया गया तो सारे शब्दोंमें उपचार किए जाने योग्य कोई बात नहीं है। और जब उपचारके बिना ही एकत्व मान लिया तो सभी शब्दोंमें एकता आ गई और सभी पदार्थ फिर एक शब्द द्वारा वाच्य बन जायेंगे। ऐसी स्थितिमें एक एक पदार्थके लिये एक एक शब्दोंके प्रयोग करना व्यर्थ हो जायगा। जैसे घट पट आदिक अनेक पदार्थोंको कहने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के लिए जो घट पट आदिक अनेक शब्द बोले जाते है तब फिर उनका प्रयोग करना निरर्थक हो जायगा। जैसे शब्दभेदसे अर्थभेद निश्चित है और प्रसिद्ध है, वैसे ही अर्थ भेदसे शब्दभेद भी निश्चित है। जैसे घट पद आदिक अनेक हैं। घटका अर्थ है जलको भरने वाला एक पदार्थ। पटका अर्थ है आवरण कर सकने वाला एक पदार्थ। तो शब्दके भेदसे अर्थका भेद निश्चित माना गया है तो इस ही प्रकार अर्थके भेदसे भी शब्दका भेद निश्चित सिद्ध होता है। अन्यथा अर्थात् अर्थभेदसे यदि शब्द भेद नहीं माना जाता तो वाच्य वाचक नियमका व्यवहार लुप्त हो जायगा।

एक द्वारा एक अर्थका प्रतिपादन—एक पद द्वारा एक पदार्थ कहा जाता है, एक पदके द्वारा अनेक पदार्थ नहीं कहे जाते, इस कथनसे एक वाक्य एक साथ अनेक अर्थोंको विषय करे इसका भी निराकरण समझना चाहिए। एक शब्द एक अर्थको विषय करता है और एक पद एक पदार्थको विषय करता है! एक वाक्य एक अर्थको विषय करता है एक वाक्य भी एक साथ अनेक अर्थोंको विषय नहीं कर सकता। जैसे प्रथम भंग था कि वस्तु स्यात् सत् है तो वहाँ एक ही अर्थ ग्रहण किया गया। वस्तु स्यात् असत् है। यहाँ भी एक ही धर्मको ग्रहण किया गया। अब यहाँ कोई ऐसी आशंका रख सकता है कि जो तृतीय भङ्ग है कि वस्तु स्यात् सत् असत् है तो यहाँ तो एक वाक्यके द्वारा दो पदार्थ ग्रहण किए गए तो ऐसी शंका न करना चाहिए। जहाँ यह तीसरा वाक्य बोला गया है कि स्वरूप और पररूप चतुष्टयकी अपेक्षासे समस्त वस्तु स्यात् सत् असत् ही हैं तो यहां क्रमसे अर्पित दोनों धर्मोंका उभय को प्रधानता विषय करने रूपसे स्वीकार किया गया ही तो वाक्य है और उसे उपचार से एक कहा गया है अर्थात् यहां क्रम विवक्षित है ना, और वह क्रम भी अन्तररहित है तो कालकी निकटताके उपचारसे वहाँ उन दो धर्मोंको विषय करने रूपसे एक वाक्य बताया गया है। जैसे कि सादृश्य उपचारसे गो शब्दको एक कहा है ऐसे ही काल प्रत्यासत्तिके उपचारसे यहां तृतीय वाक्यको एक कहा गया है। यहाँ उभयकी प्रधानता विवक्षित है। सत और असत शब्दको कहकर तीसरे भङ्गमें एक पदार्थ देखा गया है। वह एक पदार्थ क्या है? दोनोंकी प्रधानता। क्रमसे अर्पित दो दृष्टियों द्वारा जो समझा गया है वहाँ कोई एक प्रधान है क्या? क्या सत प्रधान है? अथवा क्या केवल असत प्रधान है? दोनोंकी प्रधानता इस तृतीय भङ्गमें विवक्षित है और चूँकि यह द्वन्द्व समासका रूप है तो इस तृतीय वाक्यमें स्वपदार्थ प्रधान माना गया तो यहां स्वतत्त्व हैं दो—सत्त्व और असत्त्व। सो दोनोंकी प्रधानता का विषय करने वाले तृतीय वाक्यके बोलनेमें कोई दोष नहीं है।

एक क्रियाप्रधान होनेसे एक वाक्य द्वारा एक अर्थका प्रतिपादन—तात्पर्य यह है कि सभी वाक्य एक क्रियाप्रधान हुआ करते हैं अर्थात् एक ही वाक्यमें एक क्रिया रहा करती है। एक क्रियाका अर्थ है कि जो तिङन्त धातु है जो धातु

अपनी विभक्ति सहित है ऐसा एक प्रयोग ही एक वाक्यमें होता है। चाहे एक दो असमाप्तिकी क्रिया भी वाक्यमें पड़ी हुई हो पर समाप्तिकी क्रिया केवल एक होती है। जैसे—मैं भोजन करके अमुक गाँव जाऊँगा। तो यहाँ क्रिया तो एक ही हुई—जाऊँगा', भले ही 'भोजन करके' एक क्रिया भीतर पड़ी हुई है लेकिन यह असमाप्ति की क्रिया है। यहाँ वाक्य समाप्त हो गया, या वक्तव्य समाप्त हो गया। यह सूचना असमाप्तिकी क्रिया नहीं कर सकती। जाऊँगा' यह शब्द सूचना देता है कि कहना था, उसे पूरा कह दिया गया है। तो यों समस्त वाक्य एक क्रिया प्रधान हुआ करते हैं। अतएव वाक्य अर्थको ही विषय करने वाले प्रसिद्ध हैं। अर्थात् वाक्य एक अर्थको ही विषय करता है।

प्रथमभंगमें प्रयुक्त सत् व स्यात् शब्दका वाच्य—उक्त विवरणोंसे यहाँ सिद्ध हुआ कि शब्द एक अर्थका ही प्रतिपादन करनेकी शक्तिका स्वभाव रखता है। क्योंकि शब्दमें सूचनाका जो सामर्थ्य विशेष है उसका उल्लंघन नहीं होता। 'सत्' इस शब्दमें सत्त्व मात्रको कहनेका सामर्थ्य है असत्त्व आदिक अनेक धर्मोंके कहनेमें उस सत् शब्दका सामर्थ्य नहीं है। इसी प्रकार स्यात् शब्दकी बात सुनो। यहाँ सप्तभंगीमें स्यात् सत्, स्यात् असत् आदिक प्रयोग है ना, तो प्रत्येक शब्दका यहाँ अर्थ बताया जा रहा है। सत् शब्दका अर्थ बता दिया गया और सिद्ध किया कि सत् शब्दका अर्थ केवल सत्त्व मात्रके कहनेमें सामर्थ्य है। असत्त्व आदिक अनेक अर्थोंके कहनेमें नहीं। तो इसी प्रकार स्यात् शब्द दो रूपोंमें निरखा जाता है वाचक और द्योतक, वाचकका अर्थ है इन अन्य शब्दोंकी तरह किसी अर्थको कहने वाला और द्योतकका अर्थ है कि जो बात स्पष्ट नहीं कही गई है उसका भी द्योतन करने वाला। अर्थात् न कहे गए अर्थका भी जो कि न्यायप्राप्त है उसका संकेत करने वाला। तो जब स्यात् शब्दको वाचक दृष्टिसे देखते हैं तब स्यातका सामर्थ्य अनेकान्तमात्रके कहनेमें है। स्यात् शब्द का वाच्य अनेकान्तमात्र है, किन्तु एकान्तके वचन करनेमें उसका सामर्थ्य नहीं है। जब हम स्यात् शब्दको द्योतकपनेकी दृष्टिसे निरखते हैं तो स्यात् शब्दका सामर्थ्य विशेष अविवक्षित समस्त धर्मोंकी सूचना करनेमें है याने जिन धर्मोंको उस भंगमें नहीं कहा गया है और उस भंगमें विवक्षा भी नहीं है उन समस्त धर्मोंको सूचित करता है स्यात् शब्द। हाँ विवक्षित पदार्थके कहनेमें स्यात्का सामर्थ्य नहीं है। जैसे प्रथम भंग है—सर्वं स्यात् सत्। तो उस भंगमें सत् धर्मका प्रयोग स्पष्ट किया गया है और यहाँ इस भंगकी विवक्षा है। तो द्योतक स्यात् शब्द सत्को कहनेमें सामर्थ्य नहीं रख रहा किन्तु जो विवक्षित भी नहीं, कहा गया भी नहीं ऐसे असत्त्व धर्मको कहनेमें सामर्थ्य रख रहा है। अन्यथा अर्थात् यदि द्योतक स्यात् शब्द विवक्षितको ही, सत् धर्ममें ही कहनेमें सामर्थ्य रखता हो तब तो स्यात् कहनेके बाद फिर सत् शब्दका कहना व्यर्थ है क्योंकि स्यात् शब्दने ही सत् धर्मको बता दिया है। फिर उस सत् धर्म के या विवक्षित धर्मके वाचक शब्दका प्रयोग करना व्यर्थ हो जायगा। इससे सिद्ध है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि द्योतक स्यात् शब्द उन धर्मोंकी सूचनामें सामर्थ्य रखता है जो धर्म इस भंगमें विवक्षित नहीं है और जिन्हें कहा भी नहीं गया है। अब इस समय यह भी समझ लेना चाहिए कि शब्द विधि वचनकी सूचना देनेके सामर्थ्य विशेषका उल्लघन करता हुआ व्यवहारमें नहीं पाया जाता। अर्थात् शब्दका वाच्य कोई धर्म है उसका सत्व बता देता है, तो विधि वचनको अर्थात् नियत अर्थको कहनेकी सूचना देनेका सामर्थ्य है शब्दमें सो उसका उल्लंघन करके शब्द व्यवहारमें प्रवृत्ति करायें ऐसा नहीं पाया जाता। अर्थात् अपनी सामर्थ्य विशेषके अनुसार नियत अर्थकी सूचनामें ही शब्द प्रवृत्त होते हैं, इसी कारण शब्द एक साथ भाव और अभाव दोनोंको नहीं कह सकते।

सत्व असत्त्व दोनोंका संकेत करने वाले एक शब्दसे दो अर्थ समझ लेनेका शंकाकार द्वारा कथन—यहाँ शङ्काकार कहता है कि संकेतके अनुसार शब्दकी प्रवृत्ति होती है। जिस शब्दका जिस अर्थके लिए हम संकेत बनाते उस शब्दके द्वारा उस अर्थको कह दिया जाता है। तो हम यदि एक साथ सत्त्व और असत्त्व धर्मका प्रतिपादन करने वाला कोई शब्द संकेतित करलें तब तो वह शब्द उन दोनों धर्मोंका वाचक हो जायगा। फिर तो विरोध न आयगा। जैसे कि व्याकरणमें संज्ञा शब्द एक साथ अनेक अर्थोंका प्रतिपादन कर देता है। जैसे कृदन्त प्रकरणमें शतृ और शानच इन दोनों प्रत्ययोंकी सत् संज्ञा की गई है तो इस संकेतके अनुसार जिस किसी भी सिद्धिके प्रकरणमें सत् संज्ञाका नाम आया हो तो वहाँ शतृ और शानच दोनोंका कथन हो जाता है। तो ऐसे ही सत्व धर्म और असत्व धर्म दोनोंके प्रतिपादन करनेमें जिस शब्दका हम संकेत बना दें वह संकेतित शब्द उन दोनों धर्मोंका वाचक बन जायगा वहां फिर विरोध कैसे आ सकता है?

संकेत बना लेनेपर भी वाचक वाच्यकी शक्ति अशक्तिमें अन्यतरके ही व्यपदेशकी संभवता—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि संकेतका भी विधान बना लिया जाय फिर भी कर्ता और कर्मकी अर्थात् वाचक और वाच्यकी शक्ति और अशक्ति इन दोनोंमेंसे किसी एकका ही व्यपदेश शब्द द्वारा हो सकता है। जैसे कि लोहेके द्वारा काष्ठ और वज्रके लेखन और अलेखनकी तरह। जैसे लोहेकी कलममें, काष्ठके लेखनमें तो शक्ति है उस प्रकारसे लोहेमें वज्रको लेखनेमें शक्ति नहीं है। और जैसे वज्रके लेखनेमें उस लोहेमें अशक्ति है उस प्रकार काष्ठके लेखनमें उस लोहको अशक्ति नहीं है। यह तो हुआ कर्ताकी शक्ति और अशक्तिमेंसे एकका व्यपदेश। अब कर्मकी दृष्टिसे देखिये जैसे काष्ठ लोहेके द्वारा लिखा जा सके इस बातकी काष्ठमें शक्ति है उस प्रकार लोहेके द्वारा लिखा जा सके ऐसी वज्रमें शक्ति नहीं है। अथवा लोहेके द्वारा लिखा जा सके ऐसी शक्ति वज्रमें नहीं है। अर्थात् जिस प्रकार वज्रमें लोहेके द्वारा लिखे जानेकी अशक्ति है, उस प्रकारसे काष्ठमें लोहेके द्वारा लेख्य होनेकी अशक्ति नहीं है। तात्पर्य यह है कि कर्ता कर्मकी शक्ति और अशक्तिमेंसे किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एककी ही शब्दके द्वारा प्रतिनियत रूपसे व्यवस्था बनती है याने शब्दका कितना ही संकेत कर लिया जाय पर प्रयोग करने वाले पुरुषका जहाँ लक्ष्य है समझने समझने का वहाँ ही उसका व्यपदेश होता है। इसी प्रकार अब शब्दमें घटित कर लें। एक ही पदार्थमें एक बार शब्दके प्रतिपादनकी शक्ति है पर एक शब्दमें प्रतिपादनकी शक्ति है और एक शब्दमें अनेक पदार्थोंमें प्रतिपादन करनेकी शक्ति नहीं है। क्योंकि संकेत शब्दकी शक्तिकी अपेक्षासे ही प्रवृत्ति होती है। कोई ऐसा सोचे कि अनेक अर्थोंके प्रतिपादन करनेकी शक्ति न भी हो तो भी संकेतकी वजहसे अनेक अर्थोंका प्रतिपादन हो जायगा सो बात सम्भव नहीं है। संकेत भी प्रतिपादन शक्तिकी अपेक्षासे प्रवृत्त होता है

सेना आदिक शब्दोंकी भी एकार्थवाचकता -यहाँ कोई ऐसी आशङ्का कर सकता है कि ऐसे भी कुछ शब्द हैं जिनकी अनेक अर्थोंमें प्रवृत्ति होती है। जैसे— सेना, वन आदि। तो सेना शब्दके कहनेसे हाथी, घोड़ा, शस्त्र, सुभट आदिक अनेक पदार्थोंका बोध होता है और वन शब्दके कहनेसे अनेक प्रकारके पेड़ फल-फूल आदि सभीका अर्थ जाना जाता है। तो ऐसा सेना एक शब्द है पर उसकी अनेक अर्थोंमें प्रवृत्ति है, वन शब्दकी भी अनेक अर्थोंमें प्रवृत्ति है। ऐसा आशंका की जा सकती है पर यह आशंका व्यर्थ है। कारण यह है कि सेना शब्दसे अनेक अर्थ नहीं कहे गए किन्तु हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे आदिकका प्रत्यासत्ति विशेष रूप एक अर्थका ही सेना शब्दके द्वारा प्रतिपादन हुआ है। इसी तरह वन, यूथ, पंक्ति, माला, पानक, ग्राम आदिक शब्द भी एक ही अर्थका प्रतिपादन करते हैं अनेक अर्थोंका नहीं। इन शब्दका वाच्य अनेक पदार्थोंका समूह रूप कोई प्रत्यासत्ति विशेष रूप एक ही अर्थ है, अनेक अर्थ नहीं है।

द्विवचनान्त बहुवचनान्त द्वारा भी एक एक शब्द द्वारा अपने अपने अभिधेयका अभिधात —अब यहाँ शंकाकार कहता है कि 'वृक्षौ' ऐसा द्विवचनका पद है वह तो दो वृक्षोंको बताता है। शब्द एक है वृक्षौ पर उसका अर्थ होता है दो वृक्ष, अथवा कहा — वृक्षाः यह बहुवचनका शब्द है उसका अर्थ होता है बहुतसे वृक्ष। तो देखो, एक शब्दने अनेक अर्थका प्रतिपादन कर दिया। यदि यह आग्रह किया जाय कि एक शब्द अनेक अर्थोंको नहीं जानता, किन्तु एक ही अर्थको जानता है, तब तो यह समस्या आ जायगी कि 'वृक्षौ' इस शब्दसे दो वृक्ष कैसे जान लिए गये ? वृक्षौ इस शब्दसे बहुत वृक्ष कैसे जान लिए गये ? इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि व्याकरण शास्त्रके जानने वालोंने समझा होगा कि वृक्षौ, वृक्षाः ये पद द्विवचनान्त और बहुवचनान्त कहे गए हैं। तो वहाँ दो प्रक्रियायें हैं। पाणिनीय व्याकरणके अनुसार जितने वृक्षोंका अर्थ वाच्य बनाना है उतने वृक्ष शब्द रखे जाते हैं। फिर उनमें द्विवचन का प्रत्यय लगाया जाता है और उस समय एक ही पद रखकर शेष पदोंका लोप कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दिया जाता है तो यद्यपि वहाँ देखो एक शब्द शेष रखा गया, किन्तु लुप्त शब्दपर दृष्टि देनेम वहाँ शब्द एक नहीं समझना है किन्तु अनेक शब्द हैं, यह समझना ! अब वहां जो शब्द शेष रहा और जो शब्द लुप्त किये गए उनमें सदृशता है और वाच्यकी समानता है इस कारण एकत्वका उपचार किया गया है। और, तब एक शब्दका प्रयोग है ऐसा व्यवहारमें कहा जाता है। जिन वैयाकरणोंके यहाँ जैसे जैनेन्द्र व्याकरणमें इस शब्दको स्वाभाविक कहा गया है। ये शब्द स्वाभाविक रूपसे लुप्तप्रक्रियाके बिना ही द्विवचनान्त और बहुवचनान्त किए जाते हैं। सो इस प्रक्रियामें जब वृक्ष शब्दमें द्विवचनका प्रत्यय जोड़ा गया या बहुवचनका प्रत्यय लगाया गया तो वह स्वभावसे अपने अभिधेयका याने दोका या बहुतका प्रतिपादक हो जाता है। दो व बहुत वाला अर्थ विभक्ति बता देता है। प्रत्ययवान प्रकृतिमें एकत्व, द्वित्व, बहुत्वसे विशिष्ट पदार्थके कथनकी सामर्थ्य है। यदि विभक्त्यन्त पदोंमें स्वभावसे ही दो बहुत आदिकसे युक्त अपने अभिधेय अर्थको कहनेका सामर्थ्य न माना जाय तो फिर किसी भी प्रकार शब्द व्यवहार बन ही न सकेगा। वाक्योंमे एकदम सुगम रीतिसे विभक्त्यन्त पद्धतिका प्रयोग होता है और उससे उस ही प्रकारका अर्थ जान लिया जाता है, वह व्यवहार भी न न बन सकेगा। इससे मानना चाहिए कि पदोंमें स्वभावसे ही अपने अपने अभिधेय अर्थका प्रतिपादन करनेका सामर्थ्य है।

वृक्षाः इस पद द्वारा प्रधानतासे ही अनेक और एक अर्थके कथनका असामर्थ्य — उक्त सिद्धान्तके सम्बन्धमें यहाँ शंकाकार कहता है कि देखिये—'वृक्षाः' यह एक पद है जिसमें बहुवचनका जस् प्रत्यय लगा है सो प्रत्ययवान प्रकृतिको पद कहा करते हैं और उस पदका वाच्य अनेक और एक दोनोंको ही स्याद्वादियोंने माना है। उस एक पदका एक ही अर्थ वाच्य है ऐसा नहीं है। इसी विषयको समन्तभद्राचार्यने वृहत् स्वयम्भू स्तोत्रमें कहा भी है—अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्याः। अर्थात्—प्रत्ययवान प्रकृतिके कारण 'वृक्षाः' इस पदका वाच्य अनेक और एक पदार्थ है। तब यह कहना कि एक पद एक ही अर्थका प्रतिपादन करता है यह कैसे संगत है? उक्त शकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रत्ययवान प्रकृतिको दिखाकर और स्वयभूस्तोत्रका प्रमाण देकर जो एक पदको अनेक अर्थका प्रतिपादन करने वाला सिद्ध करना चाहता है वह युक्तिसंगत नहीं है। यहाँ वह शकाकार यह पूछा जाने योग्य है कि उस पदके द्वारा जो अनेक और एक अर्थ वाच्य बना है तो एक ही बार एक ही समयमें क्या प्रधानतासे अनेक और एक दोनों वाच्य हुए हैं अथवा गौण और प्रधान भावसे अनेक और एक वाच्य हुए हैं? 'वृक्षाः' यह कहकर जो अनेक वृक्ष इस प्रकारका ज्ञान होता है तो वृक्ष जातिकी अपेक्षा तो एकपना है और अनेक वृक्षोंसे जाना जा रहा है अतएव अनेकपना है तो इस तरह यहाँ जो अनेक और एक जाना जा रहा है, एक वृक्षाः इस पदके द्वारा सो यह बताओ कि अनेक और एक दोनों ही प्रधान भावसे जाने जा रहे हैं? यह तो कह नहीं सकते कि 'वृक्षाः' इस पदके द्वारा अनेक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और एक दोनों एक समान प्रधानतासे जाने जा रहे हैं क्योंकि इस तरहकी प्रतीति हो नहीं हो रही है। वृक्ष जातिके माध्यमसे वृक्ष द्रव्य वृक्ष शब्दसे कहा गया है। अर्थात् वृक्षा: में जो वृक्ष शब्द प्राकृतिक है उस प्राकृतिक शब्दसे वृक्ष शब्द ही एक प्रकाशित होता है। फिर उस वृक्ष द्रव्यके प्रकाशके अनन्तर अर्थात् वृक्ष द्रव्य मात्रकी जानकारी के बाद फिर लिंग और फिर एक दो आदिक संख्यायें इस तरहसे उस शब्दमें युक्त विविक्तके द्वारा प्रतीति होती है सो क्रमसे प्रतीति होती है। तब यहाँ यह कहा जा सकता कि वृक्षा: यह शब्द कहकर एक समयमें ही एक साथ अनेक और एक दोनोंकी प्रधानतासे जानकारी हुई है।

पद और वाक्यमें अनेक और एक अर्थको गौण और प्रधानभावसे कहनेकी योग्यताका वर्णन—शब्द प्रधानतासे एक अपने अभिधेयको कहता है इस सम्बन्धमें कहा भी है कि शब्द पहिले अपने अर्थको कहता है फिर अपने अर्थको कहकर उसमें ध्वनित जो अन्य अर्थ है उससे सम्वेदन द्रव्यको कहते हैं, पहिले तो शब्दने विभक्तिको अपेक्षा न रखकर केवल अपने अर्थको कहा और अब विभक्तिका क्रम आते ही उस अर्थके कहनेके बाद लिंगको कहा और संख्याको कहा सो इस प्रकार हो लोगों को शब्दों द्वारा अर्थकी प्रतीति होती है। हाँ इस तरहसे माना जाय कि वृक्षा: यह कहनेपर प्रधानतासे तो वृक्ष अर्थ जाननेमें आया है और बहुत्व संख्या याने बहुत हैं यह बात गौण रूपसे जाननेमें आयी है क्योंकि शब्द द्वारा पदार्थ कहा कौन गया ? यह बात मुख्य है फिर भी किस प्रकारका पदार्थ कहा गया यह इसके बादकी बात ही तो इस तरह प्रधानतासे तो वृक्ष अर्थ जाननेमें आया और गौणभावसे बहुत्व संख्या जानने में आयी, यों माननेमें किसीको भी विरोध नहीं है, क्योंकि प्रधानता और गौणताका यह पक्ष अभिमत ही है। तो प्रकृतक वाक्यमें जो स्यात् शब्द कहा गया है उस निपात के द्वारा जिसमें कि अनेक धर्मोंको आकांक्षा की गई है याने जिस भंगमें स्यात् शब्द जुड़ा है उसके विपरीत अन्य धर्मोंको स्यात् शब्द चल रहा है, वहां स्यात् शब्द यह निराकरण करता है कि उन अनेकोंकी अपेक्षा न रखकर अर्थात् अविवक्षित धर्मोंकी आकांक्षा न रखकर केवल एक ही विवक्षित भंगका प्रधानतासे वर्णन करता है, अप्रधानतासे भंगका वर्णन नहीं करता गुणानपेक्ष नियमका निराकरण किया गया है स्यात् पद द्वारा जिससे कि यह सिद्ध है कि स्यात् इस निपात शब्दका यह अर्थ है कि वह अविवक्षित अनेक अर्थोंको अपेक्षा रख करके प्रकृत भंगकी बातका समर्थन करता है। जितने भी वाचक तत्त्व हैं वे सब गौण और प्रधान अर्थको लिए हुए हैं और वाच्य तत्त्व भी गौण और प्रधान अर्थको लिये हुए है, इस कारण वाक्य गौण और प्रधान अर्थका वाचक होता है ऐसा कहनेमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है। जो इस शासनसे द्वेष रखते हैं उनके लिये वह आशय पथ्यभूत नहीं हैं। अर्थात् उनका वहाँ अपवाद है बरबादी है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रमाणवाक्यकी भी प्रधानैकार्थवाचकता—http://www.jainkosh.org है कि समस्त वाक्य गौण और प्रधानरूपसे अर्थको कहा करते हैं ऐसा जब यहाँ निर्णय दिया है तब फिर प्रमाण वाक्य कैसे बनेगा क्योंकि प्रधानतारूपसे समस्त धर्मात्मक वस्तुका प्रकाशक प्रमाण वाक्यको माना गया है और अब यहाँ कहा जा रहा है कि सभी वाक्य गौण और प्रधानरूपसे अनेक और एक तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं तब फिर यह प्रमाण वाक्य कैसे बनेगा जिससे कि यह कहा जा सके कि सकल आदेश प्रमाणाधीन हुआ करता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रमाण वाक्यसे भी एक प्रधान अर्थ की वाचकता सिद्ध होती है। यहाँ काल आदिकके द्वारा अभेद करके अथवा अभेदोपचार करके जो कि द्रव्यार्थिकनयकी और पर्यायार्थिकनयकी विवक्षामें पड़ा हुआ है उस अभेद और अभेदोपचारसे सपर्यय वस्तुका कथन किया जाता है। इस बातको अब स्पष्टतया समझिये कि द्रव्यार्थिकनयसे तो एक ही द्रव्यका जो कि अनन्त पर्यायात्मक है उसका ग्रहण किया गया। तब देखिये ! कि प्रमाण वाक्य अनेक अर्थ वाला न रहा वह एक अर्थका ही वाचक रहा। तो यहाँ इस प्रमाण वाक्यसे जाना तो एक ही द्रव्य को है, किन्तु अनन्त पर्यायात्मक एक द्रव्यको जाना है। सो द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षामें यह प्रमाण सकलादेश हुआ है. किन्तु वहाँ एक ही अर्थको समग्ररूपसे, अनन्त पर्यायात्मकरूपसे जाना है अब पर्यायार्थिकनयकी विवक्षाकी बात देखिये ! समस्त पर्यायों का जो कि काल आदिकसे अभिन्न है अर्थात् निकट समय रखता है ऐसे उन समस्त पर्यायोंका अभेदोपचार करनेसे उपचरित एक वस्तु ही तो प्रमाणवाक्यका विषय बना, अतएव कोई सा भी वाक्य पदकी तरह अनेक अर्थोंको एक साथ प्रधानतासे कहे यह बात सिद्ध नहीं होती। अर्थात् एक वाक्य एक अर्थको ही प्रधानतासे कहता है। उसके साथ गौण अर्थ जुड़ा हुआ है फिर भी प्रधानतासे उन अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करने की शक्ति एक शब्दमें नहीं है।

सहस्रों संकेत किये जानेपर भी शब्द, पद, वाक्यमें प्रतिनियत एक अर्थके प्रतिपादनकी शक्तिका व अन्यार्थ प्रतिपादनकी अशक्तिका अनतिक्रम— हजारों भी संकेत कर लिए जायें तो भी वाचक वाच्यमें शक्ति अशक्तिका अतिक्रमण नहीं हो सकता। वाचक वाच्यमें जिसके प्रतिपादनकी शक्ति है अथवा अशक्ति है उसका उल्लंघन जब हजारों संकेतोंसे नहीं हो सकता तब समझिये कि हजारों संकेतोंसे भी वाचक और वाच्यकी शक्ति और अशक्तिका उल्लंघन न हो सकनेके कारण यह बात निर्दोषतया सिद्ध है कि एक शब्द एक ही अर्थका वाचक होता है अन्यथा अर्थात् एक शब्द यदि अनेक अर्थोंका वाचक बन जाय तो फिर अचाक्षुषत्व आदिक शब्दादिकके धर्म न हो सकेंगे। जैसे कि एक अनुमान प्रयोग किया जाता है उसमें शब्दको अचाक्षुष कहा गया है तो चक्षु इन्द्रियके द्वारा ज्ञान उत्पन्न करानेकी शक्ति नहीं है शब्दमें इसलिए शब्दको अचाक्षुष कहा है; तो वहाँ अब यह भी कहा जा सकता जब कि एक शब्दकी शक्ति अशक्तिका अतिक्रामक व अनेक अर्थका वाचक मान लिया तो फिर कह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकेगे कि रूपकी तरह चक्षुज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्ति शब्दमें है सो वह चाक्षुष ही है अथवा रसकी तरह रसना ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्ति है शब्दमें इसलिये वह रासन है अर्थात् रसना इन्द्रिय द्वारा जाने योग्य है। इसी तरह गंध आदिककी तरह घ्राण आदिक ज्ञानोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति शब्दमें होनेसे वह शब्द घ्राण आदिक इन्द्रियसे ज्ञातव्य है। इस प्रकार शब्दमें अचाक्षुषत्व अरासनत्व आदि धर्म शब्दमें न रहेंगे अथवा उस शब्दमें चाक्षुषत्व और रासनत्व आदिक धर्म भी बन जायेंगे या फिर अश्रावणत्व याने कर्ण इन्द्रिय द्वारा भी श्रवण करनेमें नहीं आये यह सिद्ध हो बैठे। अर्थात् शब्दको अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करने वाला माननेमें अब कोई प्रतिनियम नहीं ठहर सकता। कोई भी शब्द कैसे ही अर्थको ध्वनित करदे। तो इस विडम्बना को मेटनेमें यही स्वभाव समर्थ है कि शब्दमें एक अर्थका वर्णन करनेकी शक्ति पड़ी हुई है। सो जिस कारण कि स्वशक्तिका अतिक्रमण मान लिया शब्दादिक अपनी शक्तिका उल्लघन करने लगे और इसी बलपर चाक्षुषत्व आदिक शब्दादिकके धर्म हो बैठे अतः जितने भी पररूप हैं, अन्य शब्दके वाच्य हैं उतने ही प्रति शब्दके स्वभावान्तर बन जायेंगे अर्थात् एक शब्दका सभी पदार्थोंके साथ वाच्य वाचकभाव सम्बन्ध बन जायगा, पर ऐसा तो नहीं है। इससे मानना पड़ेगा कि शब्द केवल अपने ही अर्थ के प्रतिपादन करनेका स्वभाव रखता है अन्यथा तो शब्दादिकका स्वरूप भी न बन सकेगा।

शक्ति अशक्तिका अनतिक्रम माननेपर स्यात् वृक्षः आदि सर्व शब्दों द्वारा स्व स्व अभिधेयके अभिधानकी सिद्धि —यदि कहा जाय कि शब्दमें चक्षु आदिक ज्ञानकी उत्पन्न करनेकी अशक्तिका उल्लघन सर्वथा असम्भव है याने शब्दमें चक्षु इन्द्रियजन्य ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है, इस अशक्तिका कभी शब्द उल्लंघन नहीं करता इस कारणसे शब्दके धर्म अचाक्षुषत्व अरासनत्व आदिक बनते हैं जैसे कि श्रावण आदिक मायने कर्णके द्वारा शब्द सुने इस ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिका उल्लंघन न करनेसे शब्दका धर्म श्रावण कहा गया है याने शब्द कर्ण इंद्रिय द्वारा ज्ञात माना गया है ऐसे ही शब्दमें चक्षु रसना, घ्राण आदिक इन्द्रिय द्वारा ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है, उस अशक्तिका भी उल्लघन नहीं करता। अतः शब्दमें अचाक्षुषत्व आदिक धर्म माननेका प्रसंग न आयगा। यदि शंकाकार यह कहे तो फिर ठीक ही तो हो गया। सत् आदिक पद, सत्वादिकका ही प्रतिपादन करनेकी शक्ति रखते हैं, सो इस शक्तिका तो उल्लंघन नहीं हुआ, और प्रधान भावसे ही अनेक धर्मों को कहने की शक्ति नहीं रखते सो उस अशक्तिका उल्लंघन न करने से एक शब्द अनेक अर्थ एक साथ सम्भव नहीं हो सकते हैं, यह बात बिल्कुल मान लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक शब्द अपने धर्मको प्रतिपादन करनेकी शक्ति रखता है और वह प्रधानतासे अनेक धर्मोंको कहनेकी शक्ति नहीं रखता सो शब्द अपनी शक्तिका भी उल्लंघन नहीं करता। और अपनी अशक्तिका भी उल्लघन नहीं करता। जिस अर्थको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहनेकी शक्ति है उस अर्थका भी अतिक्रम नहीं करता। और जिस अर्थको कहनेकी शक्ति नहीं है ऐसी कमजोरीका भी अतिक्रम नहीं करता। इससे यह व्यवस्था बनी हुई है कि प्रत्येक शब्द अपने ही अभिधेयको कहेंगे अन्य धर्मको न कहेंगे। अथवा किसी परिस्थितिमें एक शब्द अन्य धर्मोंको भी गौण रूपसे संकेत करदे, पर प्रधान-भाव रूपसे अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करनेकी एक शब्दमें सामर्थ्य है ही नहीं। इस कारण यह कथन संगत ही है कि स्यात् इस शब्दके द्वारा अनेकान्तमात्रका प्रतिपादन होता है, अनेक धर्मोंका नहीं। तथा स्यात् शब्द अविवक्षित समस्त धर्मोंकी सूचना करता है वह विवक्षित अर्थकी सूचनाके लिये नहीं है। और लौकिक शब्दोंमें जो बहुवचनान्त प्रयोग हैं उन प्रयोगोंमें जो एक और अनेक दोनोंका अर्थ ध्वनित होता है तो वहाँ एक तो जाना गया प्रधानरूपसे और अनेक जाना गया गौण रूपसे इस तरह गौण प्रधानरूपसे एक और अनेक अर्थ पदके वाच्य हो जायेंगे। पर प्रधानरूपसे एक और अनेक दोनों एक पदके वाच्य नहीं हो सकते हैं। इस तरह स्यात् सर्व अवक्तव्य ही है, क्योंकि एक साथ कहा नहीं जा सकता सो यह चौथा भंग उत्पन्न हो जाता है।

सप्तभंगीके पञ्चम षष्ठ और सप्तमभंगकी निष्पत्ति—इस प्रसंगमें यहाँ तक स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति, स्याद् अस्तिनास्ति, स्याद् अवक्तव्य इन चार भंगोंकी साधनाका वर्णन किया। अब यह बताते हैं कि द्रव्य और पर्यायको व्यस्त और समस्त रूपसे आश्रय करके अन्तके तीन भंगोंकी व्यवस्था बनती है। अर्थात् द्रव्यका और समस्त द्रव्य पर्यायोंका एक साथ आश्रय करके बनता है स्याद् अस्ति अवक्तव्य, पर्याय का और एक साथ समस्त द्रव्य पर्यायोंका आश्रय करके बनता है स्याद् नास्ति अव-क्तव्य और व्यस्तरूपसे अर्थात् क्रमशः द्रव्य पर्यायका और समूहका अर्थात् एक साथ अक्रमसे द्रव्य पर्यायका आश्रय करके बनता है स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। यहाँ जब पंचम भंगकी प्रवृत्ति होती है तब सत् इस प्रकार रूपसे याने व्यस्त रूपसे द्रव्यका आश्रय करके कहा है अर्थात् प्रथम जो स्वतन्त्र धर्म है जिसकी साधनाके लिए भंग हो रहे हैं उसको पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे द्रव्यरूप स्वीकार किया है। उस व्यस्त द्रव्यका और एक साथ अर्पित द्रव्य पर्यायोंका जब आश्रय करते हैं तो अर्थ स्यात् सत् अवक्तव्य है इस वाक्यकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् पंचम भङ्ग निष्पन्न होता है। द्रव्यका आश्रय करनेपर सत् अंश विवक्षित होता है जिसकी विधि बताना है वह द्रव्य रूपसे विवक्षित होता है। और, जिसका निषेध करना है उसको पर्याय रूपसे विवक्षित कहा करते हैं। तो द्रव्यके आश्रय करनेपर सत् अंश विवक्षित होता है और एक साथ द्रव्य पर्यायका आश्रय करनेपर चूँकि वह कहा नहीं जा सकता इसलिए अवक्तव्यपना विवक्षित होता है। यों पंचम भंगकी निष्पत्ति हुई। अब उस ही प्रकार व्यस्त पर्याय का आश्रय करके और समस्त द्रव्य पर्यायका आश्रय करके यह वचन व्यवहार बनता है कि सर्व स्यात् असत् अवक्तव्य ही है। यहाँ पर्यायके आश्रयसे असत् अंश विवक्षित है। इस प्रक्रियामें जिसकी विधि करना है उसका आश्रय तो द्रव्यार्थिकनयसे होता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और जिसका व्यतिरेक करना है, प्रतिषेध करना है उसका आश्रय पर्यायार्थिकनयसे होता है। तो पर्यायका आश्रय करनेपर और समस्त द्रव्य पर्यायोंका आश्रय करनेपर असत् अवक्तव्यपना आता है। अब व्यस्तरूपसे तो क्रमशः द्रव्य पर्यायकी विवक्षा की और एक ही साथ समस्त द्रव्य पर्यायको अर्पित किया, ऐसी स्थितिमें स्यात् सत् असत् अवक्तव्य ही सब है ऐसा वचन व्यवहार होता है। यों स्याद्वादका आश्रय करके व्याख्यान करनेसे अन्तिम तीन भंगोंकी व्यवस्था बनती है।

परमतापेक्षया सदवक्तव्यत्वका योजन—अब यहाँ सामान्य और विशेष का परदर्शनकी अपेक्षासे विचार करें तो सत् सामान्य अन्वयी द्रव्य कहलाया। क्योंकि इसको विधिरूप बना रहे हैं। और यह अन्वयरूपसे निरखा जा रहा है तथा सामान्य है, तो परमतकी अपेक्षा सत् सामान्य अन्वयी द्रव्यका आश्रय करके सत् अवक्तव्य है इस प्रकारका भंग बनता है। अर्थात् उनको अभिमत उसकी दृष्टिमें है तो सही। पर इतना ही परिपूर्ण नहीं है सो यों परमतापेक्षया अद्वैतवादमें अन्वयी निर्विशेष सत्सामान्य सत् अवक्तव्य ही है। जब स्वलक्षण देखकर याने विशेष मात्र याने सामान्य रहित विशेषका आश्रय करना है ना सो वह होता है व्यतिरेकी। जिसका प्रतिषेध किया जाता है तो प्रतिषेध कहो अथवा अन्यापोह कहो, तो जब क्षणिकवादकी अपेक्षा में अन्यापोह सामान्यको देखा जाता है स्वलक्षणका अर्थ भी वही बताया गया है तो उसके आश्रयमें सर्व असत् अवक्तव्य ही है यों कहा जाता है। और यौगमतकी अपेक्षामें सामान्य विशेष जो परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं इस रूपसे द्रव्य पर्यायको समुदित करके आश्रय करके सत् असत् अवक्तव्य ही है ऐसा व्याख्यान किया जाता है। सामान्य रूपसे सत् अवक्तव्य ही है, यह उसका भाव है। इसके बतानेका प्रयोजन यह है कि चूंकि यौगमतमें एक नित्य सर्वगत सामान्य जो सर्वथा अभेदरूप है माना गया है तो उसकी अपेक्षासे सत् अवक्तव्य ही है और घट पट आदिक पदार्थोंको वे ही नैयायिक जन अनित्य ही मानते हैं। इसकी अपेक्षासे वस्तु सर्वथा असत् अवक्तव्य ही है। इन दृष्टियोंमें अनेक दार्शनिकोंकी दृष्टियाँ छू गई हैं और उन्हें किसी विवक्षामें इस तरह परखा जा रहा है, पर स्यात् शब्दका इतना उपकार है कि जो कुछ भी कहा जाय स्यात्के सहयोगसे वह सब तथ्यभूत सिद्ध होता है। अब सत् अवक्तव्य और असत् एवं सत् असत् अवक्तव्य इन तीनों धर्मोंमें वस्तु सत् सामान्य किस प्रकारसे सत् होनेपर भी अवक्तव्य है। ऐसा यदि कोई पूछे तो उसका उत्तर है यह है कि दूसरे दार्शनिक मानते हैं। उनकी मान्यताके अनुसार सत् माना है और ऐसा सत् होकर भी उसके सम्बन्धमें वचनकी प्रवृत्ति नहीं होती है, यह कहना चाहिए। यह बात परमतकी अपेक्षा दिखाई गई है।

सर्वात्मना कल्पित सामान्यका अभाव—अब यहाँ सर्वथा यह नहीं कहा जा सकता कि सामान्य सर्वरूपसे सत् है याने जैसे सामान्य अपेक्षासे सामान्य कहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है उसी प्रकार व्यक्ति अपेक्षासे सामान्य बने सो नहीं। यदि सामान्यको सर्वरूप से माना जावे तो वह शब्द द्वारा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि ऐसे सामान्यकी प्रतिपत्तिका अर्थ क्रियामें उपयोग नहीं है। जैसे कि यौग सिद्धान्तमें सामान्यको माना है अपरिणामी, व्यापक। एक ऐसे सामान्यसे कोई अर्थक्रिया नहीं बनती है। जैसे एक गोत्म सामान्य है अर्थात् गाय सामान्य और ऐसा सामान्य कि जो व्यक्तिसे वस्तुसे सर्वथा भिन्न है। स्वतंत्र अपनी सत्ता रूप है ऐसे गोत्व सामान्यका क्या कहीं किसी क्रियामे उपयोग हो सकता है? जैसे उसपर बोझ लादा जा सके अथवा उससे दूध दुह सके ऐसा कुछ भी गोत्व सामान्यसे बन सकता है क्या? अरे भार ढोना, दूध दुहना आदिककी बात तो दूर रहो। उस सामान्यका सामर्थ्य तो अपने विषयके ज्ञानमात्र कराने तकमें भी नहीं है। अर्थात् उस सामान्यका कुछ ज्ञान ही नहीं होता कि वह कोई पदार्थ है ऐसा कि जो सर्व व्यापक हो, एक हो, नित्य हो और विशेष से जुदा हो। अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता हो, ऐसे सामान्यका ज्ञान तक भी नहीं हो पाता, यदि ऐसा मान लिया जाय कि व्यक्ति सहित सामान्यका अपने विषयके परिज्ञानमें सामर्थ्य बन जायगा। केवल सामान्यका सामर्थ्य नहीं है ऐसा कि वह अपने विषयका ज्ञान करा सके, तो विशेष सहित, व्यक्ति सहित सामान्यमें तो वह सामर्थ्य आ जायगा। तो कहते हैं कि व्यक्ति सहित सामान्यका स्व विषयके परिज्ञानका सामर्थ्य माननेपर भी समस्त व्यक्तियोंसे सहित सामान्यका तो अपने विषयके परिज्ञानमें सामर्थ्य नहीं बना। सामान्य तो सर्व व्यक्तियोंसे सहित माना गया है, जो सर्व व्यक्तियोंसे सहित माना गया है, जो सर्व व्यक्तियोंमें व्यापक हो वह ही तो सामान्य है। अब किसी व्यक्तिसे सहित सामान्यसे कोई काम बना लिया गया, अपने विषयका ज्ञान बना लिया गया तो ऐसा सामान्य तो न जाना जा सकेगा जो समस्त व्यक्तियों को जानले यह बात असम्भव है परमतकी अपेक्षा एक बारमें तो असम्भव माना ही है। लौकिक जन एक समयमें समस्त विषयोंकी जानकारी नहीं कर सकते हैं। तो समस्त व्यक्तियोंका ज्ञान लिया जाय और ऐसे व्यक्तियोंसे सहित एक सामान्यमें अपने विषयका ज्ञान करानेमें सामर्थ्य नहीं है।

कतिपयव्यक्ति सहित सामान्यके अभ्युपगममें अभिष्टकी असिद्धि—शंकाकार यदि यह कहे कि समस्त व्यक्तियोंको नहीं जाना गया ऐसे समस्त व्यक्तियों से सहित सामान्यमें वह सामर्थ्य मान ली जायगी कि अप्रतिपन्नाखिल व्यक्ति सहित सामान्य अपने विषयका ज्ञान करनेमें समर्थ है। तो इस शंकाका समाधान सुनिये—यदि इस तरह सब व्यक्तियोंको नहीं जान पाया और सब व्यक्तियोंसे सहित सामान्य को समझ लिया तो एक भी व्यक्तिको न जान पाये और फिर भी सामान्यका ज्ञान बन बैठे क्योंकि अब तो समस्त व्यक्तियोंको न जानकर भी समस्त व्यक्तियोंसे सहित सामान्यकी जानकारी बतायी जा रही है। तो जब समस्त व्यक्तियोंसे सहित सामान्यको जान लिया गया तो एक व्यक्तिको भी न जान पाये फिर भी समस्त व्य-

Version 1

क्तियोंमें व्यापक उस एक सामान्यको जान लेना सिद्ध हो बैठे।

व्यक्तियोंसे सामान्यका उपकार होना या न होना दोनों पक्षोंमें भी अभीष्टकी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि कुछ ही व्यक्तियोंसे युक्त सामान्य अपने विषयकी जानकारी कराने में समर्थ है अर्थात कुछ ही विशेषोंसे युक्त सामान्यका ज्ञान हो जाया करता है। तो इसके उत्तरके लिए पूछा जा रहा है शंकाकारसे कि सामान्यका उन व्यक्तियोंसे उपकार होता है या नहीं? जिन कुछ व्यक्तियोंसे सहित सामान्यमें अपना विषय जाननेका सामर्थ्य मान लिया तो इतने उन व्यक्तियों द्वारा सामान्यका कोई उपकार हुआ या नहीं हुआ? यदि कहो कि उन कुछ व्यक्तियों द्वारा सामान्यको उपकार किया गया तो बतलाओ कि वह उपकार सामान्यसे भिन्न है या अभिन्न है? यदि कुछ व्यक्तियों द्वारा किए गए सामान्यका वह उपकार सामान्यसे अभिन्न है यह माना जायगा तो फिर जो व्यक्तिमें कार्य होते हैं सो वही कार्य सामान्यके भी बन बैठेंगे, क्योंकि उपकारको सामान्यसे अभिन्न मान लिया गया। उपकार मायने कार्य। वह कार्य सामान्यसे अभिन्न मान लिया गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह सामान्यका कार्य हो गया। क्योंकि वहाँ सामान्यसे अभिन्न ही उपकार किया गया ना। तो सामान्यसे अभिन्न उपकार उन कतिपय व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिन व्यक्तियोंसे सहित सामान्यमें अपने विषयका परिज्ञान करानेका सामर्थ्य माना गया है। यह बात संगत नहीं हो सकी। यदि कहो कि कतिपय व्यक्तियों द्वारा जो उपकार किया गया है सामान्यका वह सामान्यसे भिन्न ही है और उस भिन्न उपकारको किया गया है तो समाधानमें कहते हैं कि व्यक्तियों द्वारा किए गए सामान्यके उपकारको सामान्यसे भिन्न मान लिया जाय तो यह उपकार सामान्यका है यह व्यपदेश ही न बन सकेगा क्योंकि अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं उनमें ये मेरे हैं यह व्यपदेश नहीं बनता। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत ये दोनों भिन्न–भिन्न हैं तो उसमें यह व्यपदेश नहीं बनता कि हिमालयका विन्ध्याचल है या विन्ध्याचलका हिमालय है। तो भिन्न उपकार किए जानेपर फिर यह उपकार उसका है यह व्यपदेश भी नहीं बन सकता है। और, यह भी तमाशा देखिये कि व्यक्तियों द्वारा जो उपकार किया गया वह उपकार भिन्न है और उसमें व्यपदेश नहीं बनता। तो व्यपदेश बनानेके लिए उस उपकारके द्वारा भी सामान्यका एक उपकार और मान लीजिए। सम्बन्ध बनानेके लिए कि यह उपकार सामान्यका हुआ है। इतना सम्बन्ध भर सिद्ध करनेके लिए अन्य उपकारान्तरका किया जाना और मान लीजिए फिर तो इसमें अनवस्था दोष आता है। फिर वह अन्य उपकार किया जाना मान लेना पड़ेगा। इस प्रकार कहीं भी टिकाऊ नहीं हो सकता। अब द्वितीय विकल्प की बात सुनिये, यह भी तो माना नहीं जा सकता है कि व्यक्तियों द्वारा सामान्यका उपकार नहीं किया गया और उन व्यक्तियोंसे सहित सामान्यमें स्वविषयज्ञान जननका सामर्थ्य है। तब तो व्यक्तियोंकी सहितता मानना व्यर्थ है। जो मूल बात यह कही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गई थी कि कुछ व्यक्तियोंसे सहित सामान्यमें अपना विषय परिज्ञान करानेका सामर्थ्य है तो व्यक्तियोंके सद्भावका क्या प्रयोजन रहा ? जब कुछ सम्बन्ध हो नहीं, उपकार ही नहीं, जो अकिञ्चित्कर होता है, जो कुछ भी काम न आये उसमें सहकारिताकी बात कहाँसे आ जायगी ?

सामान्यके साथ एक ज्ञान होनेमें व्यक्तियोंका व्यापार कल्पित करके व्यक्तियोंकी सहकारिता मान लेनेके मन्तव्यकी असंगतता – अब शंकाकार कहता है कि सामान्यके साथ एक ज्ञान होनेमें व्यक्तियोंका व्यापार है इस कारणसे उन व्यक्तियोंकी सहकारिता मान ली जायगी। तो इसके उत्तरमें पूछते हैं कि बतलाओ उस एक ज्ञानमें जो व्यक्तियोंका व्यापार हुआ है सो क्या वह आलम्बन भावसे हुआ है या अधिपतिपनेके रूपसे हुआ है ? यदि कहो कि विषयभावसे सामान्यके साथ एक ज्ञानमें व्यक्तियोंका व्यापार हुआ याने सामान्यके साथ जो एक ज्ञान बन रहा है उस ज्ञानमें व्यक्तियोंका विशेषोंका व्यापार हुआ है और इस तरहके व्यक्तियोंके समुदायकी सहितता मान ली जा रही है तब वहाँ ये दो प्रश्न होते हैं कि विषय भावसे उनका व्यापार है या अधिपतिरूपसे ? यदि विषय भावसे व्यापार मानते हो तब फिर एकानेकाकार सामान्य विशेष ज्ञान बनेगा एक सामान्यका यह ज्ञान न बनेगा ? क्योंकि वहाँ व्यक्तियोंका व्यापार सामान्यके साथ एक ज्ञान होनेमें बना। तब सामान्य विशेष रूपसे ज्ञान बनेगा, एक अनेकाकार रूपसे ज्ञान बनेगा, पर एक सामान्यका ज्ञान न बन सकेगा। क्योंकि समस्त विज्ञान अपने आलम्बनके अनुरूपसे ही हुआ करता है। तो जब यहाँ ज्ञान व्यक्तियोंके व्यापारसे सामान्यके साथ एक रूपसे हुआ है तब तो वह ज्ञान भी सामान्य विशेष ज्ञान हुआ, किन्तु एक सामान्यका ज्ञान नहीं हुआ। यदि यह कहो कि व्यक्तियोंका ज्ञान एक एक ज्ञानमें व्यापार अधिपतिरूपसे हुआ है तो व्यक्तियोंका अपरिज्ञान होनेपर भी सामान्यका ज्ञान हो जानेका प्रसंग होगा। देखिये ! अधिगत चक्षुका रूपके ज्ञानमें अधिपति रूपसे व्यापार नहीं हो सकता याने जिसका व्यापार होता है किसी ज्ञानके किये जानेमें यदि वह जान लिया गया हो तो वह व्यापार नहीं कर पाता। जैसे आँखोंसे रूपका ज्ञान करते हैं तो आँख तो नहीं जानी गई ? तो जाने हुएका अधिपतिरूपसे व्यापार नहीं होता। अथवा कहो कि अदृष्ट जो शुभ अशुभ रूप है वह जान लिया गया तो उसके रूप ज्ञानमें अधिपति रूपसे व्यापार सम्भव नहीं हो सकता। सर्वथा नित्य सामान्यमें क्रमसे और अक्रमसे किसी भी अर्थक्रियामें उपकार हो नहीं सकता जिससे कि उस सामान्यका प्रतिपादन करनेके लिए शब्दका प्रयोग तक भी हो सके। तब यह सिद्ध हुआ कि नित्य सामान्यसे खण्डमुण्ड आदिक अर्थमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सामान्य और विशेषका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

परम्परासे भी सामान्यका अर्थक्रियामें उपयोग होनेकी असंभवता –

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यदि शंकाकार यह कहे कि सामान्यका साक्षात् अर्थ क्रियामें उपयोग सिद्ध न हो सका तो परम्परासे हो जायगा। तो यह भी किसी प्रकारका भी तादात्म्य न माननेपर, सामान्यको विशेषके साथ एकाधिकरण आदिक रूपसे भी तादात्म्य न माननेपर परम्परासे भी सामान्यका अर्थ क्रियाके लिए उपयोग नहीं हो सकता। इस शंकाकारने अन्य कोई सम्बन्ध तो माना हो नहीं अथवा संयोग और समवायके सिवाय तीसरा कोई सम्बन्ध नहीं माना गया है। जैसे धनुर्धारी पुरुष, यहाँ धनुष और पुरुष इन दोनोंका संयोग सम्बन्ध सिद्ध ऐसा संयोग सामान्य और विशेषमें तो नहीं पाया जाता कि सामान्य स्वतंत्र कोई पदार्थ है, विशेष स्वतंत्र कोई पदार्थ है और फिर इन दोनों का संयोग हुआ हो। हो नहीं सकता संयोग, पदार्थ भी सामान्य या विशेष स्वतंत्र नहीं है यहाँ! और, फिर सम्बन्धको आकांक्षा इन दोनोंमेंसे किसको जगे? तो सामान्य और विशेषमें संयोग सम्बन्ध तो है नहीं और समवाय नामका कोई स्वतंत्र पदार्थ सिद्ध है नहीं, क्योंकि समवाय है कुछ ऐसी प्रतीति नहीं हो रही है। और, जिस तरह से प्रतीति होती हो समवाय सम्बन्ध जैसी बात समझनेके लिए तो वह कथंचित् तादात्म्य ही है। क्योंकि तादात्म्य ही है। क्योंकि तादात्म्य सम्बन्ध अनथक्भूत लक्षण वाला होता है। सामान्य और विशेष इन दोनोंमें अपृथक्पना है, ये स्वयं अलग-अलग नहीं हैं। इस ही को कथंचित् तादात्म्य कहते हैं। तो समवाय सम्बन्धकी स्वयं असिद्धि है। अथवा कथंचित् तादात्म्यरूप समवाय माना जाय तो वह सम्बन्ध क्या? वे तो आत्माके स्वरूप ही हैं। उक्त प्रकारके विवरणसे यह सिद्ध हुआ कि शब्दके द्वारा जो लक्षित होता है, जाना जाता है, जिसका संकेत किया जाता है, ऐसा सामान्य विशेषका परिज्ञान कराता है। विशेषरहित सामान्य कभी ज्ञानमें नहीं आता। विशेष गौण हो गया, सामान्यको प्रधान कर लिया। इस तरहसे तो ज्ञानमें आ जायगा परन्तु केवल सामान्य जो कि विशेषसे भिन्न हो ऐसा कुछ लक्ष्यमें नहीं आता। तो सामान्य शब्दके द्वारा जिस सामान्यसे वह सामान्य विशेषोंका परिज्ञान कराता है है, तो सामान्य विशेषसे प्रथक नहीं और शब्दके द्वारा लक्षित सामान्य विशेषोंको लक्षित सामान्य विशेषोंको लक्षित करता है इस कारण सामान्यमें अर्थक्रिया चाहने वाले पुरुषोंकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती। अर्थात् जो लोग निर्विशेष सामान्य नित्य व्यापक मान रहे हैं उनकी सामान्यमें प्रवृत्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रवृत्तिका और विशेषका कोई सम्बन्ध ही नहीं बनता। संयोग और समवाय इनको छोड़कर अन्य सम्बन्ध असिद्ध है।

सर्वात्मक सामान्य और विशेषमें विशेष्य विशेषणभाव, अविनाभाव व सामान्य विशेषभाव आदि सर्व सम्बन्धोंकी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि विशेषण विशेष्य भावरूप सम्बन्ध भी तो है एक। जो संयोगरूप नहीं समवाय रूप नहीं जैसे कहा जाय कि सामान्यवान विशेष है तो यहाँ विशेष बन गया विशेष्य और सामान्य बन गया विशेषण। उस विशेष्यकी सामान्य द्वारा तारीफ हुई है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस तरह विशेषण विशेष्य भाव नामका एक सम्बन्ध भी तो है । इसके समाधानमें कहते हैं कि विशेषण विशेष्य भावरूप सम्बन्धकी कल्पना करनेपर यह बताइये कि वह विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध स मान्य व विशेषोंसे भिन्न है या अभिन्न है ? यदि सामान्य और विशेषोंसे विशेषण विशेष्यभाव प्रथक है तो अपने सम्बन्धीको जब वह भिन्न मान लिया गया तो अब विशेषण विशेष्य भाव सामान्य विशेषमें रहे यह सिद्ध करनेके लिए अन्य सम्बन्ध मानना पड़ेगा । और इस तरहसे अन्य अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा होते रहनेसे अनवस्था दोष आयगा । यदि उस विशेषण विशेष्य भावको अपने सम्बन्धी सामान्य विशेषके साथ तादात्म्यरूप मानते हो तो इसमें शंकाकारके हठका विरोध है । शंकाकारका आग्रह था कि भेद भेद ही सब सर्वत्र है । कुछ भी तत्त्व समझमें आये, सब पूरे स्वतंत्र तत्त्व हैं, । अन्य सबसे भिन्न हैं । सो यहां भेदपक्ष विरोध होता है । तब सामान्य विशेषमें न तो संयोग सम्बन्ध है न समवाय सम्बन्ध और न विशेषण विशेष्य भावरूप सम्बन्ध भी बन सकता है । इसी प्रकार सामान्य विशेषमें अविनाभाव सम्बन्ध भी नहीं बन सकता । क्योंकि जहां कुछ भी तादात्म्य नहीं माना जा रहा तो एक जगहमें अविनाभाव इसका बताया कैसे जा सकेगा ? तो अविनाभाव सम्बन्ध भी सामान्य विशेषमें नहीं बनता । और कोई कहे कि सामान्य विशेष भावरूप सम्बन्ध बन जायगा तो वह भी बात मिथ्या है । जो कथंचित् भी तादात्म्यरूप नहीं है । जिन सामान्य विशेषोंको सवत्र भिन्न स्वतन्त्र माना गया है उनमें किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं बन सकता । जैसे हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत बिल्कुल पृथक–पृथक हैं, उनमें किस प्रकारका सम्बन्ध माना जायगा ?

अमूर्त एकरूप सामान्यकी असिद्धि तथा ऐसे निर्विकल्प सामान्यकी अवाच्यता— जब सामान्य विशेषमें कोई सम्बन्ध न बना और किसी भी प्रकार वह वाच्य न बन सका, तब यही तो सिद्ध हुआ कि नित्य व्यापक अमूर्त एक रूप सर्वथा विशेषोंसे भिन्न कोई सामान्य नहीं है अथवा विशेषोंसे अभिन्न या अन्य किसी प्रकार का स्वतंत्र सामान्य शब्दों द्वारा वाच्य नहीं हो सकता । क्योंकि ऐसे सामान्यका अर्थ क्रियामें न तो साक्षात् उपयोग है और न परम्परासे उपयोग है । और जब ऐसा सामान्य पाया ही नहीं जा रहा है तो संकेत भी सिद्ध नहीं हो सकता । और जिसका संकेत नहीं बन सकता वह वाच्य कैसे हो सकता ? यदि असंकेतित भी कुछ वाच्य बन जाय तो इसमें बड़ा प्रसंग और आपत्तियां आती हैं फिर जो जो सत् है उसको भी उस ही प्रकारकी जातिके अन्यसे हटनेरूप होना ही चाहिए । तो सामान्यको भी सामान्यांतर से हटा हुआ होना चाहिए अन्यथा उसमें कोई स्वभाव ही सिद्ध न हो सकेगा, जैसे कि विशेषमें विशेषान्तरकी व्यावृत्ति न माननेपर विशेषका कोई स्वभाव नहीं बनता, इसी प्रकार सामान्यान्तरकी व्यावृत्ति न माननेपर सामान्य भी सिद्ध न हो सकेगा ।

परमतापेक्षया सदवक्तव्यत्वके वर्णनमें अन्तिम वक्तव्य— परसामान्य

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अपर सामान्य इन दोनोंके स्व स्वका आश्रय तो माना ही जावेगा। तो अपने अपने आश्रय होनेसे विशेष रूपका आश्रय कहलाया और फिर इस पर सामान्य और अपर सामान्यमें परस्पर कथंचित् हटाव न माना जाय, पर सामान्य तो अपर सामान्य की निवृत्तिरूप है, अपर सामान्य पर सामान्यकी निवृत्ति रूप है। इस तरहका यदि हटाव न माना जाय तो स्वरूप संकर हो जाता है याने जो पर सामान्य है सो ही अपर सामान्य बन गया, जो अपर सामान्य है सो ही पर सामान्य हो गया। सो अब पर सामान्य और अपर सामान्यमें प्रतिनियत स्वभाव न रहा। तब फिर विशेषकी तरह जैसे कि विशेषमें विशेषका हटाव नहीं है तो विशेषका प्रतिनियत स्वभाव न रहा ऐसे ही पर सामान्य और अपर सामान्यका प्रतिनियत स्वभाव कुछ न रहा, तो सामान्यवान पदार्थका भी अभाव हो जायगा और इस तरह सबका अभाव बन बैठेगा। यों बताया गया है कि जो सामान्यवादी दार्शनिक हैं, स्वतन्त्र व्यक्तियोंसे भिन्न सामान्यको मानने वाले दार्शनिकोंको उनकी मान्यता मात्रसे कहा गया है कि सत् होनेपर भी वह अवक्तव्य ही है सामान्य।

स्वलक्षणैकान्तवादियोंके स्वलक्षणकी अवाच्यता—अब परमतकी अपेक्षा से जो यह बताया गया है कि पर्यायका आश्रय करके अन्यापोह सामान्य असत् अवक्तव्य ही है, उसीसे सम्बन्धित यहाँ बात कह रहे हैं कि जो विशेष एकान्तवादी हैं स्व लक्षणका ही जिनके आग्रह है उनके सिद्धान्तमें स्वलक्षण शब्द द्वारा वाच्य नहीं बन सकता। क्योंकि स्वलक्षण तो अनन्त है और अनन्त होनेके कारण वे संकेतके विषयभूत नहीं हो सकते। और संकेतके विषयभूत इस कारण भी नहीं हो सकते कि वे सब अन्वय रहित हैं। उन लक्षणोंका एक अन्वय नहीं माना गया और वे शब्द व्यवहारके विषयभूत भी नहीं है। तो स्वलक्षण वाच्य नहीं है। स्वलक्षण शब्द व्यवहारका विषयभूत नहीं है, इसका कारण यह है कि वहाँ अन्वय नहीं है। अन्वय यों न बन सकेगा कि वह संकेतका विषयभूत नहीं है और संकेतका विषय यों न बन सकेगा कि स्वलक्षण तो अनन्त है, प्रतिक्षण अर्थक्षण ज्ञानक्षण सभी पृथक पृथक अनन्त माने गए हैं और यों भी सोच लीजिए कि जिस समय कोई संकेत बोला गया, नाम बोला गया उस समय वह स्व लक्षण नहीं है और स्वलक्षण यों जब संकेत किया जा रहा उस व्यवहारकालमें उसका अन्वय नही पाया जा रहा। स्वलक्षण तो होते ही अपने कालमें नष्ट हो गया संकेत बोला गया उसके बादमें तो एक कालमें न होनेके कारण स्वलक्षण शब्द द्वारा वाच्य नहीं बन सकता।

स्वविषयविधिनिरपेक्ष अन्यापोहकी अवाच्यता व अनिर्णयता—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि स्व लक्षण यदि शब्द द्वारा वाच्य नहीं बनता है तो न बने, पर सामान्य तो वाच्य हो जाता है अर्थात् जो अन्यापोह है, शब्द द्वारा वाच्य जो अन्यकी व्यावृत्ति है वह अन्यापोह सामान्य तो वाच्य बन जायगा ऐसा क्षणिक-

वादी शंकाकार कह रहे हैं। इस सिद्धान्तमें अन्यापोहको सामान्य कहा गया है और स्वलक्षणको विशेष कहा गया है। शब्द द्वारा जो वाच्य है वह सामान्य है साधारण है, अन्यापोह है, अस्पष्ट ज्ञानका विषय है। दर्शनका विषयभूत नहीं है इसलिए अन्यापोह सामान्यको ही शब्द द्वारा वाच्य बताया गया है। इसी आधारपर शंकाकार कहता है कि स्वलक्षण तो शब्द द्वारा वाच्य नहीं होता, लेकिन अन्यापोह सामान्य शब्द द्वारा वाच्य हो जायगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि वह अन्यापोह शब्दका व विकल्पका सर्वथा अर्थ नहीं कहा जा सकता। जो अपने विषयकी विधिकी अपेक्षा ही नहीं रखता है तो गौण भावसे भी अन्यापोहका शब्द द्वारा कथन नहीं हो सकता। याने शब्द द्वारा कथन नहीं हो सकता। याने शब्द द्वारा अन्यापोह को शंकाकार वाच्य बता रहा था लेकिन अन्यापोहमें तो अपने विषयकी विधि नहीं बतायी जाती। अन्य पदार्थका अभाव है यह कहा जाता है तो अपने विषयकी विधि की रंच भी अपेक्षा न रखे ऐसे अन्यापोहका शब्द द्वारा गौणभावसे भी कथन नहीं हो सकता। और, विकल्पके द्वारा याने ज्ञानके द्वारा उसका निश्चय भी नहीं बन सकता है। कोई शब्द यदि किसीकी सत्ताको नहीं कह रहा है। केवल परकी व्यावृत्तिको ही कह रहा है तो ऐसे वाच्यका अन्यापोहका स्वभाव द्वारा कथन न बनेगा और न किसी ज्ञान द्वारा उस अन्यापोहका निश्चय हो सकेगा। जो अपने विषयकी विधिकी अपेक्षा ही नहीं रखता। यहाँ वास्तविकता तो यह है कि यह जाना गया हो कि यह पदार्थ स्वरूपसे सत् है तो उस हीके साथ यह समझा जा सकेगा कि अन्य पदार्थकी अपेक्षासे असत् है। अब जो स्वरूप सत्त्वको मानता ही नहीं है, केवल अन्यापोहको मान रहा है तो ऐसा अन्यापोह न तो शब्द द्वारा कहा जा सकेगा और न ज्ञान द्वारा निर्णयमें आयगा।

साधनवचनको अतिरिक्त अन्य वचनोंका भी अर्थ अन्यापोह बतानेकी

आशङ्का— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सिद्धान्त यह है कि साधनका कथन ही त्रिरूप्यलिङ्गका प्रकाश करने वाला है अर्थात् वह त्रैरूप्यका कथन कर देता है, परन्तु उसको छोड़कर याने साधन वचनके अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी वचन हैं वे विधिके प्रकाशक नहीं होते। जैसे घट लावो! ऐसे आज्ञावचन या जो कुछ सत् है वह सब क्षणिक है ऐसे सिद्धान्त वचन ये सब अन्यापोहके वाचक हैं। साधन वचन ही त्रिरूप लिङ्गका प्रकाश करने वाला है और उसमें भी समझ लीजिए कि त्रैरूप्यलिङ्गमें यह अन्य व्यावृत्ति पड़ी है कि वह अन्य साध्यरूप साधनसे हटा हुआ है. ऐसा अन्यापोहरूप का वह साधन वचन भी प्रकाशक है। यों उन अन्य वचनोंका विवक्षामात्र होनेपर भी अर्थात् कहनेकी इच्छा होनेपर भी उसमें सम्भावना मानी गई है इस कारण अन्यापोह सर्वथा शब्दका अर्थ नहीं है, यह जो आपत्ति दे रहे हो सो यह तो आपत्ति नहीं है, सिद्धसाधन है। अन्य साधन वचन भी अन्यापोहके विषयभूत माने गए हैं। जैसे यह

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधन त्रैरूप्य लक्षण वाला है तो यह सिद्ध हुआ कि पांचरूप्य लक्षणवाला नहीं है।

विवक्षित विधिका कथन न करनेसे साधनवचनकी अनर्थकता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान -उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि वहाँ भी अपने विषयकी विधिकी कहाँ अपेक्षा की गई ? वह साधन वचन भी अन्यापोह मात्रका अर्थ कहने वाला हुआ। और कहा भी है क्षणिकवादके सिद्धान्तमें कि शब्द और लिङ्गके द्वारा अपोह कहा जाता है वस्तु नहीं अर्थात् वहाँ विधि कथन नहीं है। तो साधन वचनके द्वारा नित्यत्वका व्यवच्छेद कर दिया या नित्यत्वमें जो कुछ शंकायें होती थी उनका व्यवच्छेद कर दिया और स्वलक्षणकी अनित्यता सिद्ध कर नहीं रहे तो साधन का कहना अनर्थक हो जायगा याने कोई हेतु बोला—अब वह हेतु भी सीधा साध्यके विषयको सिद्ध करने वाला नहीं है। जैसे कि सत् है वह सब क्षणिक है सत् होने से। तो यहाँ जो हेतु बताया गया है उस हेतुने तो नित्यत्वका अपोह किया। क्षणिक है, ऐसा साध्य तो बनाया, पर क्षणिकत्व नहीं जाना, क्योंकि क्षणिकत्व है स्वलक्षण और प्रतिज्ञा यह है कि शब्द अन्यापोहको कहते हैं तो उस हेतुने नित्यत्वके हटावको कहा। तो भले हो नित्यत्वका हटाव बता दिया, पर अनित्यत्वकी बुद्धि जब वह नहीं कर रहा, वह हेतु वचन स्वलक्षणकी सिद्धि नहीं कर रहा तो अन्यापोह बता देनेपर भी जब स्वलक्षण सिद्ध न हो सका तो हेतुका कहना अनर्थक हो जायगा। शब्द तो होता है परार्थानुमान रूप याने अनुमान प्रयोग होता है दो ढगोंसे एक तो स्वयंके समझनेके लिए और एक दूसरोंको समझानेके लिए। तो शब्दकी जो परिणति होती है वह दूसरोंको समझानेके लिए होती है और स्वयंको समझानेके लिए जो अनुमान ज्ञान होता है वह तो विकल्परूप होता है। तो शब्द होता है परार्थानुमावरूप और विकल्प होता है स्वार्थानुमान ज्ञानरूप तो उन दोनोंका सर्वथा अन्यापोह अर्थ ही है यह कहना युक्तिसंगत नहीं है।

स्वविषयविधिका कथन होनेसे सर्वथा अन्यापोह अर्थके समर्थनकी असंगतता—शंकाकार कहता है कि देखिये—जो सत् हैं वे सब अनित्य हैं। क्योंकि नित्य पदार्थमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया सम्भव है और न एक साथ अर्थक्रिया सम्भव है। इस साधन वचनके द्वारा नित्यत्वका जो व्यवच्छेद किया। कोई नित्यपनेका विकल्प कर कहा हो उसका निराकरण किया तो यही तो स्वलक्षणकी अनित्यताकी सिद्धि कहलाती है। इस कारणसे साधनवचन अनर्थक न कहलायेंगे। यद्यपि उस साधन वचनने शब्दने सिद्धान्तके अनुसार नित्यत्वका ही निराकरण किया उसीका नाम स्वलक्षणकी अनित्यका सिद्ध करना कहलाता है। इस कारण हेतुका कहना अनर्थक नहीं है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तब फिर यह बात कहाँ रही कि शब्दका सर्वथा अन्यापोह ही विषय है क्योंकि अब तो स्वलक्षणके क्षणिकपनेका भी विधान कर दिया गया। क्योंकि शब्दका विषय वहाँ स्वलक्षणकी क्षणिकता मान ली गई है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे कि स्वयं ही कहा है कि साधन वचनके द्वारा नित्यत्वका निराकरण कर देनेका ही नाम स्वलक्षणकी अनित्यताकी सिद्धि है। तब यहाँ दोनों ही बातें आयेंगी कि स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है।

स्वलक्षण और सामान्यमें एकत्वका अध्यवसाय होनेसे अर्थकी क्षणिकताकी विधिमें भी अन्यापोहके समर्थनकी शंका और उसका निराकरण— शंकाकार कहता है कि दो प्रकारके विषय हैं—दृश्य और विकल्प जो दर्शनके विषयभूत हैं वे तो दृश्य कहलाते हैं। जिनका निराकार प्रतिभास है। साक्षात् प्रत्यक्षभूत है वह तो दृश्य है और जो सविकल्प ज्ञान द्वारा विषयभूत होता है वह विकल्प कहलाता है। तो दृश्यका नाम है स्वलक्षण और विकल्पका नाम है सामान्य। जो निराकार दर्शनका विषय है वह है स्वलक्षण और जो सविकल्पज्ञानका निश्चय करने वाले ज्ञान का विषय है वह सामान्य है। तो इसमें एकत्वका अध्यवसाय है जीवोंको इस कारण से जो अन्यापोह जाना जा रहा है उससे अर्थक्षणका, क्षणक्षयका विधान सिद्ध हो जाता है वहाँ समर्थित हुआ है अन्यापोह ही। वहाँ स्वलक्षणरूपमें विधि नहीं बनती, अन्यापोह है इस तरहकी विधि बनी, क्योंकि विकल्प और शब्द ये दोनों वस्तु स्पर्श नहीं कर सकते। वस्तुका स्पर्श करने वाला तो दर्शन अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्ष है। इस कारण यह कहना कि अब तो साधन वचन द्वारा स्वलक्षणके क्षणिकत्वकी विधि बन गई सो विधि नहीं बनी। वह तो अन्यापोहकी विधि है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि देखिये—स्वलक्षण और सामान्यका जो एकत्व मान रहा है समझ रहा है, ऐसे विकल्पके द्वारा स्वलक्षणका ग्रहण कहाँ हुआ ? और जिसका ग्रहण न हुआ ऐसा जो अगृहीत स्वलक्षण है उसके साथ सामान्यका एकत्व माना ही नहीं जा सकता है अन्यथा अर्थात् अगृहीतके साथ सामान्यका एकत्व मान लिया जाय तब तो जो सूक्ष्म हैं या बहुत अतीत कालमें हो गए हैं या अत्यन्त दूर मेरु आदिक हैं उन पदार्थोंके साथ भी एकत्वका अध्यवसाय हो जाना चाहिए। तो यों स्वलक्षण और सामान्यमें एकत्वका अध्यवसाय ही सम्भव नहीं है।

मिथ्याध्यवसायसे तत्त्वव्यवस्थापनकी अशक्यता— शंकाकार कहता है कि प्रत्यक्षसे प्रमाणित सिद्ध किया गया है स्वलक्षण, उसके साथ सामान्यका एकत्व समझ लिया जायगा तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह वो विकल्प और शब्दको जब वस्तुका स्पर्श नहीं मानते अर्थात् न विकल्प वस्तुका स्पर्श कर सकते हैं और न शब्द ही उस वस्तुत्वका स्पर्श कर सकते हैं तब तो स्वलक्षणका जो दर्शन है वह तो अकृत निर्णय है याने निर्णय न हो सका। निर्णय सामान्यका माना गया है। जब अकृत निर्णय पड़ा रहा तो वस्तुकी सन्निधिकी अविशेषता होनेके कारण अर्थात् जब उसका निर्णय न हो सका तो वहाँ कहा भी कैसे जायगा कि किसके द्वारा कौन जाना गया है, कौन प्रमाण किया गया है। जो मिथ्या विकल्प है उसके द्वारा तत्त्वकी व्य-

Version 1

वस्था नहीं बना करती। तो यहाँ क्षणिकका तो प्रत्यक्षने दर्शन किया और उस दर्शन के सम्बन्धमें निर्णय ज्ञानको साक्षात् प्रमाण माना नहीं तो ऐसी स्थितिमें जो सविकल्प ज्ञान होता है। जिससे कि तत्त्वका निर्णय माना जाता है वह सब है मिथ्या। और मिथ्या विकल्पके द्वारा तत्त्वकी व्यवस्था बनायी नहीं जा सकती। यदि मिथ्या अध्यवसायसे तत्त्वकी व्यवस्था बनायी जाने लगे तब फिर संशय और विपर्यय ज्ञानको उत्पन्न करने वाले दर्शनके द्वारा भी स्वलक्षणका ज्ञान होनेका प्रसंग आ जायगा। क्षणिकवादमें सर्वप्रथम निराकार दर्शन होता है। अर्थात् वस्तुके स्वलक्षणका प्रतिभास होता है और वह दर्शन प्रमाण ज्ञानको उत्पन्न करने वाला है। उस विकल्प ज्ञानसे दर्शनके विषयका निर्णय होता है। तो निर्णयको उत्पन्न करने वाले दर्शनकी प्रमाणता मानी जाती है। किन्तु अब तो यहाँ बताया गया था कि विकल्प और शब्द ये दोनों वस्तुका स्पर्श नहीं करते तब स्व लक्षणका दर्शन करने वाले निर्विकल्प प्रत्यक्षमें तो निर्णय खुद पड़ा हुआ नहीं है और निर्णय करने वाले विकल्प ज्ञानको बताया है कि यह वस्तुका स्पर्श करता नहीं तब दर्शनके कालमें वस्तुका निर्णय है नहीं। भले ही माना गया हो कि वस्तुका सामान्य प्रतिभास है पर जहाँ निर्णय नहीं है। प्रतिभास भी हो जाय तो वस्तु तो इस प्रकारसे ही है जिस प्रकारसे पासमें रखी है। तो वस्तु पासमें रही, पर निर्णय तो नहीं ऐसे ही सविकल्प ज्ञानके समय भी वस्तु पासमें है, पर स्पर्श नहीं। तो वस्तुकी निकटता दोनों जगह समान है फिर वहाँ यह निर्णय तो न बना कि निर्विकल्प दर्शनसे या किससे कौन प्रमित किया जाता, जाना जाता ? और, जब प्रमाण न बना तो वे मिथ्या अध्यवसाय ठहरे और मिथ्या अध्यवसायसे तत्त्वकी व्यवस्था बनायी जाने लगे तो संशय, विपर्यय ज्ञानको उत्पन्न करने वाले निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा भी स्वलक्षण प्रमेय हो जाना चाहिए यहां शंकाकार कहे कि स्वलक्षण दर्शन व मिथ्याध्यवसायमें वस्तुका स्पर्श तो नहीं होता तो वस्तु स्पर्शके अभावमें तो दोनों जगह समानता है। अर्थात् जो दर्शन संशयको उत्पन्न करे, और जो निर्णयको उत्पन्न करे, दोनों जगह वस्तु सन्निधिकी समानता है। फिर भी निर्णयको उत्पन्न करने वाला दर्शन तो प्रमाण माना जाय और संशय आदिकको उत्पन्न करने वाला दर्शन प्रमाण न माना जाय ऐसा यदि कोई कहता है तो स्पष्ट सिद्ध है कि उसको अपनी जानकारी कुछ नहीं है।

निर्णयजनक दर्शनमें प्रमाणत्वकी सिद्धिका व संशयादिजनक दर्शनमें अप्रमाणत्वकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा प्रयास—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि निर्णयके द्वारा दर्शनके विषयमें हो सकने वाले समारोपका व्यवच्छेद हो जाता है अर्थात् दर्शनका विषय है नीलादिक स्वलक्षण। जैसे कि क्षणिक निरंश अर्थ है वे सब हैं दर्शनके विषयभूत अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्षके विषयभूत। अब उनमें संशय, विपर्यय आदिक समारोप जो हो सकते हैं उसका निराकरण किया निर्णयने। अतएव निर्णयको उत्पन्न करने वाला दर्शन प्रमाण है, पर संशय आदिको उत्पन्न करने वाला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दर्शन प्रमाण नहीं होता, क्योंकि संशय आदिक ज्ञानोंके द्वारा दर्शनके विषयका समारोप नष्ट नहीं हो जाता है। जहां समारोप नहीं है ऐसे नील स्वलक्षणके दर्शनकी प्रमाणता है और जहां समारोप भरा हो उस अंशमें तो दर्शनकी प्रमाणता नहीं है। किसी भी नीलादिक पदार्थके देखे जानेपर भी जो ज्ञान सामान्य अर्थको विषय करने वाला सविकल्प है वह ज्ञान है और जो समारोपसे अयुक्त अर्थात् विवक्षित अन्य अंशमें जो ज्ञान होता है वह तो केवल अन्यापोहके रूपसे होता है याने अक्षणिकसे हटा हुआ है इस तरहका ज्ञान होता है ऐसा कहा गया है। इस कारणसे यह उपालम्भ नहीं दिया जा सकता कि वस्तुका स्पर्श नहीं है। इसकी समानता होनेपर भी निर्णयके जनक दर्शनको प्रमाण माना जाय यह न्याय नहीं है ऐसा उपालम्भ नहीं दिया जा सकता। जो समारोपका निराकरण करे उसका जो जनक दर्शन है वह प्रमाण है जो समारोपको दूर नहीं कर सकता ऐसे संशय आदिक ज्ञानको उत्पन्न करने वाले दर्शनमें विषयमें प्रमाणरूपता नहीं है।

समारोपव्यवच्छेदक विकल्पके स्वसंवेदनकी व्यवस्था बनानेमें अनवस्था व इतरेतराश्रय दोषकी आपत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान— उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि समारोपका निराकरण करने वाला जो विकल्प है उस विकल्पमें जो स्वसम्वेदन है, व्यवस्था बनी हुई है तो उस स्वसम्वेदनमें जो स्व लक्षण विषय हुआ उसका निर्णय बनानेके लिए फिर अन्य विकल्पकी उपेक्षा करनी पड़ेगी क्योंकि वहां तो जिस तरह नील आदिक स्वलक्षणका दर्शन अपने स्वरूपकी व्यवस्था करनेमें समर्थ नहीं है। इसी कारणसे सविकल्प ज्ञानकी आवश्यकता हुई अर्थात् विकल्पान्तर करना पड़ा। ऐसे ही समारोपका निराकरण करने वाला जो विकल्प है उस विकल्पके निज स्वरूपकी तो व्यवस्था बनानी पड़ेगी। उस विकल्पके निज स्वरूपकी व्यवस्था बनानेके लिए अन्य विकल्प होना चाहिए। इस तरह विकल्प में स्वसम्वेदनमें चूंकि विकल्प नहीं है तब निर्विकल्पताकी समानता होनेसे जैसे नील आदिक पदार्थोंमें विकल्प नहीं, दर्शनमें विकल्प न हों तो विकल्प स्वरूपमें भी विकल्प नहीं। अतएव अन्य अन्य विकल्पोंसे सिद्धि बनानी होगी और वहां अनवस्था दोष आयगा। और भी देखिये नीलादिकका दर्शन अर्थात् प्रत्यक्षज्ञान और समारोपका व्यवच्छेद अर्थात् सविकल्पज्ञान इन दोनोंमें किसी एकका स्वतः स्वरूप सम्पूर्ण नहीं बनता। ऐसी स्थितिमें इतरेतराश्रय दोष होगा अर्थात् वस्तु दर्शनकी सम्पूर्णता बनने पर समारोप व्यवच्छेद बने और समारोप व्यवच्छेदकी सिद्धि होनेपर वस्तु दर्शनमें प्रमाणता आये इस तरह इतरेतराश्रय दोष होगा।

समारोपव्योवच्छेदक निर्णयके स्वसंवेदनकी व्यवस्थामें आपतित अनवस्था व इतरेतराश्रय दोषका विवरण— अब उक्त प्रसंगको विवरणके साथ सुनिये देखिये समारोप जिस ज्ञानके द्वारा नष्ट किया जाता है उसको कहते हैं निश्चय।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समारोपका अर्थ है क्षणिकवादियोंकी मान्यताके अनुसार कि वस्तु तो है क्षणिक और उसमें नित्यका प्रतिभास होवे चिरकाल तक रह रहा है पदार्थ ऐसा जो कुछ मालूमात हो रहा है वह कहलाता है समारोप, याने वस्तुका सही स्वरूप नहीं किन्तु मिथ्यारूप। ऐसा समारोप जिस ज्ञानके द्वारा दूर किया जाता है उसको कहते हैं विकल्प, निश्चय, निर्णय। तो अब यहाँ देखिये कि स्वरूपका निश्चय न करते हुए भी यह विकल्प यदि अपने आपके स्वरूपको बनादे, निर्णीत करदे, उसको सम्पूर्ण बना ले तो इसी प्रकार वस्तु दर्शन भी अपने स्वरूपको निश्चय न करता हुआ स्वयं प्रमाण करले फिर निर्विकल्प प्रत्यक्षके विषयके निर्णयके लिए सविकल्प ज्ञानकी जरूरत क्यों बनाते हो? यदि वस्तु दर्शन याने पदार्थके स्वलक्षणका प्रतिभासका निश्चयकी अपेक्षा पड़ी अर्थात् सविकल्प ज्ञानसे उसकी प्रमाणता समझी गई तो अब उस विकल्प के स्वरूप सम्वेदनको भी अन्य विकल्पकी अपेक्षा करनी पड़ेगी? तब अनवस्था दोष होगा और यदि ऐसा मान लोगे कि विकल्पसे तो वस्तु दर्शनकी रचना बनती है। उसका अंतिमरूप बनता है और वस्तु दर्शनसे निश्चयके स्वरूपका परिनिष्ठापन होता है अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्षसे सविकल्प ज्ञानके स्वरूपका निर्माण होता है तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आ जाता है।

अन्यापोह अर्थकी शब्दावाच्यता व विकल्पाविषयता—उक्त विवेचनसे सिद्ध हुआ कि विकल्पकी तरह शब्दका भी सर्वथा अन्यापोह अर्थ नहीं है। जैसे सविकल्पज्ञानका विषय क्षणिकवादी यह कहते थे कि वह तो अन्यापोहको सिद्ध करता है। जैसे गाय कहा तो इस विकल्पज्ञानका विषय है अगो व्यावृत्ति, लेकिन यह बात अब सिद्ध नहीं हो सकती। अगोव्यावृत्तिका ज्ञान गौके स्वरूपके ज्ञानका अविनाभावी है। गायसे भिन्न परपदार्थका अभाव ऐसा समझनेमें गायको विधिरूपसे तो उसने पहिले ही समझ रखा तब तो यह ज्ञानमें आ पायगा कि गायके स्वरूपसे भिन्न अन्य पदार्थों का यहां अभाव है। तो लो सविकल्प ज्ञानका विषय सर्वथा अन्यापोह न रह सका। इसी तरह शब्दका भी विषय सर्वथा अन्यापोह नहीं बनता। यों शब्दके द्वारा स्व लक्षण भी वाच्य नहीं बन सकता और शब्दका जो अन्यापोह वाच्य माना है सो सर्वथा अन्यापोह वाच्य नहीं हुआ करता। वहाँ वस्तुमें विधि पड़ी हुई है। गायको निरखकर यह गाय है यह ज्ञान बनता है और वहां ही साथ ही साथ यह भी ज्ञान बन रहा है कि गायको छोड़कर अन्य पदार्थ यह नहीं है। तो यहाँ तक यह निर्णय किया गया कि सविकल्प ज्ञानका विषय सर्वथा अन्यापोह नहीं है और शब्दका भी विषय सर्वथा अन्यापोह नहीं है।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे व्यवस्थाकी व प्रवृत्तिकी असंगतता– उक्त विवरणके द्वारा यह भी निराकृत हो जाता है कि असत् कार्यकारण व्यावृत्ति एकत्व का स्पर्श करने वाले ज्ञानसे एक अर्थके साधनमें कारण होता है। पर वस्तुतः है उन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

में यह भेद। ऐसा जो कथन है वह भी खण्डित हो जाता है याने केवल कोई व्यावृत्ति ही किसी ज्ञानका या शब्दका विषय हो यह भी सिद्ध नहीं हो सकता है। विशेष समान परिणामसे रहित खण्ड मुण्ड आदिक पदार्थ ही एकत्वका विचार उपचार करने से एक अर्थकी सिद्धिमें कारण होता है ऐसा कहनेमे हेतु देते हैं अतत्कार्य कारणसे व्यावृत्त होनेसे। और, दृष्टान्त देते हैं कि जैसे गुरमें आदिक अनेक वस्तुओंको मिलाकर जो काढ़ा औषधि बनायी जाती है तो उसे एक औषधि बोलते हैं और वह ज्वरके शान्त करनेमें कारण पड़ती है तो वहाँ भी है क्या? जितनी उसमें औषधि मिलाई गई है वे सब भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं, और उन सब भिन्न–भिन्न पदार्थोंमें एकत्वका अध्यवसाय किया गया है और इसी कारण वे सब पदार्थ एक ज्वरके शान्त करनेमें कारण बन जाते हैं यों ही ऐसा भेद होनेपर भी अतत्कार्य कारण व्यावृत्तिके रूपसे एकका विचार चलता है और एक अर्थको सिद्ध करनेमे कारण बनता है ऐसा कहने वाला यह क्षणिकवादी अपने सिद्धान्तको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि अतत् कार्यकारण व्यावृत्ति नहीं बनती है यह कार्य है, यह कारण है इस तरहसे विधि न मानकर यह अतत्कार्य व्यावृत्ति है मायने उसका कार्य नहीं है जो जो उन सबसे हटा हुआ है और अतत् कारण व्यावृत्ति है याने इसका कारण नहीं है। जो जो उन सबसे हटा हुआ है, ऐसी व्यावृत्तिसे वस्तुमें प्रवृत्ति नहीं हुआ करती तो संकेतको न समझने वाला कोई पुरुष किसी भी पदार्थमें अन्वय बुद्धि और शब्दका व्यवहार करेगा तो वह उलटा भी व्यवहार कर सकता है। जब शब्दने सीधा पदार्थको विषय किया नहीं किन्तु व्यावृत्तिको विषय किया। तो जब स्वरूप सत्त्व समझमें न आया तो किसी भी पदार्थको किसी भी शब्दसे समझ लेगा और वहाँ व्यावृत्ति मान लेगा। तो यों पदार्थ और उसका संकेतकरण इन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध न बननेसे सब व्यवहारोंका लोप हो जायगा।

अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिसे व्यवस्था बनानेके लिये प्रदत्त उदाहरणसे शङ्काकारके अभीष्ट सिद्धान्तका विघात —अतत्कार्य कारण व्यावृत्तिकी व्यवस्था में जो गुरमे आदिक औषधियोंका उदाहरण दिया है उस उदाहरणमें तो शंकाकारके सिद्धान्तके विरुद्ध तत्त्व सिद्ध हो जाता है अर्थात् औषधिमें जितनी भी वस्तुएँ पड़ी हैं उन सब वस्तुओंमें वास्तविक प्रयोजन साधक सदृशताका परिणाम पड़ा है। जैसे ज्वर को शान्त करने वाला जो गुरमे काढ़ा है तो उस काढ़ामें सोंठ आदिक अनेक औषधियां डाली जाती हैं तो जितनी औषधियाँ डाली गई हैं उन सबमें ज्वरको शान्त करने वाली शक्ति पड़ी हुई है। तो इससे सदृश परिणाम सिद्ध होता है, किन्तु क्षणिकवादमें सदृश परिणाम माने नहीं गए हैं। तो यह उदाहरण तो और उलटा बैठता है शंकाकारके लिए। देखिये! यदि उन सब दवाइयोंमें ज्वरको शान्त करनेकी शक्तिका समान परिणाम न माना जाय तो यह व्यवस्था कैसे बनायी जा सकती है कि गुरमे आदिक तो ज्वरको शान्त करनेके कारण हैं और दही ककड़ी आदिक ज्वरको शान्त

http://sahjanandvarnishastra.org/

करनेके कारणभूत नहीं हैं, जब कि ज्वरको शान्त करने वाले काढ़ेमें पड़ी हुई औषधियोंमें ज्वरको उपशमनेकी शक्तिका समान परिणाम न माना तो कुछ भी चीज ज्वरको शान्त कर बैठेगी, अव्यवस्था बन जायगी। अथवा दूसरा उदाहरण सुनो! चक्षु आदिक इन्द्रियमें यदि रूप आदिक ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिका समान परिणाम नहीं माना जाता तो वहाँ भी यह व्यवस्था कैसे बनाई जा सकती है कि चक्षु आदिक रूप ज्ञानके कारणभूत हैं और रसना आदिक रूपज्ञानके कारणभूत नहीं हैं। यह व्यवस्था सम्भव नहीं हो सकती है। अतः मानना पड़ेगा कि वहाँ कार्यकारण भाव है। और, उस तरहकी सर्व घटनाओंमें समान परिणाम है।

अतत्कार्यकारण व्यावृत्तिसे कार्यकारणव्यवस्था बनानेका शंकाकार का निष्फल प्रयास—शंकाकार कहता है कि यह जो व्यवस्था बनायी जाती है कि चक्षु आदिक ही रूप ज्ञानके कारणभूत हैं रसना आदिक नहीं हैं, गुरमें आदिक ही ज्वरको शान्त करनेके कारणभूत हैं, दही आदिक नहीं हैं, यह व्यवस्था अतत्कार्य कारणव्यावृत्तिके कारण बन जायगी। याने जो उसका कार्य नहीं है उसकी व्यावृत्ति हुई, जो उसका कारण नहीं है उसकी व्यावृत्ति हुई. उससे यह सब व्यवस्था बन जायगी। जैसे कहा जा रहा है कि कार्य और कारणकी वृत्तिसे यह व्यवस्था बन रही है। जैसे चक्षुका कार्य रूपज्ञान है और रूपज्ञानका कारण चक्षु आदिक है तो जैसे इस तरह व्यवस्था बनानेकी सोची जा रही है सो तो व्यवस्था बनानेकी सोची जा रही है सो भी व्यवस्था न बनेगी किन्तु अतत्कार्यकारण व्यावृत्तिसे वह व्यवस्था बनेगी। शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात कैसे सिद्ध कर लेंगे कि अमुक पदार्थोंमें अतत् कार्य कारण व्यावृत्ति है अर्थात् कार्यसे भिन्नकी व्यावृत्ति याने जो कार्य नहीं है चक्षु आदिकके उनको हटाव। और जो रूपज्ञानके कारण नहीं हैं उनका निषेध, यह बात हम कैसे समझ लेंगे जब कि कारण कार्य और अन्य जनक शक्ति जैसे समान परिणामका अभाव मान रहे हो यह उसका कारण है, यह उसका कार्य है इस कारणमें अमुक कार्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति है इस कार्यमें अमुक कारणके द्वारा उत्पन्न हो जानेकी शक्ति है ऐसा सदृश परिणाम विधि वचन न माननेपर यह भी कैसे सिद्ध कर सकेंगे कि अमुक पदार्थमें अतत् कार्यकारण व्यावृत्ति है? नहीं सिद्ध किया जा सकता। तो अतत्कार्यकारण व्यावृत्तिको सिद्ध करनेके लिए तत्कार्यकारण शक्तिका समान परिणाम मानना होगा। जैसे कि यह घड़ा है, कपड़ा आदिक नहीं है। तो यहाँ दो बातें कही जा रहीं ना, घट है, अघट व्यावृत्ति है। तो अघट व्यावृत्तिकी बात तो तब ही समझमें आ सकती है जब कि घट है यह समझमें पड़ा हो। घटको छोड़कर अन्य कुछ नहीं है ऐसा ज्ञान घटके ज्ञानपर आधारित है। ऐसे ही अतत् कार्यकारण व्यावृत्तिका परिचय तत्कार्य कारणकी शक्तिका परिज्ञान होनेपर निर्भर है। इस तरह यह बात सिद्ध हो जाती है कि जो उदाहरण दिया गया है इस प्रसंगमें यह जो कुछ भी ज्ञान बना रहा है वह वहाँ उसे समान परिणाम हेतुक सिद्ध कर रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है तभी तो देखिये कि अनेक प्रकारके घोड़ोंमें यह घोड़ा है इस प्रकारका जो ज्ञान बन रहा है वह सब घोड़ोंमें जो अश्वपनेका समान परिणमन है उसके कारण ही तो बन रहा है उस समान परिणामका खण्डन नहीं किया जा सकता है। तो इस तरह अन्यापोहवादियोंको उदाहरण विपरीत बातका ही सिद्ध करने वाला है।

परमतापेक्षया अन्तिम तीन भंगकी व्यवस्थाका उपसंहार– उक्त परामर्शके अनुसार मानना होगा कि अन्यापोहवादियोका यह अन्यापोह सामान्य असद वक्तव्य ही है। इस विवरणसे इन्हीं अन्यापोहवादियोंकी यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि तत्त्व वहाँ दो प्रसंगोंमें आया ना, स्वलक्षण और अन्यापोह। स्वलक्षणको तो सत् माना है, अन्यापोहको असत् माना है। यद्यपि सविकल्प ज्ञानके द्वारा अन्यापोह समझा जारहा है और सविकल्प ज्ञानको ही निर्णायक माना है फिर भी अन्यापोहको असत् कहा है और स्वलक्षणको निर्विकल्प प्रत्यक्षमें आये हुए प्रतिभासको सत् माना है। तो यों स्वलक्षण और अन्यापोह इनका जोड़ा इनकी बात सत् असत् अवक्तव्य ही है, ऐसे इन निरंशवादियोंके यहां भङ्ग उत्पन्न हो ही जाते हैं, क्योंकि स्वलक्षणको तो माना है सत् और अन्यापोहको माना है असत् तो सत् होकर भी स्वलक्षण और असत् होकर भी अन्यापोह कहा जानेके लिये अशक्य है। यह जो एक कुछ लम्बा सा प्रकरण चला आ या है तो इस प्रकरणमें यह बात सिद्ध की गई कि अंतिम जो तीन भंग हैं—सत् अवक्तव्य, असत् अवक्तव्य और सत् असत् अवक्तव्य, ये परमतकी अपेक्षासे भी निर्दिष्ट किए गए हैं अथवा उदाहरणमें लिए गए हैं।

अस्तित्वको ही वस्तुस्वरूप मानने वाले अद्वैतवादियोंकी आशंका और उसके समाधानका उपक्रम—अब यहाँ अद्वैतवादी शंकाकार कह रहा है कि इस सप्तभङ्गीमें जो वस्तुका स्वरूप अस्तित्व और नास्तित्व सिद्ध किया जा रहा है सो यह अस्तित्व और नास्तित्व सिद्ध किया जा रहा है सो यह अस्तित्व ही वस्तुका स्वरूप बनता है। नास्तित्व वस्तुका स्वरूप नहीं बनता, क्योंकि नास्तित्व तो पररूप के आश्रय है। कहा तो यही जा रहा है स्याद्वाद शासनमें कि वस्तु स्वरूपकी अपेक्षा से सत् है और पररूपकी अपेक्षासे असत् है और असत्त्व पररूपके सहारे ही तो सिद्ध किया जा रहा है तो जो पररूपके सहारे हो वह वस्तुका स्वरूप नहीं बन सकता। यदि पररूपके सहारे रहने वाले धर्म वस्तुके स्वरूप बन जायें तो इसमें बहुत बड़ी विडम्बना बन जायगी पररूपमें भी तो नास्तित्व धर्म है जैसे विवक्षित पदार्थमें अस्तित्व और नास्तित्व सिद्ध कर रहे हैं और पररूपकी अपेक्षासे नास्तित्व सिद्ध कर रहे हैं तो उस पररूपमें भी तो अस्तित्व और नास्तित्व धर्म बताओगे तो पररूपका जो नास्तित्व है पररूपके सहारे रहने वाला जो असत्त्व है, वह भी विवक्षित वस्तुका स्वरूप बन बैठेगा। तो पररूपमें जो नास्तित्व है वह इस विवक्षितका नास्तित्व है और वह मान लिया विवक्षित वस्तुका धर्म तो इसका भी अभाव हो गया। एवं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शून्य हो गया फिर कुछ सत्त्व ही न रहेगा। अतः वस्तुका स्वरूप अस्तित्व ही मानना चाहिए, नास्तित्व नहीं, ऐसा कहने वाले अद्वैतवादियोंके प्रति अब आचार्य समन्त भद्र महाराज निम्नलिखित कारिकामें समाधान दे रहे हैं।

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥१७॥

अस्तित्वकी नास्तित्वके साथ अविनाभाविता—अस्तित्व प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है और वह है एक धर्मीमें अर्थात् एक वस्तुमें जो अस्तित्व विदित किया जा रहा है वह नास्तित्वके साथ अविनाभावी है अर्थात् उसमें अस्तित्व है तो नास्तित्व भी है क्योंकि विशेषण होनेसे। अस्तित्व वस्तुकी विशेषता बता रहे हैं, तो विशेषणपना होनेसे यह भी सिद्ध होगा कि उसमें अन्य प्रकारका नास्तित्व भी है। जैसे कि अनुमान प्रयोगमें जो हेतु दिये जाते हैं उन हेतुओंका साधर्म्य होता है तो वह साधर्म्य वैधर्म्यका अविनाभावी है, अर्थात् हेतुके सपक्षसत्त्व बताया करते हैं कि यह हेतु सपक्षमें रहता है और साध्य भी उस सपक्षमें रह रहा है। तो जहां सपक्षसत्त्वकी सिद्धि करके हेतुको निर्दोष कहा जाता है वहाँ विपक्ष व्यावृत्ति कहकर भी हेतुको निर्दोष बताना पड़ेगा। तो वहाँ साधर्म्य वैधर्म्यका अविनाभावी बन गया। तो अस्तित्व और नास्तित्वकी बात एकधर्मीमें सिद्ध करना चाहिए। जैसे एक जीव पदार्थमें अस्तित्व नास्तित्वको सिद्ध किया जा रहा है तो धर्मी है वह जीव। जीव स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है। तो जीवमें जो अस्तित्व धर्म बताया जा रहा है वह प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है अस्तित्वका प्रतिषेध्य हुआ नास्तित्व, नास्तित्व है तब अस्तित्व है। यह बात भिन्न अधिकरणमें नहीं बताना है, एक वस्तुमें बताना है। तो यों अस्तित्व नास्तित्वके साथ अविनाभावी है विशेषणपना होनेसे। अस्तित्व नास्तित्वके साथ अविनाभावी है इसकी सिद्धिमें प्रवृत्त दृष्टान्तको सुनिये जैसे हेतुमें साधर्म्य बताया जाता है तो वह वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है। सभी हेतुवादी दार्शनिक किसी भी अनुमान प्रयोगमें साधर्म्य और वैधर्म्य दोनोंमें सत्त्व असत्त्व घटित करके अनुमानको सिद्ध किया करते हैं। तो यही बात सिद्ध हुई ना कि हेतु प्रयोगमें साधर्म्यकी व वैधर्म्यकी बात बतायी जाती है। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें हेतु है और साध्य भी उसके साथ है। ऐसा भी दृष्टान्त दिखाना होता है कि जहाँ हेतु भी नहीं, साध्य भी नहीं। तो अनुमान प्रयोगमें साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी सिद्ध हो ही जाता है।

साधर्म्यकी वैधर्म्यके साथ अविनाभावितामें शंका और उसका समाधान—अब यहां शंकाकार कहता है कि जिस समय समस्त वस्तुवोंको नित्य अथवा अनित्य सिद्ध किया जा रहा हो तो वहाँ पक्षमें सभी पदार्थ आ गए। तो वहां साधर्म्य व्यतिरेकका अविनाभावी तो न मिल सका। व्यतिरेक ही असम्भव है। सबको छोड़

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर अन्य और कुछ मिलेगा। क्या उदाहरण देनेके लिए जिसको कि विपक्ष बताया जा सके। इस कारण यह उदाहरण देना सही नहीं है कि जैसे साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है इसी प्रकार अस्तित्व नास्तित्वसे अविनाभावी है, इस शंकाके समाधान में कहते हैं कि यह शंका करना संगत नहीं है कि सर्व पदार्थोंको नित्य या अनित्य आदिक सिद्ध करते समय वैधर्म्य न मिलेगा। देखिये उस अनुमान प्रयोगमें भी अथवा केवल न्वयी हेतुमें भी साधर्म्य और वैधर्म्य दोनोंका सद्भाव सिद्ध हो सकता है। जैसे कि अनुमान प्रयोग किया कि सर्व नित्य है प्रमेय होनेसे या यह प्रयोग करें कि सब अनित्य है प्रमेय होनेसे। तो प्रमेयत्वात् इस हेतुके कहनेमें भी व्यतिरेक है ही है। क्योंकि प्रमेयपना वस्तुधर्म है। उसका प्रयोग बोलकर जो सिद्ध करना चाहेंगे उसको व्यतिरेक पद्धति मदद करने वाली होगी ही। कैसा भी अनुमान प्रयोग हो जीव परिणामी है या शब्दादिक अपरिणामी नहीं है। सर्व चेतन हैं, अथवा सर्व अचेतन हैं। जिस किसी भी प्रतिज्ञाको किया जाय, जिस दार्शनिकको जो भी प्रतिज्ञा इष्ट हो उस प्रतिज्ञाको करके अर्थात् पक्ष और साध्य बोलकर जो हेतु दिया जा रहा है कि प्रमेय होनेसे सत्त्व होनेसे वस्तुत्व होनेसे या अर्थक्रियाकारी होनेसे जो कुछ भी हेतु दिये जा रहे हैं वहाँपर भी वैधर्म्य मिलेगा।

हेतु प्रयोगमें साधर्म्यके साथ वैधर्म्यकी अविनाभाविताका उदाहरणमें स्पष्टीकरण—जब अनुमान प्रयोग इस प्रकार होगा कि सर्व अनित्य है प्रमेय होनेसे। जो जो प्रमेय है वे वे अनित्य हैं। जैसे दृश्यमान सर्व पदार्थ। और, जो अनित्य नहीं हैं वे प्रमेय भी नहीं हैं अथवा जिस दार्शनिकने जिस प्रकारका भी हेतु दिया हो वहाँ वैधर्म्य मिलेगा। क्या ? आकाश पुष्प, अथवा खरगोशके सींग। सर्व कुछ नित्य है प्रमेय होनेसे। जो नित्य नहीं है वह प्रमेय नहीं है जैसे आकाशका फूल। वह प्रमेय नहीं है तो नित्य भी नहीं है यों व्यतिरेक तो वहाँ मिल ही जाता है जैसे अन्वय और साधर्म्य सिद्ध होता है इसी प्रकार यह भी सिद्ध हो रहा है कि आकाश फूलमें खरगोशके सींगमें साध्यधर्म भी नहीं है और साधन धर्म भी नहीं है। अनुमान प्रयोग किया कि जीव अपरिणामी है प्रमेय होनेसे। जो जो प्रमेय होते हैं वे वे परिणामी होते हैं जैसे कि घट। और जो परिणामी नहीं होता है वह प्रमेय भी नहीं होता है—जैसे आकाश पुष्प। तो इस अनुमानमें वैधर्म्य मिल गया ना। इसी तरह सब परिणामी है प्रमेय होनेसे। इस अनुमानमें भी जो परिणामी नहीं है वह प्रमेय नहीं है। जैसे आकाश पुष्प तो ऐसा वैधर्म मिल गया ना तो सभी प्रकारके प्रयोगोंमें अन्वयव्यतिरेक अथवा साधर्म्य वैधर्म्य दोनोंकी सिद्धि होती है। अनुमान प्रयोगमें दो प्रकारके दार्शनिक हैं एक तो ५ अवयव मानने वाले याने पक्ष, और साध्यको कहनेका नाम है प्रतिज्ञा। एक तो दार्शनिक इस प्रतिज्ञाको मानने वाले हैं और दूसरे दार्शनिक वे हैं जो प्रतिज्ञा शब्दसे तो नहीं मानते किन्तु अभिप्राय है ऐसा कह–कहकर मानते हैं। तो किसी भी प्रकार मानें, बात एक ही है। अनुमान प्रयोगमें साधर्म्य और वैधर्म्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को बताना सबके लिए जरूरी है तो जो शंकाकारने यह शंका की थी कि सर्व पदार्थों को नित्यत्व अथवा अनित्यत्व सिद्ध करनेमें हेतु दिया जायगा वहाँ व्यतिरेकका अविनाभावी साधर्म्य नहीं है, सो ऐसा नहीं है। साधर्म्य तो है दृष्यमान सभी पदार्थ और वैधर्म्य है खपुष्पादिक। तो वहाँ व्यतिरेक है ही।

प्रमेय न होनेपर भी आकाश पुष्पके उदाहरण व्यवहारकी अविरुद्धता यहां कोई शंका कर सकता है कि आकाश पुष्प आदिक भी तो जब आकाश पुष्पादिक में यह आकाश पुष्प है या यों कहकर उदाहरण दिया जायगा तो वह प्रमेय तो हो ही गया यों आकाश पुष्पादिक भी प्रमेय मान लेना चाहिए, ऐसी आशंका करना व्यर्थ है। क्योंकि आकाश पुष्पकी प्रमिति करनेमें, सम्यक जानकारी करनेमें कोई प्रमाण नहीं है। कोई भी प्रमाण आकाशपुष्पका सद्‌भाव अथवा उसकी जानकारी सिद्ध नहीं करता। उसमें प्रमेयत्व धर्म ही नहीं है। जो प्रमेय हो वही तो प्रमाणका विषय बन सकता है। आकाशपुष्प प्रमेय है नहीं, उसकी जानकारीमें कोई प्रमाण ही नहीं। अन्यथा अर्थात् प्रमेय न होनेपर आकाशपुष्पमें सम्बन्धमें प्रमाण न होनेपर भी उसे यदि प्रमेय मान लिया जाय तो प्रमेयका अभाव भी प्रमेय बन बैठेगा। फिर यह व्यवस्था ही नहीं बन सकती है कि यह तो प्रमेय है और यह प्रमेयका अभाव है। इस प्रसंगमें यह भी आशंका न रखना चाहिए। तब तो आकाशपुष्प इस शब्दका कहना भी असंगत है। जब आकाश पुष्प प्रमेय नहीं है तो किस प्रकारसे उसे बुद्धिमें लायेंगे और उसे वचनों द्वारा कह सकेंगे? सो यह आशंका न रखिये। प्रमेय न होने पर भी उसका निर्देश करना विरुद्ध नहीं है। जैसे स्वयं क्षणिकवादियोंने कहा है कि स्वलक्षण निर्देश्यके योग्य नहीं है अर्थात् वचनों द्वारा कहा जा सकने योग्य नहीं है। तो यहाँ स्वलक्षण अनिर्देश्य है इस शब्द द्वारा तो निर्देश कर ही दिया गया है। यदि स्वलक्षण सर्वथा अनिर्देश्य हो तो अनिर्देश्य शब्द द्वारा उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। तो देखिये अनिर्देश्य होनेपर भी स्वलक्षणका अनिर्देश्य शब्दसे निर्देश तो कर लिया गया। तो जैसे स्वलक्षण अनिर्देश्य है ऐसा कहनेमें कोई विरोध नहीं है उसी प्रकार आकाश पुष्प है उदाहरण, ऐसा कहनेमें भी कोई विरोध नहीं आता। अथवा क्षणिकवादियोंका कहना है कि प्रत्यक्ष कल्पनासे रहित है। तो कल्पनासे रहित माना जानेपर भी प्रत्यक्षके सम्बन्धमें यह तो कल्पनाकी हो गई है कि वह कल्पनासे रहित है। कल्पनासे रहितपने रूपसे प्रत्यक्षको माननेकी बात जैसे विरुद्ध नहीं होती उसी प्रकार प्रमेय न होनेपर भी आकाश पुष्पका उदाहरण देनेकी बात विरुद्ध नहीं होती। यदि यों विरोध माना जाने लगे तो न अनिर्देश्यत्वका व्यवहार बनेगा और न कल्पना रहितपनेका व्यवहार बनेगा।

आकाशपुष्पको उदाहरणमें देनेकी अविरुद्धताका विवरण—जिस प्रकार क्षणिकवादियोंके यहाँ स्वलक्षण अनिर्देश्य है, ऐसा व्यवहार करते हुए निर्देश्य विरुद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं हो रहा है और प्रत्यक्ष कल्पनातीत होकर भी कल्पनातीत रूपसे कल्पना की जाना विरुद्ध नहीं हो रहा है इसी प्रकार आकाश पुष्प आदिक अप्रमेय हैं, ऐसा व्यवहार करने वाले जनोंके यहाँ भी ख पुष्प आदिकमें अप्रमेयता है, यह भी विरुद्ध सिद्ध नहीं होता अर्थात् अप्रमेयरूपसे व्यवहार बन रहा है और वे आकाश पुष्प आदिक अप्रमेय ही हैं क्योंकि आकाश पुष्पादिककी जानकारीमें सद्भाव समझनेमें प्रमाणका अभाव है प्रमेयके अभावकी तरह जैसे प्रमेयके अभावका ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है इसी प्रकार आकाश पुष्पको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण न होनेपर भी यदि आकाश पुष्पादिकको प्रमेय मान लिया जाय तो प्रमेयका अभाव भी प्रमेय बन बैठा। प्रमेयके अभावका भी कोई प्रमाण नहीं है और अब प्रमाणके न होनेपर भी प्रमेय माना जाने लगा और इस प्रकार फिर प्रमेय और प्रमेयके अभावकी व्यवस्था भी कैसे ठहर सकेगी ? यह प्रमेय है, यह प्रमेयाभाव है, यह व्यवस्था अब किस आधारपर बनेगी ?

आकाशपुष्पको प्रमेय सिद्ध करनेके लिये शंकाकार द्वारा प्रयुक्त हेतुमें व्यभिचार—शंकाकार कहता है कि एक अनुमान आकाश पुष्प आदिकको प्रमेय सिद्ध कर देता है वह अनुमान यही है कि आकाश पुष्पादिक प्रमेय हैं शब्द और विकल्पके विषयभूत होनेसे घट आदिककी तरह। इस उदाहरणमें। जैसे घट शब्दका विषय है घट। तो घट प्रमेय है अथवा घट विषयकज्ञानका विषय है घट। अतः घट प्रमेय है ऐसे ही आकाशपुष्प, इस शब्दके द्वारा कुछ समझा जा रहा है ना, जो समझा जा रहा है आकाशपुष्प तो वह प्रमेय है अथवा आकाश पुष्प तो वह प्रमेय है अथवा आकाश पुष्पके सम्बन्धमें तो ज्ञान बन रहा है उस ज्ञानका विषय तो है ना, आकाशपुष्प, अतः वह प्रमेय है। तब आकाश पुष्पको अप्रमेय कैसे सिद्ध किया जा रहा है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमान प्रयोगमें कहा गया हेतु निर्दोष नहीं है। इस हेतुका प्रमेयाभावके साथ व्यभिचार होता है। प्रमेयाभाव भी शब्दका विषय है। कहा तो गया है शब्द द्वारा और प्रमेयाभाव भी विकल्पका विषय है। प्रमेयका अभाव है इत्याकार रूपसे ज्ञान भी तो बन रहा है लेकिन प्रमेयाभाव प्रमेय कैसे है ? हेतुके पाये जानेपर साध्यका न पाया जाना यही तो व्यभिचार है।

आकाशपुष्पमें प्रत्यक्ष व अनुमान दोनों प्रमाणोंसे प्रमीयमाणताका अभाव – शंकाकार कहता है कि आकाशपुष्प आदिक प्रमेय हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणके द्वारा यह प्रमीयमाण होता है अर्थात् प्रकृष्ट रूपसे जाना जाता है, अतएव आकाशपुष्पादिक प्रमेय हैं, ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमानमें दिया गया हेतु असिद्ध है। अर्थात् आकाश पुष्प आदिक प्रत्यक्ष और अनुमानसे प्रमीयमाण नहीं है। किसी प्रमाणके द्वारा आकाश पुष्प जाना नहीं जाता है। आकाश पुष्प आदिक प्रत्यक्षसे तो प्रमीयमाण है नहीं क्योंकि प्रत्यक्षमें

Version 1

ये आकाश पुष्पादिक अपना आकार अर्पण नहीं करते। क्षणिकवादसिद्धान्तमें प्रत्यक्षके द्वारा उन वस्तुओंको प्रमीयमाण कहा जाता है जो पदार्थ प्रत्यक्षज्ञानमें अपना आकार समर्पित करदे। सो यों आकाशपुष्प अपने आकारमें, ज्ञानमें समर्पित करता ही नहीं है। जो असत् है वह अपना आकार कैसे समर्पित करे। इस कारण आकाश पुष्पादिक प्रत्यक्षके विषयभूत नहीं है। अनुमान ज्ञानके द्वारा भी आकाश पुष्पादिक प्रमीयमाण नहीं होते क्योंकि स्वभाव हेतु और कार्यहेतुके साथ उनका प्रतिबंध नहीं है। क्षणिकवाद सिद्धान्तके अनुसार स्वभाव हेतुको साध्यकी सिद्धि- समर्थ माना गया है तो आकाश पुष्पको प्रमेय सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया है वह स्वभाव हेतु तो है नहीं, क्योंकि किसी स्वभाव हेतुके साथ यदि आकाश पुष्पोंका प्रतिबंध (अविनाभाव सम्बन्ध) बना दिया जाय तो आकाश पुष्प निःस्वभाव है इस सिद्धान्तमें विरोध आ जायगा। आकाशपुष्पमें क्या स्वभाव है। क्या शक्ति है? कुछ भी नहीं है। तो है वह निःस्वभाव, मगर स्वभाव हेतुके साथ उनका अविनाभाव मान लिया जाता है तो उसमें स्वभाव बन बैठेगा। और निःस्वभाव माननेके सिद्धान्तमें विरोध आ जायगा। कार्य हेतुके साथ भी आकाश पुष्पादिकका प्रतिबंध मान लिया जाय तो फिर आकाश पुष्प अर्थक्रियाकारी नहीं है इस सिद्धान्तका व्याघात हो जायगा और जब अनर्थ क्रियाकारीपनेका विघात हो गया तो इसका अर्थ है कि आकाशपुष्प आदिक सत् हैं अर्थक्रियाकारीपनेके अभावका अभाव हो जानेके कारण। यों वस्तुभूत बन जानेसे उन आकाश पुष्पादिकका व्यवहार बन जाना चाहिए।

आकाशपुष्पको अप्रमेय न माननेपर दोषापत्तियां—एक अन्य भी यह बात देखिये कि जो दर्शनमें अपना आकार अर्पित करते नहीं और जिसका स्वभाव हेतु और कार्य हेतुके साथ प्रतिबन्ध है नहीं, इतनेपर भी यदि प्रमेय माननेका हठ ही करते हो तब तो यह हठ अन्य प्रमाणको ही सिद्ध कर देगी। क्योंकि आकाशपुष्पमें प्रमीयमाण होनेका लक्षण घटित नहीं होता। अनुमान द्वारा भी प्रमीयमाण होनेका लक्षण घटित नहीं होता। तो दोनों प्रमाणोंसे प्रमेय तो रहा नहीं आकाश पुष्प, तिसपर भी उसे प्रमेय ही कहे जा रहे हो तो कोई तृतीय प्रमाण मानना होगा। पर क्षणिकवाद में प्रत्यक्ष और अनुमानके सिवाय अन्य कोई प्रमाण माना ही नहीं है। और वास्तविकता यह है कि जब आकाश पुष्प प्रमेय नहीं है तो उसकी सिद्धि करनेके लिए क्या प्रमाणकी खोज करना? इस कारण आकाश पुष्पादिकको प्रमेय माननेकी बात युक्तिसंगत नहीं रहती, क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणोंके द्वारा आकाश पुष्पका नियम नहीं बन रहा है। कोई यह कहे कि इन दो प्रमाणोंके द्वारा आकाश पुष्प नहीं ज्ञात होता है तो प्रमाणान्तरके द्वारा आकाश पुष्प प्रमीयमाण हो जायगा, सो भी नहीं कह सकते, क्योंकि आकाश पुष्प प्रमाणके विषयत्वका आश्रयभूत नहीं है। अर्थात् आकाश पुष्पमें प्रमेयत्व धर्म है ही नहीं अर्थात् यदि आकाश पुष्प प्रमाणके विषयत्वका अनाश्रय न बनाये रहे तो प्रमाणविषयता आ जायगी प्रमेयपना बन जायगा। तब तो

आकाश पुष्पमें वस्तुपना सिद्ध हो जायगा । और, जब आकाश पुष्पमें वस्तुपना सिद्ध हो बैठे तो अब यह व्यवस्था ही नहीं बनायी जा सकती है कि स्वलक्षण तो सत् है और अन्यापोह असत् है। या कुछ भी सत् है और अन्य असत् है यह व्यवस्था नहीं बन सकती । है और जब यह व्यवस्था न बनी तो सत् असत्का व्यवहार नहीं बन सकता ।

विधि और प्रतिषेधमें एकतानत्व न होनेसे स्वलक्षणको ही अन्यापोह अर्थ बतानेकी अशक्यता—अब यहाँ शंकाकार शंका करता है कि आकाश द्यात्मक अर्थात् आकाश आदिक ही है स्वरूप जिसका ऐसे इस स्वलक्षणको छोड़कर आकाश पुष्पादिकका अभाव नहीं दिखा करता है अर्थात् आकाश पुष्पादिकका अभाव आकाशात्मक स्वलक्षणके रूपमें ही नजर आयगा । तो ख पुष्प सत्का अभाव तो कुछ दीखा नहीं सो ख पुष्प आदिकके अभावका अभाव होनेपर उन आकाशपुष्पादिकमें प्रमेयत्वका अभाव सिद्ध करना असिद्ध है । अर्थात् आकाश पुष्पादिक प्रमेय नहीं है यह बात सिद्ध की नहीं जा सकती । ऐसी क्षणिकवादियोंके द्वारा आशंका उपस्थित की गई कि आकाशपुष्पको प्रमेय मान ही लेना चाहिए। उसके उत्तरमें कहते हैं कि भाई स्वलक्षण ही तो अन्यापोह नहीं है । याने आकाशद्यात्मक स्वलक्षण कहीं आकाशपुष्पका अभाव नहीं है क्योंकि इस तरहके हठ करनेपर शंकाकारके अपने ही सिद्धान्तका विघात हो जायगा । यहाँ स्याद्वादशासनकी झलक हो जायगी । वस्तुमें कथंचित् सत्व व कथंचित् असत्वकी सिद्धि हो जायगी इसका कारण भी समझिये कि स्वलक्षण ही अन्यापोह क्यों नहीं है । क्योंकि सर्वथा विधि और प्रतिषेधमें एकत्व सम्भव नहीं है । विधिका प्रयोजन स्वरूप भिन्न है, प्रतिषेधका प्रयोजन स्वरूप भिन्न है । तो विधि और प्रतिषेध एक विषयरूप नहीं होते ।

दो पदार्थोंको मिलाकर भावाभावस्वभाव सिद्ध करनेमें विवेकका अभाव—शंकाकार कहता है कि देखिये, पुष्परहित आकाश ही तो इस शब्द द्वारा कहा जाता है कि आकाशमें पुष्पका अभाव है । और, सींगरहित खरगोश आदिक ही तो इस शब्दमें कहा जाता है कि खरगोश आदिकके सींगका अभाव है । तो देखिये—अब एक विषय वाले विधि नियम बन गए कि नहीं । आकाश खरगोश आदिक और उसके फूलसींग आदिक । तो आकाश और खरगोशकी तो विधि हुई और उसके फूल और सींगका प्रतिषेध हुआ ये दोनों बातें एक अर्थको विषय करने वाले सम्भव हो गई ना । जब यह कहा जा रहा कि विधि और प्रतिषेधमें सर्वथा एकत्व नहीं सम्भव है । तो इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये आकाश खरगोश आदिकमें भावाभावस्वभावके भेदसे विधि और प्रतिषेधकी उपलब्धि होती है । अर्थात् स्वतंत्र कोई एक पदार्थ ले लो, उसमें सत्व और असत्वकी सिद्धि होती है । जैसे आकाश अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत् है और पररूपकी अपेक्षासे असत् है इसी प्रकार खरगोश

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत् है पररूपकी अपेक्षासे असत् है। स्वरूपकी विधि पररूप का प्रतिषेध उसमें सम्भव है। यदि इस तरह न माना जाय तो किसीका परिज्ञान और अनुभव बन ही नहीं सकता। दो पदार्थोंमें विधि और प्रतिषेधकी बातको एक जगह जोड़नेका निराकरण किया गया है।

स्वभावभेदके अभावमें संकेतविशेषकी व विज्ञानविशेषकी अनुपपत्ति शंकाकार कहता है कि शब्द और विकल्पके भेदसे संकेत विशेषकी अपेक्षासे अर्थात् केवल विधि मात्र आकाश स्वरूपमें पुष्पका अभाव है और उसके स्वभावके अभावमें संकेत है आकाश शब्दके द्वारा यह कहा जाना योग्य है और पुष्प शब्दके द्वारा यह कहा जाना योग्य है ऐसे संकेत विशेषकी अपेक्षासे एक आकाश आदिक विषयमें विधि और नियम दोनों ही सम्भव हो जायेंगे फिर यह कैसे कहा जा रहा कि एक वस्तुमें विधि और नियम दोनोंका एकत्व नहीं बनता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि संकेत विशेष ही वस्तुस्वभावके विशेषका कारण बनता है। उस वस्तुका स्वभाव भेदन होने पर संकेत विशेष भी न बन सकेगा। जब पदार्थमें भिन्न-भिन्न स्वभाव हैं तब उनके भिन्न–भिन्न संकेत बनते हैं ताकि उस उस स्वभावके द्वारा वे वे पदार्थ वाच्य रहा करें और अब स्वभाव भेद माना नहीं, विधि और नियममें स्वभावभेद है, ऐसा स्वीकार न किया जानेपर फिर कोई संकेत विशेष नहीं बन सकता और जब कोई वाचक शब्द न बन सका तो उस स्वभाव द्वारा ज्ञान विशेष भी न बन सकेगा। जैसे कि आकाश और पुष्पमेंसे एकमें विधि नियम नहीं है। तो जो बात प्रत्यक्षमें विदित हो रही है, जिसे कि सभी लोग स्पष्ट समझ रहे हैं प्रत्येक पदार्थमें स्वरूप और पररूपकी अपेक्षास विधि प्रतिषेध है लेकिन दो पदार्थोंको मिलाकर एककी विधि और एकका प्रतिषेध करके प्रतिषेध्यका वहाँ सत्त्व सिद्ध करना यह स्याद्वाद शासनसे बहिर्गत बात है।

स्वभावभेदके अभावमें संकेत विशेष व अभिधान प्रत्ययविशेषकी उपपत्तिका शंकाकार द्वारा कथन—शंकाकार कहता है कि अनिद्र स्वभाव होने पर भी याने जैसे इन्द्रकी प्रतिमा बनानेके लिए जो काठ लाया गया है उस काठमें इन्द्रका स्वभाव नहीं पड़ा है फिर भी अनिन्द्र स्वभाव होनेपर भी उस पदार्थसे अथवा प्रतिमासे व्यवहार करने वालेके संकेतके वशसे वहाँ इन्द्रका शब्द भी बोला जा रहा है और इन्द्रका ज्ञान विशेष भी देखा जा रहा है। तब यह बात कहना कि संकेत विशेष वस्तु स्वभावके भेदके कारणसे होता है यह बात सिद्ध नहीं होती है। देखो ! वहाँ स्वभावभेद भी नहीं है फिर भी संकेत विशेष बन गया। तो वस्तुस्वभावके भेदके अभावमें भी संकेत विशेषकी अनुपपत्ति नहीं होती है अर्थात् संकेत विशेष बन जाता है और संकेत विशेषकी उपपत्तिकी तरह शब्द द्वारा ज्ञानविशेष भी हो जाता यों कि आकाश है और आकाशपुष्प नहीं है। यह जो कुछ शब्द और ज्ञान विशेष हो रहा है वह अनादिकालकी वासनासे उत्पन्न हुए विकल्पोंके द्वारा निर्मित हो रहा है। तब यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कहना कि वस्तु स्वभावके भेदके कारण संकेत होता है यह बात सिद्ध नहीं होती।

स्वभावभेदके होनेपर ही संकेतविशेष व उससे ज्ञानविशेषकी उपपत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि निरंशवादके आवेशमें आकर यह शंका की गई है उस आवेशमें रहने वालेने अभी वस्तुके स्वभावका अनुभव नहीं किया है। हे क्षये ! सभी शब्दोंमें सभी अर्थोंके प्रतिपादन करनेकी शक्ति है। क्योंकि सभी पदार्थ सभी शब्दोंके द्वारा वाच्य हो सकते हैं ऐसी नाना शक्तियाँ पदार्थमें हैं, पर व्यवहारकी प्रसिद्धि होती है और ही विधिसे याने इसमें प्रधानभाव और गौणभावको करके। जैसे यहाँ इन्द्र शब्दका व्यवहार भावरूप इन्द्रमें तो प्रधानता से होता है। जो साक्षात् इन्द्र है उसको इन्द्र कहना यह तो प्रधानतासे होता है और स्थापना रूपसे अर्थात् जो अनिन्द्र है इन्द्र नहीं है ऐसी जो काष्ठ मूर्ति है उसमें इन्द्र शब्दकी प्रवृत्ति गौणभावसे होती है। तो यों प्रधानभाव और गौणभावसे शब्दव्यवहारकी प्रसिद्धि हुआ करती है। तब यह परखिये कि किसी एक पदार्थमें जो इन्द्र स्वभाव नहीं रख रहा है, हाँ किन्तु इन्द्रकी स्थापना है अथवा इन्द्र बनानेके लिए लाया गया है ऐसे उस पदार्थमें इन्द्र शब्दके द्वारा वह कहा जाय तब तो व्यवहार करने वाले पुरुष अथवा उस इन्द्र प्रतिमामें इन्द्रकी तरह आराधना करने वाले पुरुष ऐसा संकेत विशेष रखते हैं कि इन्द्र शब्दकी वहाँ प्रवृत्ति होती है और इन्द्र विषयक ज्ञान भी बनता है। तो ऐसी स्थितिमें यह हो बात तो सिद्ध हुई है कि जो संकेत विशेष हुआ है, वह वस्तुके स्वभाव भेदके कारण हुआ है तब यह कहना उचित ही है कि संकेत विशेष वस्तुके स्वभावभेदके न होनेपर नहीं हो सकता है। जिस कारणसे कि वस्तु स्वभावभेदके बिना ज्ञान विशेष हो जाय।

स्वभावभेद निबन्धनक संकेतविशेषके बिना अभिधान प्रत्यय विशेष माननेपर विपर्यास विडम्बना—यदि वस्तु स्वभावभेदके कारण होने वाले संकेत विशेषके बिना ज्ञानविशेष हो जाय तब बताइये कि जैसे आकाशपुष्पके बारेमें यों ज्ञान करते हैं कि आकाशपुष्प नहीं है तो यों हो आकाशके संबंधमें भी ऐसा ज्ञान क्यों न हो जाय कि आकाश नहीं है। अथवा जैसे कि आकाशके सम्बन्धमें यह ज्ञान होता है कि आकाश है एसे ही आकाशपुष्पके सम्बन्धमें आकाशपुष्प है, ऐसा ज्ञान क्यों न हो जायगा ? अथवा आकाश और आकाशपुष्प इन दोनोंमे किसी भी एक जगह दोनों ही ज्ञान क्यों न हो जायेंगे ? याने विधिरूप और प्रतिषेधरूप दोनोंके ही बोध क्यों न हो जायेंगे ? क्योंकि अब तो यह मान लिया है कि संकेतविशेष तो सर्वथा वस्तुके स्वभाव भेदकी अपेक्षा करता ही नहीं है। तो ऐसी मान्यता वालोंके यहाँ विधि निषेधकी कोई व्यवस्था नहीं बन सकती, लेकिन प्रत्येक अर्थके प्रति विधिकी और प्रतिषेधकी तथा ज्ञानविशेषकी बात प्रतिनियत है और इसमें किसी भी प्रकारका बाधक प्रमाण नहीं पाया जाता। जो बात सभी जनोंके लिए प्रत्यक्षभूत है स्पष्ट है उसे वैसा न मानकर

कल्पना करके किसी ऐसे ही अन्यरूप माननेका प्रयास करना कि लोगोंको कुछ विचित्र लगे और कठिनाईके अनुभवके द्वारा उसको विशिष्ट अथवा खास रहस्यकी बात विदित करनी पड़े ऐसी दिलबहलाऊ कल्पनासे वस्तु स्वभाव नहीं बदल जाता ।

अन्यापोहसे विवक्षित वस्तुमें स्वभावभेदकी सिद्धि—उक्त विवरणसे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि देखिये ! जितने भी पररूप हैं प्रत्येक पदार्थमें उतनी ही उन पररूपसे व्यावृत्ति है और यों इतने ही पररूपके व्यावृत्ति होनेरूप स्वभावभेद प्रतिक्षण अर्थात् प्रति पदार्थमें जानना चाहिए । जैसे प्रकृतकी ही बात लीजिए कहा जा रहा है शंकाकार द्वारा कि आकाश ही आकाश पुष्पका अपोह है । याने आकाशपुष्पको प्रमेय सिद्ध करनेके आग्रहमें यह कह डाला कि आकाशाद्यात्मक जो स्वलक्षण है, केवल आकाश आकाश है वही तो आकाशपुष्पका अभाव है । यों यह अन्यापोह स्वलक्षणरूप बन गया, लेकिन आकाशपुष्पका ही अभाव आकाश न कहलायगा, किन्तु आकाशको छोड़कर जितने परपदार्थ हैं उन सबका अभावरूप आकाश कहलायेगा । तो कितने स्वभावभेद आकाशमें आ गए और स्वभावभेदके फलसे ही संकेत विशेष बताये जा रहे हैं । तो शंकाकार यों भी यह व्यवस्था नहीं बना सकता कि स्वलक्षण ही अन्यापोह है और यों भी व्यवस्था नहीं बना सकता कि अन्यापोह अन्य सम्बन्धीकी अपेक्षा रख रहा है । अर्थात् यहां माना है आकाशको स्वलक्षण और उसको ही सिद्ध किया है अन्यापोह अर्थात् आकाश पुष्पका अभाव । तो आकाश पुष्पका अभाव तो आकाशपुष्पका अभाव रूप जो वह स्वलक्षण है तो वह बना कैसे कि पुष्परूप जो अन्य सम्बन्धी है उसकी अपेक्षा रखकर, परन्तु सम्बन्धान्तर स्वलक्षणके स्वरूपभूत नहीं हो जाया करते अर्थात् पुष्पका अपोह आकाश स्वरूप नहीं बन सकता है । क्योंकि वे अन्य सम्बन्धी, पुष्प आदिक पररूप हैं । यदि पररूप भी स्वरूपभूत बन जाय तो फिर उन परोंके व्यावृत्ति ही सिद्ध न होगी । तो बात यह माननी चाहिए कि पररूप तो किसी एक वस्तुके स्वभावका भेद सिद्ध करते हैं । जैसे कि एक घट है तो यह घट पटरूप नहीं है, भींट रूप नहीं है । तो अब उन पररूपोंकी जो व्यावृत्ति है घटमें उससे तो घटके कितने स्वभावभेद विदित हो रहे हैं कि घट इससे भी निराला है उससे भी निराला है, लेकिन यहाँ माना जा रहा है उस स्वलक्षणको अन्यापोहरूप अर्थात् वस्तुका पररूप कर दिया ।

सम्बन्ध्यन्तरको स्वभावभेदक न माननेपर शंकाकारकी नित्यत्ववादियोंको उत्तर देनेकी अक्षमता—पररूप होनेपर भी अन्य सम्बन्धी विवक्षित पदार्थमें स्वभावके भेदक न माने जायें तब यह क्षणिकवादी नित्यत्ववादियोंको क्रमसे अर्थक्रिया नहीं बन सकता ऐसा कैसे कह सकेंगे ? नित्यत्व होनेपर भी किसी आत्मामें अन्य अनित्य सम्बन्धियोंके होनेपर क्रमसे अर्थ क्रिया होनेका निषेध न किया जा सकेगा अर्थात् वस्तु नित्य रहा आये उसके स्वभावमें भेद नहीं रहता है और फिर भी अन्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्बन्धी वहाँ क्रमसे अर्थक्रिया बना देंगे। जैसे कि निरंशवादियोंने इस प्रसंगमें यह मान लिया है कि भाव स्वभावमें भेद नहीं है फिर भी संकेत विशेष बन जाता है और अन्यापोह स्वलक्षणरूप बन जाता है। इन निरंशवादियोंको ऐसा कहा जा सकता है कि क्रमवर्ती सहकारी कारण उस उस कार्यके रचने वाले होते हैं इस कारण आत्म वस्तुके नित्य स्वभावको वे नहीं दूर कर पाते हैं। अर्थात् आत्मा नित्य रहा आयगा, भेद स्वभाव, रहा आयगा और फिर भी वहाँ अर्थक्रिया बन जायगी। तो ऐसा कहा जा सकेगा कि क्रमवर्ती सहकारी कारण उन उन कार्योंके रचने स्वरूप हैं सो वे आत्मा आदिक वस्तुओंके नित्य स्वभावको नहीं भेद सकते हैं। जैसे कि क्षणिक सामग्र में पड़ा हुआ एक प्रधान पदार्थ। जैसे माना है कि धान्य बोया गया तो उस समयमें धान्यको अंकुरित करनेके लिए अनेक सामग्रियाँ चाहिएँ सो गर्मी, जल, पृथ्वी, खाद आदिक अनेक सामग्रियोंके बीच पड़े हुए उस बीजमें तो बीजकी ही बात रही। उसके स्वभावका भेद न हो सका। इसी तरह अनेक सामग्रियोंके अन्दर अनित्य सम्बन्धियोंके बीच रहते हुए आत्मामें अर्थक्रिया बनाई गई और स्वभावभेद न रहा। यों निरंशवादियोंके प्रति कहा जा सकता है। तब यह उस समय उन–उन कार्योंके करनेमें समर्थ एक अविचल स्वभावको धारण करते हुए स्वभावके अभेदक और नाना क्रियाओंके कारणभूत कादाचित्क सहकारी कारणोंकी प्रतीक्षा करता है।

कार्यरचनात्मक कारणसामग्रीके बीच मूलकारणमें स्वभावाभेदकी धारणासे शंकाकारका परके प्रति उपालम्भ देनेका अनवकाश—उक्त प्रयोगमें जो उदाहरण दिया गया वह विषम उदाहरण नहीं है। दिखती ही है यह अथवा क्षणिकवादियोंने माना है ऐसा कि पृथ्वी, जल, बीज, गर्मी आदिकमें जो बीजको अंकुरित करनेमें अंतिम क्षण प्राप्त हुआ है उस समस्त सामग्रीमें पड़ा हुआ जो कोई एक बीज है वह कारण है और शेष कारणोंमें अंकुर आदिक कार्योंके रचने वाले पड़े हुए हैं, लेकिन उनसे उस बीजमें स्वभावका भेद न डाल सकेंगे वे, ऐसा क्षणिकवादियों ने माना है। तब ऐसे ही सर्वथा नित्यवादी भी कह सकता है कि अनेक सामग्रियोंमें पड़ा हुआ एक आत्मा उसमें अर्थक्रिया क्रमसे हो रही है फिर भी स्वभावमें भेद नहीं है। तो यों अनेक आपत्तियां आ येंगी। अतः इस प्रसंगको न चाहने वाले शंकाकारको यह मान लेना चाहिए कि वस्तुमें स्वभावभेद है और उन स्वभाव भेदोंके कारण ही शब्दोंका व्यवहार और तद्विषयक ज्ञान विशेष होते रहते हैं। तो जिस कारण अन्य सम्बन्धी वस्तु स्वभावके भेदक हैं यह सिद्ध हो गया अर्थात् जिन पदार्थोंसे व्यावृत्ति बताई जा रही है उन उन पदार्थोंसे जितनी व्यावृत्तियाँ हैं उतने ही स्वभावभेद विवक्षित पदार्थमें हैं यों अन्य सम्बन्धी पदार्थ वस्तुस्वभावके भेदक सिद्ध हो गए, तब परमार्थतः यह बात मान ही लेनी चाहिए कि विधि और प्रतिषेधसे अन्वित पदार्थ इस अविनाभावका उल्लंघन नहीं करता है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपके कारण विधिप्रतिषेधात्मक है, नानारूप है और इस कारण शंकाकारका यह सिद्धान्त बनाना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी उपयुक्त नहीं ठहरता कि पदार्थमें जितने भेद व्यवहार हैं वे सब कल्पनामें हैं जिनको कि इन शब्दोंमें कहा करते हैं। शङ्काकारके कल्पनाभेदको ढककर अर्थात् स्वलक्षण निरंश स्वरूपका आवरण करके व्यवहारके लिए स्थित रहता है ऐसा सिद्धान्त युक्त नहीं है क्योंकि विधि और प्रतिषेधके सम्बन्धसे रहित अर्थात् जहाँ सत्त्व और असत्त्व का सम्बन्ध न माना हो ऐसे स्वलक्षणरूप भेदका प्रत्यक्षसे ज्ञान नहीं हो रहा है। सभी लोग जो कुछ भी प्रत्यक्षसे निरख रहे हैं वह सब यों ही निरखा जा रहा है कि जैसे घट घट है, अघट नहीं है, तो विधि प्रतिषेध दोनोंका सम्बन्ध बना हुआ है प्रत्येक पदार्थमें। तब वहाँ विधि प्रतिषेध रहित पदार्थ नहीं पाया जा रहा है। तो मान ही लेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ अन्वयव्यतिरेकात्मक है। अन्वयव्यतिरेकात्मकतासे रहित केवल भेद स्वलक्षण अनुमानसे भी नहीं जाना जाता है।

विधिप्रतिषेधात्मक वस्तु माने बिना व्यवहारकी अशक्यता—यदि विधिका और प्रतिषेधका निराकरण कर दिया जाय, न माना जाय विधि और प्रतिषेधको तो कोई व्यवहार ही नहीं बन सकता। जो कुछ निःशंक व्यवहार चल रहा है वह सब इसी मूलपर तो चल रहा है। किसीने कहा घट लावो तो सुनने वाला शंका नहीं करता है कि यह घट है या नहीं है। तुरन्त घटको ही ले आता है। उसको यह दृढ़तासे परिज्ञान है कि यह घट है। घटके सिवाय अन्य समस्त पदार्थ नहीं है। उन पर निवृत्तियोंमें भी उसे ऐसा संदेह नहीं है कि यह कहीं पट नहीं है, या यह चौकी आदिक कोई अन्य वस्तु तो नहीं है। समस्त पर पदार्थोंसे निवृत्तिका और स्वयं उस पदार्थमें विधिका पूरा परिचय है व्यवहारी जनोंको तभी तो उस प्रकारका व्यवहार बन रहा है। किन्तु शंकाकार दार्शनिकके मंतव्यके अनुसार विधि और प्रतिषेधका लोप कर दिया जाय तब तो वहाँ व्यवहार नहीं बन सकता। कल्पनासे भेदका आवरण करके स्थितिका विरोध बन जायगा। तब जैसी प्रतीति हो रही है वैसा ही मान लेना चाहिए। परमार्थसे अनेक स्वभावरूप भावकी प्रतीति हो रही है। अर्थात् विधि प्रतिषेधात्मक पदार्थ है, सत्त्वासत्त्वात्मक पदार्थ है, नित्यानित्यात्मक पदार्थ है। यों अनेक स्वभावरूप वस्तुमें प्रतीति हो रही है। इस कारणसे अनेक स्वभावके अभाव होनेपर भेद भी सम्भव नहीं हो सकता। क्षणिकता, निरंशता, स्वलक्षणता वे सब भी सम्भव नहीं हो सकते। तब स्वयंके स्वरूपमें और परमें न पाये जाने वाले विधि प्रतिषेधरूप आकारका जब यह स्पष्ट परिचय बता रहा है तब यह निरंशवादी दार्शनिक वस्तुस्वरूपमें मुग्ध ही तो हो रहा है, अपने आग्रहमें आशक्त हो रहा है।

एकानेकाकार पदार्थकी प्रतीति—सभी पदार्थोंमें असहाय निरंशरूपमें उपलब्धि नहीं होती। जितने भी पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं इन्हें ही उदाहरणमें ले लीजिए। कोई असहाय, निरंश, निरपेक्ष कोई तत्त्व दिख रहा है क्या? कदाचित निरंशरूपमें उपलब्धि हो तो उस स्थितिमें भी नाना रूपोंकी उपलब्धि है तब तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कल्पना अपनेमें और दूसरेमें अविद्यमान आकारको दिखा रही है ऐसा कहा जा सकता है। निरंशवादियोंका यह सिद्धान्त है कि वस्तुमें स्वभाव भेद नहीं पड़ा है किन्तु कल्पनासे स्वभावभेद जाना जाता है। तो कल्पना अपनेमें उस स्वभावभेद जाना जाता है। या कल्पना अपनेमें उस स्वभावभेदके आकारको प्रकट कर लेता है और उस पर पदार्थमें जो विषयभूत हुए हैं उसमें भी नाना आकारोंको कल्पित कर लेता है। यह बात तभी तो कही जा सकती है कि जब उस निरंश पदार्थमें नाना रूपकी उपलब्धि रही हो। अथवा निरंश रूपकी उपलब्धिमें अभेदमें नाना रूपकी उपलब्धि होनेका नाम सम्वृत्ति है। यदि ऐसा कहा जाता है तो इसमें अतिप्रसंग आयेंगे। एकका भी ज्ञान हो, नानाका भी ज्ञान हो तभी यह कहा जा सकता है कि इस एक पदार्थमें नानाका परिज्ञान हो रहा है। अन्यथा तो कहीं भी कुछ भी कहा जा सकता है। तो यह मानना होगा कि प्रत्येक पदार्थ एक–एक होकर भी नाना स्वभावरूप है। और उसका सत्त्व तभी व्यवस्थित है कि जब उसमें पररूपका अभाव है अर्थात् अन्यापोह याने प्रतिषेध और स्वलक्षण अर्थात् विधिवाद ये दोनों एक वस्तुमें घटाये जाना चाहिए। प्रथक–प्रथक दो वस्तुओंका विधि निषेध मिलाकर एकका भाव अभाव नहीं बनाया जा सकता। वही पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नहीं है, इस ही कथनमें स्वभावभेद सिद्ध हो जाता है।

अनादिवासनासे अभिधान प्रत्ययविशेषकी उपलब्धिका शंकाकार द्वारा कथन—शंकाकार कहता है कि अनादि अविद्याके उदयसे समस्त जनोंको असहायरूपकी अनुपलब्धि हो रही है। असहाय रूपका अर्थ है निरंशरूप। जिसमें कुछ भी व्यवहारके योग्य समुदाय नहीं पड़ा हुआ है, किन्तु केवल एक अंशरूप ऐसे उस निरंश रूपकी जो उपलब्धि नहीं हो रही है सो अनादि अविद्याके उदयके कारण नहीं हो रही है। जैसे कि जो जन्मका अंधा पुरुष है उस अंधे पुरुषको एक चन्द्रमाकी जो उपलब्धि नहीं हो रही है वह जन्मसे अंधा है इस कारण नहीं हो रही। तो यों ही ये समस्त प्राणी जो एक उस क्षणिक निरंश स्वरूपकी प्राप्ति नहीं कर पा रहे हैं सो अनादि कालीन वासनाके प्रभाववश नहीं कर पा रहे हैं। तो जिसकी उपलब्धि नहीं हो रही उसमें कल्पनासे यह कहना कि यह नाना रूपोंमें उपलब्धि होरही है यह कथन परमार्थ नहीं हो सकता।

युक्तिरहित वृतको अनादिवासनाहेतुक माननेका अनिष्ट परिणाम—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यदि असहायरूपकी अनुपलब्धि अनादि अविद्याके उदयसे मानी जा रही है अर्थात् जो कुछ दिख रहा है उसकी उपलब्धि भी अनादि अविद्याके उदयसे मानी जा रही है तो इस तरह जिस किसी भी उपलब्धि अनुपलब्धि के लिए अनादि अविद्याका कारण बतानेपर कुछसे भी कुछ कहा जा सकेगा, जो शंकाकारको अभीष्ट नहीं है, ऐसा भी सिद्धान्त कहा जा सकेगा। जैसे सत्त्व, रज, तम इन

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणोंका जो एक महान रूप है वह दृष्टिमें नहीं आता और जो दृष्टिमें आता है बुद्धि आदिक वह मायाकी तरह ही निःस्वभाव है, मिथ्या है। यों कथन भी मान लिया जाय अथवा सब कुछ यह पुरुष तत्त्व ही है, ब्रह्म ही है, ये नाना कुछ भी नहीं हैं। लोग उसके प्रपंचको तो निरखते हैं पर कोई भी पुरुष उस पुरुष ब्रह्म तत्त्वको नहीं निरख पाता है इत्यादि जो कुछ बताया गया उपलब्धि और अनुपलब्धि उसमें कारण कह दिया जायगा कि अनादि अविद्याका उदय होनेसे। जहाँ युक्तिको, अनुभूतिको प्रश्रय न दिया जाय, जो सिद्धान्त मान रखा है या जो परम्परासे मानता आया है उस ही का आग्रह किया जाय। उसके विरुद्ध कुछ भी माननेके लिए तैयारी न हो उसे अनादि अविद्याका उदय बतायें तो यों कुछ भी कहा जा सकता है फिर सभीके तत्त्व प्रमाण कर लेना चाहिए। तब यह सम्वृत्ति सामान्य और समानाधिकरण तथा विशेषण विशेष्य भाव आदिक व्यवहारके विभिन्न आकारोंको धारण कर रही है और स्वयं सम्वृतिमें अनेकरूपका निराकरण किया जा रहा है तो ऐसा सिद्धान्त मानने वाले को यह सम्वृत्ति स्वयं व्यवस्थित कर देता है।

संवृत्तिकी एकानेकाकारतासे साधर्म्य वैधर्म्यके अविनाभावका समर्थन देखिये—अनेकरूपताके बिना सामान्य आदिक व्यवहारोंसे प्रतिभास और कल्पना उत्पन्न नहीं हो सकती। तो मानना होगा कि सम्वृत्ति अनेकरूप है और वह अनेक रूप सम्वृत्ति क्या है ? विकल्प, ज्ञान ही तो है और सत्यका अन्वेषण है, केवल मिथ्या ही बात वहाँ कही जाती हो सो बात नहीं है। सम्वृत्तिकी तरह अन्य मात्रान्तरकी अनेकात्मकता सिद्ध होनेपर वास्तविक जो साधर्म्य वैधर्म्य आदिककी स्थिति है सो अविशेषरूपसे विकल्प बुद्धिके मिथ्यापनको बताने वाले दार्शनिकोंको यह स्थिति निराकृत कर देती है। देखो सम्वृतिके स्वरूपमें अनेकात्मकपना है ऐसे ही हेतुवादमें साधर्म्य और वैधर्म्यकी स्थिति होनेसे अनेकान्तात्मकपना है। तो सम्वृत्तिमें तो मान लिया जायगा कि अनेकान्तात्मकता है और अन्य पदार्थोंमे हेतु आदिकमें अनेकात्मकता न माने यह कैसे हो सकता ? प्रकृतमें बात यह सिद्ध की जा रही है कि वस्तुका स्वरूप अस्तित्व मात्र ही नहीं हैं किन्तु अस्तित्व प्रतिषेध नास्तित्वके साथ अविनाभावी है। स्वरूपसे अस्तित्व है। पररूपसे नास्तित्व है और उसके उदाहरणमें बताया गया है कि जैसे हेतुमें साधर्म्य वैधर्म्यका अविनाभाव है, जहाँ सपक्ष होता है उस हेतुका विपक्ष भी हुआ करता है और फिर साधर्म्य शब्द ही कहाँसे आया ? वह वैधर्म्यका प्रतिपक्ष है ना, और वैधर्म्य साधर्म्यका प्रतिपक्ष है तो इन शब्दोंकी स्थिति भी प्रतिपक्ष से सम्बन्ध रखती है।

अस्तित्वकी नास्तित्वसे अविनाभाविताका विरोध करने वाले आशयका अनिर्वाह—इस प्रसंगमें वर्णन करते करते जब यह प्रसंग आया कि सर्व पदार्थ नित्य हैं, अथवा अनित्य हैं, उसकी सिद्धि करनेमें जो हेतु दिया जायगा उसमें साधर्म्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यतिरेकका अविनाभावी नहीं मिलता। तो उसके उत्तरमें बताया गया था कि कैसे वैधर्म्य नहीं मिलता ? आकाश पुष्प तो विपक्ष है, न वह प्रमेय है और न वह नित्य अथवा अनित्य है। तब शंकाकार आकाशपुष्पको प्रमेय सिद्ध करने लगा था और उस प्रसंगमें यह कहना पड़ा कि स्वलक्षण ही तो अन्यापोह है याने केवल आकाशका होना यही आकाशपुष्पका अभाव है। लेकिन जब वस्तुमें अनेकात्मकता सिद्ध हुई है तो आकाश अपने स्वरूपसे सत् है। और उसके अतिरिक्त पुष्प ही क्या, जितने भी समस्त पदार्थ हैं उनकी अपेक्षासे असत् है। तब आकाशपुष्प ही तो अन्यापोह रूपसे आकाश न रहा। तो यों अन्यापोह स्वलक्षण ही है यह बात सिद्ध न हो सकी तब आकाश पुष्प प्रमेय कैसे बन जायगा ? और भी सुनो ! जो क्षणिकवादियों के द्वारा यह बात कही जाती है कि अन्यसे व्यावृत्ति होना स्वलक्षण है, वस्तुका स्वरूप है, शब्द अन्यापोहको कहा करता है ! तो यह बात निःस्वभाव है, असत्य है और यों अन्यापोह वाच्य होता है विकल्पका। निःस्वभाव है, मिथ्या है, स्वलक्षण ही सत्य है, जिसका कि निर्विकल्प दर्शनसे प्रतिभास होता है उसका निर्णय करने वाला है विकल्प ज्ञान। इस कारण विकल्प ज्ञानको उपचारसे प्रमाण कहते हैं ये सब बातें संगत नहीं बैठतीं क्योंकि व्यवसायात्मक न हो, निर्णयात्मक न हो चाक्षुष आदिक ज्ञान, तो वे स्वयं अनुत्पन्न ज्ञानके समान ही कहलावेंगे। उस ज्ञानका उत्पन्न होना क्या उत्पन्न होना कहलायगा जिसमें किसी प्रकारका निर्णय न पड़ा हो और वह निर्णय क्या जो कि भावके स्वभावका स्पर्श न करे। तो ऐसे निर्णयके तो सर्वथा वस्तु तत्त्वका परिज्ञान न होनेसे यह ऐसा ही है, क्षणिक ही है ऐसा स्वयं नियम न बन सकेगा सो यह क्षणिकवादी दार्शनिक चक्षु आदिक ज्ञानोंसे वस्तु तत्त्वका निर्णय करता हुआ, समस्त विकल्पोंके द्वारा निश्चित् किए जाने योग्य अन्य व्यावृत्तिको सर्वथा निःस्वभाव बताता हुआ कैसे यह बात स्वयं समझ सकेगा कि वस्तु तत्त्व यह ही है, इस प्रकार ही है और कैसे दूसरोंको समझा सकेगा।

प्रत्यक्ष और प्रतीतिसे वस्तुके स्वपररूपोपादानपोहनकी सिद्धि — जो चक्षु आदिक ज्ञान वस्तु तत्त्वका निर्णय बनाते हैं उसमें स्पष्ट बोध पड़ा है कि यह पदार्थ अपने स्वरूपसे है और उसमें अन्यकी व्यावृत्ति है। तो अन्यकी व्यावृत्ति है यह बात क्या असत्य है कि वह अन्यसे अलग ही रहा करे। जैसे कमलिनीका पत्र जल को ग्रहण नहीं करता तो यह उस कमलपत्रका स्वभाव ही तो कहा जायगा कि वह अपने स्वरूपको लिए हुए है और समस्त परपदार्थोंका ग्रहण नहीं करता है। तो ऐसे ही समस्त पदार्थ अपने स्वरूपको ग्रहण किए हुए हैं और अन्य पदार्थोंको अपनेमें नहीं मिलाता है तो यह इन ही पदार्थोंका स्वभाव ही तो कहलाया ? तो जैसे स्वलक्षण निःस्वभाव नहीं है इसी प्रकार अन्यापोह भी निःस्वभाव नहीं है। जब अन्यापोह भी निःस्वभाव नहीं है अर्थात् जैसे स्वरूप सत्त्व सत्य है इसी प्रकार पररूपका असत्व भी सत्य है। इस कारण यह पदार्थ स्वभाव भेदोंको विधिप्रतिषेधविषयक

Version 1

धारण करने वाला अर्थात् जो विधि और प्रतिषेधका विषय करता है ऐसे नाना स्वभावोंको धारण करने वाला पदार्थ प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणसे जाना जाता है और वह प्रमेय सिद्ध होता है। जो पदार्थ विधि प्रतिषेधात्मक है, स्वरूपसे सत् और पररूपसे असत् है यह प्रमाणके द्वारा जाना जाता है। और प्रमेय होता है। परन्तु आकाशपुष्पादिक अप्रमेय हैं। यों उस अनुमान प्रयोगमें जैसे कि कहा था कि सर्व पदार्थ नित्य हैं प्रमेय होनेसे तो प्रमेयत्व हेतुका व्यतिरेक नहीं मिलता सो बात नहीं है। वह प्रमेयत्व है हेतुका व्यतिरेक अप्रमेय है, आकाश पुष्पादिक है।

अन्तर्व्याप्तिलक्षणक तथोपपत्तिरूप अन्वयके सद्भावसे साधर्म्यका परिचय - शंकाकार कहता है कि जब सभी पदार्थोंको परिणामी साध्य बनाया है कि सभी पदार्थ परिणामी हैं। अनित्य हैं अथवा नित्य बनाया कुछ भी साध्य बनाया, पर सभी पदार्थोंके लिए बनाया तो सबके कहनेसे फिर कोई शेष तो न बचा। तो सपक्ष भी कहाँ मिलेगा? सपक्ष तो उसे कहते हैं कि जो पक्षमें तो न हो किन्तु हेतु और साध्य पाये जायें ऐसे अन्य उदाहरण हों। सो जब सर्व वस्तुको पक्षमें ले लिया तो सपक्ष भी न बना और सपक्षमें अन्वय सम्भव न हो सका। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये—अन्तर्व्याप्ति जिसका लक्षण है ऐसा तथोपपत्तिरूप अन्वय यहाँ बराबर है। अन्वयकी मुद्रा है, तथोपपत्ति और व्यतिरेककी मुद्रा है अन्यथानुपपत्ति। हेतुके होनेपर साध्यका होना तथोपपत्ति कहलाता है और साध्यके अभावमें साधनका न होना अन्यथानुपपत्ति कहलाता है। तो तथोपपत्तिरूप अन्वय दृष्टान्तमें दिये गये घट आदिक पदार्थोंमें सिद्ध होता है। साधर्म्य और वैधर्म्य बतानेके लिए यह नियम युक्त नहीं है कि दृष्टान्त विशिष्ट धर्मीमें ही हेतुका साधर्म्य और वैधर्म्य बताया जाय। यहाँ सबको पक्षमें लिया है तो उन ही सभीमें दिखा दिया जायगा कि यहाँ तथोपपत्ति है। तो तथोपपत्ति मिलना चाहिए, चाहे वह पक्षके एक देशका हो उदाहरण मिल जाय या पक्षसे बाहरके कोई उदाहरण मिल जायें। जहाँ तथोपपत्ति सिद्ध होगा वहाँ साधर्म्य माना जायगा। जैसे कि जहाँ अन्यथानुपपत्ति सिद्ध होगी वहाँ वैधर्म्य माना जायगा।

तथोपपत्तिसे साधर्म्य न मानकर पक्षवहिर्गत दृष्टान्तका ही आग्रह करनेपर शंकाकारके सिद्धान्तकी भी अनुमान प्रमाणसे सिद्धिकी अशक्यता—यदि इस तरहका आयोजन न माना जाय अर्थात् तथोपपत्तिसे साधर्म्यकी सिद्धि और अन्यथानुपपत्तिसे वैधर्म्यकी सिद्धि यों स्वीकार न किया जाय तो—यह शङ्काकार ही बताये कि सर्व पदार्थोंको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दोगे उसका भी सपक्ष विपक्ष मिलेगा क्या? जैसे हेतु प्रयोग किया कि सर्व क्षणिक है सत्त्व होनेसे, तो यहाँ भी पक्षमें जब सर्व पदार्थ मिल गए तो अब सपक्ष क्या मिलेगा? सभी वस्तु पक्षमें आ गए हैं तो यहाँ भी सपक्ष मिल न सकेगा। तो जिस हेतुमें सपक्षसत्त्व न मिला,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उस हेतुको त्रैरूप्य न कहा जा सकेगा और वह निर्दोष न माना जायगा इसी प्रकार जब पक्षमें सर्वपदार्थ आ गए तो विपक्ष भी कैसे बताया जायगा? तो यों सबको क्षणिक सिद्ध करनेके लिए जो सत्त्वादिक हेतु बताये जाते हैं वे सब अहेतु बन जायेंगे, क्योंकि नका सपक्ष और विपक्ष न मिलेगा। और जब ऐसा मान लेंगे कि साधर्म्य और वैधर्म्य का मिलना दृष्टान्त धर्ममें ही आवश्यक नहीं है। किन्तु पक्षके एक देशमें भी मिला हो तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति तो यह बात प्रकृतमें भी युक्तिसंगत बन जायगी।

वस्तुमें अस्तित्व धर्म व नास्तित्वधर्म दोनोंकी निर्दोष उदाहरणपूर्वक सिद्धि— इस कारिकामें यह बताया गया है कि एक पदार्थमें अस्तित्व धर्म नास्तित्व धर्मके साथ अविनाभावी होता है क्योंकि वह अस्तित्व विशेषण है। जो भी विशेषण होता है वह अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी होता है। जैसे लौकिक दृष्टान्त है जब कहा कि नील कमल तो कमलका विशेषण बनाया नील तो यह नील धर्म अनील निषेधको अविनाभावी है अनीलकी व्यावृत्तिको रखता हुआ है अर्थात् कमल नीला है। न कि पीला आदिक। अथवा नील अनीलका अविनाभावी है. अनील न हो तो नील क्या तो अस्तित्व भी यहां एक वस्तुका विशेषण है। तो वह नास्तित्वके साथ अविनाभावी है। यदि उसमें पररूपकी अपेक्षा नास्तित्व न हो तो स्वरूपका अस्तित्व भी नहीं हो सकता। इस सिद्धान्तको सिद्ध करनेके लिए दृष्टान्त दिया है साधर्म्य जैसे वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है तो इस अनुमान प्रयोगमें जो उदाहरण दिया गया है वह समस्त हेतुवोंमे निर्दोष प्रकारसे सिद्ध है। इस हीके विरोधमें शंकाकारने जो आपत्ति उठाई थी कि जब सभी पदार्थ नित्य हैं प्रमेय होनेसे, यह अनुमान बनाया तो वहाँ विपक्ष तो कोई मिलता ही नहीं है और सपक्ष भी कोई मिलता नहीं है। उसका ऊहापोहपूर्वक समाधान दिया गया और उससे सिद्ध किया गया कि प्रत्येक हेतुमें साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी होता है। तो जब यह उदाहरण निर्दोषरूपसे प्रसिद्ध कर दिया गया तो उस कारण यह सिद्ध हुआ कि किसी भी धर्मीमें विशेषण प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी होता है जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है. जैसे उदाहरण लीजिये— शब्द अनित्य है कृतक होनेसे। जो जो अनित्य होते हैं वे वे अनित्य होते है जैसे घट आदिक। तो यहां घट आदिक सपक्षमें हेतु और साध्य दोनों सिद्ध होते हैं। जो अनित्य नहीं होता है वह कृतक भी नहीं होता है जैसे आकाश, नित्य पदार्थ। तो यहाँ साधर्म्यभेद विवक्षाके साथ अविनाभावी है। तो यहाँ अस्तित्व है विशेषण अतएव यह विशेषण प्रतिषेध्य धर्मके साथ अविनाभावी सिद्ध होता है। 'अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभावि विशेषणत्वात्' यह अनुमान निर्दोष सिद्ध है। इसमें जो हेतु दिया है उसमें न असिद्धताका, न विरोधताका, कोई दोष नहीं आता और जो उदाहरण दिया है उस उदाहरणमें साध्य अथवा साधन किसीकी भी विकलता नहीं है। उदाहरणमें साध्य साधन धर्म पाये जा रहे हैं। और, जो पक्ष बताया है वह भी

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष वाधित आदिक दोषोंसे युक्त नहीं है। अतः यह बात निर्दोषतया प्रसिद्ध होती है कि वस्तुका स्वरूप जैसे अस्तित्व है उसी प्रकार नास्तित्व भी है अपेक्षा जुदी है। स्वरूपसे अस्तित्व है और पररूपसे नास्तित्व है।

एक वस्तुमें नास्तित्वकी अस्तित्वके साथ अविनाभावितामें शङ्का और उसके समाधानका उपक्रम—अब यहां शङ्काकार कहता है कि भले ही जीवादिकमें अस्तित्व नास्तित्वके साथ अविनाभावी है यह सिद्ध हो जाय क्योंकि जीव है, प्रमेय है, पर नास्तित्व किसी भी प्रकार अस्तित्वके साथ अविनाभावी नहीं बन सकता। जैसे आकाशपुष्प, उसमें नास्तित्व है आकाशपुष्प है नहीं। तो उसमें अस्तित्व कैसे सिद्ध किया जायगा? आकाशपुष्प तो किसी भी प्रकार सत् नहीं है। तो वहां नास्तित्व अस्तित्वके साथ अविनाभावी तो न बन सका अतएव यहपक्ष तो युक्त हो जायगा कि अस्तित्व एकधर्मीमें नास्तित्वके साथ अविनाभावी होता है किन्तु यह पक्ष सिद्ध न होगा कि नास्तित्व अस्तित्वके साथ अविनाभावी है, ऐसी शङ्का रखने वाले दार्शनिकोंके प्रति स्वामी समन्तभद्राचार्य कहते हैं :—

नास्तित्वं प्रतिषेध्येना विना भाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥ १८ ॥

नास्तित्वकी नास्तित्वके प्रतिषेधरूप अस्तित्वके साथ अविनाभाविता
एकधर्मीमें नास्तित्व प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे जैसे कि वैधर्म्य साधर्म्यके साथ अविनाभावी है। यहां सिद्ध किया जा रहा है नास्तित्वका प्रतिषेध्यके साथ अविनाभाव। तो नास्तित्वका प्रतिषेध्य हुआ अस्तित्व, जो विवक्षित धर्मका रूप हो वह अविवक्षित धर्मका प्रतिषेध कहलाता है। तो जैसे पूर्वकारिकामें बताया गया था कि अस्तित्व अपने प्रतिषेध्य नास्तित्वके साथ अविनाभावी है अर्थात् जैसे नास्तित्व न हो अस्तित्व नहीं ठहरता इसी प्रकार अस्तित्व न हो तो नास्तित्व भी नहीं ठहरता। एक अनुमान प्रयोग है कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे, तो यहां कृतकत्व हेतु द्वारा शब्दकी अनित्यता सिद्ध की जा रही है। व्याप्ति बनती है कि जो जो कृतक होता है वह अनित्य होता है जैसे घट। घट कृतक भी है, अनित्य भी है। और, जो अनित्य नहीं होता वह कृतक नहीं होता। जैसे आकाश—वह अनित्य भी नहीं, कृतक भी नहीं। तो यहां यह बताया गया है कि यहाँ जो सिद्ध किया जा रहा है उसके लिये जो हेतु दिया है उसका वैधर्म्य साधर्म्यके साथ अविनाभावी है। ऐसा जो हेतुका विशेषण पना कहा है वह उदाहरणसे बिल्कुल प्रसिद्ध है। एक जीवमें या किसी भी एक वस्तुमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व है तो जैसे स्वरूपसे अस्तित्व, पररूपसे नास्तित्व स्वरूपसे अस्तित्वके साथ अविनाभावी है। तो यों नास्तित्व अस्तित्वको साथ लेकर ही बन पाता है। इस कारण जो यहाँ विशेषणत्व साधन बताया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गया है वह बिल्कुल निर्दोष है। यहाँ पक्ष किया है नास्तित्वका। नास्तित्वमें ही तो प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावत्व सिद्ध किया जा रहा तो नास्तित्वमें विशेषणत्व पाया जाता है। किसी बाधकको कहना जैसे कि यहाँ पररूपसे नास्तित्व है तो यह भी तो विशेषण ही कहा गया है। तो नास्तित्व विशेषण है अस्तित्वकी तरह। जैसे जब अस्तित्वका पक्ष बनाया गया था तो वहाँ वह विशेषण रहता था अस्तित्व ऐसे ही इस प्रसंगमें नास्तित्वको पक्ष बनाया है तो यह भी विशेषण कहलाया। और जो विपक्ष है जैसे आकाशपुष्प, उसमें जब नास्तित्वके प्रतिषेध्यके साथ अविनाभाव नहीं है तो वहाँ विशेषणत्व हेतु नहीं पाया जाता ?

अवस्तुमें अस्तित्वधर्मके अभावकी तरह नास्तित्वधर्मका भी अभाव– शंकाकारने यहाँ यह शंका की थी कि आकाशपुष्पमें नास्तित्व तो है, पर किसी भी प्रकार अस्तित्व नहीं बनता तब नास्तित्व अस्तित्वके साथ अविनाभावी है यह सिद्धान्त कैसे बनेगा ? उसके उत्तरमें कहा जाता कि ख पुष्पमें नास्तित्व धर्म भी नहीं है, अस्तित्व और नास्तित्व ये दोनो धर्म वस्तुमें बताये जाते हैं। ख पुष्प अवस्तु है तो आकाशपुष्पमें नास्तित्व नही है यह कैसे जाना ? यों जाना कि अस्तित्वके साथ अविनाभावी हो ऐसा नास्तित्व नहीं है। अवस्तु है इस प्रकारसे उसका असत्व तो है पर प्रतिषेध्य अस्तित्वके साथ अविनाभाव रखता हो ऐसा नास्तित्व नहीं है और इसी कारण आकाश पुष्पमें नास्तित्व विशेषण नहीं बनता। यों न तो इस हेतुमें असिद्ध दोष होता न विरोध और न अनैकान्तिक दोष आता है। और, दृष्टान्त जो दिया गया है कि वैधर्म्य साधर्म्यके साथ अविनाभावी है। अन्वय न सिद्ध हो तो व्यतिरेक न सिद्ध होगा। तो यह जो दृष्टान्त दिया गया इसमें कोई दोष नहीं आ रहा। दृष्टान्तमें न तो साध्य विकलता है. न साधन विकलता है और न दोनोकी विकलता है। दृष्टान्तमें साध्य साधन दोनों पाये जाते हैं। तो जैसे हेतुमें अन्वय व्यतिरेकके साथ अविनाभावी है एसे ही व्यतिरेक अन्वयके साथ अविनाभावी सिद्ध होता है।

भेदविपक्षाकी व अभेदविवक्षाकी परमार्थसद्भूत वस्तुनिबन्धनता – जितनी भी भेद विवक्षायें है वे परमार्थ सद्भूत वस्तुके कारण हैं। यदि वस्तु नहीं है तो अवस्तुमें तो भेद विवक्षा नहीं बनती। इसी प्रकार अवस्तुमें अभेद विवक्षा भी नहीं बनती। अर्थात् अस्तित्व और नास्तित्वकी सिद्धि वस्तुमें की जाती है अवस्तुमें नहीं की जाती। यदि भेद विवक्षा और अभेद विवक्षा अवस्तुके कारण बन जाय, नहीं है वस्तु फिर भी अन्वय व्यतिरेक उसमें घटित किया जाय तब फिर यह प्रयोग विपरीत भी क्यों न हो सकेगा। जैसे शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें कृतकत्व हेतु दिया जा रहा है तो वहाँ व्यतिरेकको जगह अन्वयका प्रयोग क्यों नहीं बना लिया जाता ? जैसे जो जो कृतक हैं वे सब अनित्य हैं जैसे आकाश। और जो अनित्य नहीं है वह कृतक नहीं है जैसे घट आदिक। तो यों उल्टा कथन क्यों नहीं कर दिया जाता ? हो

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाना चाहिए, पर ऐसा किसीको भी इष्ट नहीं है। तो इससे सिद्ध होता है कि भेद विवक्षा और अभेद विवक्षा अवस्तुके कारण नहीं होती। यदि अवस्तुके कारण भेदाभेद विवक्षा मान ली जाय तो विपरीत बात सिद्ध की जा सकती है। और, यदि अन्वय व्यतिरेकका विपरीत सम्बन्ध बना लिया जाय तो शब्दका अनित्यत्व सिद्ध करने वाले हेतुसे उल्टी बात सिद्ध हो बैठेगी। करना तो चाहिए था अनित्य सिद्ध, हो बैठेगा नित्य सिद्ध। तो यह क्षणिकवादी जब कृतकत्व आदिक साधनकी अविरोधता को चाह रहा है तो उसे यह मानना ही पड़ेगा कि भेद और अभेदकी विवक्षा अर्थात् व्यतिरेक और अन्वय अस्तित्व और नास्तित्व ये वस्तुके कारणसे ही होते हैं। इस प्रकार यह बात बिल्कुल स्पष्ट सिद्ध होती है कि जो कुछ भी विशेषण है वह सब एक वस्तुमें प्रतिपक्ष धर्मका अविनाभावी है। जो भी विशेषण दिया जाय वह अन्य विशेषणोंसे व्यावृत्त रहता है जैसे कि वैधर्म्य साधर्म्यके साथ अविनाभावी है। तो यहाँ नास्तित्व विशेषण है, यह बात सिद्ध हो ही जाती है और जब विशेषण है तो अस्तित्व को साथ लिए हुए हैं, क्योंकि साध्यके सद्भावमें ही साधनका सद्भाव निश्चत् किया जाता है, अन्यथा व्यवहार संकर हो जायगा, कोई भी व्यवहार शुद्ध न रह सकेगा।

उदाहरणपूर्वक अस्तित्व और नास्तित्वकी वस्तुनिबन्धता—जैसे करभ और दही। करभका अर्थ है ऊँट और दहीका अर्थ है दही। ये दो शब्द हैं। तो करभ में करभपना है और दधिमें दधिपना है। यह बात तो इसी बलपर सिद्ध है कि अस्तित्व परमार्थ सद्भूत वस्तुके कारणसे होता है। और भी देखिये! दधिमें करभपना नहीं है और करभमें दधिपना नहीं है। ऐसी यह नास्तित्वकी बात तब होती है जब कि नास्तित्व वस्तुके कारणसे कहा जाता है, अन्यथा जैसे करभमें करभपनाका सद्भाव है ऐसे ही दधिमें करभपना आ बैठेगा। और, जैसे दहीमें दधिपनेका सद्भाव है ऐसे ही करभमें भी दधिपना आ बैठेगा। तब कोई पुरुष यदि यह कहता है कि दही लावो तो जिस पुरुषको यह आदेश दिया है वह ऊँटके पास विचरने लगे क्योंकि अस्तित्व और नास्तित्व परमार्थ सद्भूत वस्तुके कारण नहीं माने जा रहे, अथवा जैसे वह पुरुष ऊँट के पास नहीं विचरता वैसे ही दधिके पास भी न विचरे! क्योंकि अब तो किसी भी जगह न तो इस दधिपनेका अभाव मान रहे और न अकरभपनेका अभाव मान रहे तो ऐसी स्थितिमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका व्यवहार संकर हो जायगा अर्थात् किसीमें प्रवृत्ति करना है, किसीमें प्रवृत्ति करनेका आदेश दिया है तो वहाँ निवृत्ति कर बैठे और जहां निवृत्ति करनेका आदेश दिया है वहाँ प्रवृत्ति कर बैठे। इससे सिद्ध है कि जब लोगोंकी प्रतीतिमें प्रसिद्ध बात है व्यवहार संकरता नहीं आ रही है तो वह इसी कारण नहीं आती कि नास्तित्वकी बात वस्तुके कारणसे हुआ करती है। इससे सिद्ध हुआ कि सभी विशेषण अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी होते हैं। यहाँ प्रकरणमें नास्तित्वकी बात कही जा रही है कि नास्तित्व अपने प्रतिषेध्य अस्तित्वके साथ अविनाभावी है। इसका अनुमान प्रयोग है कि नास्तित्व अस्तित्वके साथ अविनाभावी है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विशेषण होनेसे। तो यहाँ विशेषणत्वमें अन्यथानुपपत्ति है इस तरह इस अन्यथानुपपत्तिका निर्दोष प्रकारसे सिद्धि होती है। अन्यथानुपपत्तिका अर्थ है कि यदि साध्य न हो तो साधन नहीं हो सकता। सो ही बात यहाँ बतायी गयी है कि यदि स्वरूप अस्तित्व न हो यो उसमें पररूप नास्तित्वको सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ विपक्षमें बाधक प्रमाण मौजूद हो वहाँ अन्यथानुपपत्ति सिद्ध ही होती है।

धर्मधर्मी व्यवस्थाको स्वेच्छाकल्पित कहनेकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि हेतुकी अन्यथानुपपत्ति सिद्ध भी हो जाय तो भी धर्म और धर्मीकी व्यवस्था तो कल्पित ही है। तो जब धर्मधर्मी व्यवस्था कल्पित है तो अनुमान भी कल्पित कहलायेगा। तो हेतुमें अन्यथानुपपत्ति सिद्ध होती है, यह तो हम आपके सम्वृत्तिकी दशाकी बात बन रही है। वस्तुतः तो धर्म और धर्मी कल्पित है। स्वतंत्र क्षणिक निरंश ही पदार्थ हुआ करता है। तो जब अनुमान कल्पित हो गया तब फिर अनुमानकी बात समीचीन कैसे बनेगी ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि धर्म और धर्मीका व्यवस्था अपनी इच्छाके अनुसार कल्पित नहीं बतायी जा सकती। यदि स्वेच्छानुसार धर्मधर्मीकी व्यवस्था कल्पित कर ली जाय तो वहाँ परमार्थ तत्त्वका अवतार नहीं होता। जिसमें कि सर्व ही अनुमान अनुमेय व्यवहार विधिमें आये हुए धर्मधर्मी न्यायसे बाहर ही बाहर सत्त्व और असत्त्वकी अपेक्षा करता है यह बात युक्त हो जाय। तब आपके शंकाकारके सिद्धान्तमें यह कहा गया है कि जिन पुरुषोंने तत्त्वार्थका अवलोकन नहीं किया। वास्तविक तत्त्वको नहीं जाना है वे लोग प्रतीतिके वशसे भेद और अभेदकी जो व्यवस्था बनाते हैं और उस व्यवस्थाका आश्रय करते हैं सो तत्त्वकी जानकारीके लिए करते हैं। इससे अधिक भेद अभेद व्यवस्थाकी परमार्थता नहीं है। इस प्रकार क्षणिकवादमें जो सिद्धान्त बताते हैं वह बच्चों जैसा अभिलाप है। क्योंकि समस्त पदार्थोंमें भाव स्वभाव माना गया है। भाव अर्थात् सद्भाव और अभाव अर्थात् परवस्तुका अभाव ये दोनों प्रत्येक वस्तुमें माने गए हैं। इस कारण सभी वस्तुओंमें भेद और अभेद बराबर व्यवस्थित है, यदि सर्व वस्तुओंमें भेद अभेदकी व्यवस्था न मानी जाय, भावाभावस्वभावरूप पदार्थको न माना जाय तो उससे तत्त्वकी प्रतिपत्ति नहीं बन सकती है। जो बात एकदम प्रत्यक्ष सिद्ध है। जिसमें किसी भी मनुष्यको विवाद नहीं उत्पन्न होता है वहाँ कल्पनायें करके कोई अतर्क्य बातको सिद्ध करनेका प्रयास करे यह तो समय और उपयोगको खोना है। प्रयोजन तो आत्महित करनेका है और आत्महित करनेका साधन है तत्त्वज्ञान। तो जिस प्रकार से उस तत्त्वका परिज्ञान करनेमें ही आत्महित है, उसके विपरीत कुछ भी तर्कणा बनानेमें आत्महितकी सम्भावना नहीं है।

वस्तुके विधेयप्रतिषेध्यात्मकत्वके विरोधमें कुछ दार्शनिकोंकी शंकाय और उनके निराकरणका उपक्रम—यहां निरंशवादी कहते हैं कि अस्तित्व और

नास्तित्व विशेषण ही है, विशेष्य नहीं है। इस कारण वह अस्तित्व परमार्थभूत साध्य साधन धर्मके अधिकरण नहीं हो सकते। साध्य तो बनाया है प्रतिषेध्यका अविनाभावीपना और साधन बताया है विशेषणपना, तो इन दोनोंका अधिकरण प्रकृत साध्य साधन नहीं बन सकते हैं, क्योंकि अस्तित्व और नास्तित्व कोई सत् पदार्थ तो हैं नहीं, विशेष्य तो हैं नहीं विशेषण ही माने गए हैं। तो जब ये दोनों साध्य धर्म और साधन धर्मके अधिकरण नहीं बन सकते तो जो दोनों अनुमान प्रयोग बताये गए हैं पूर्वकारिकामें बताया है कि अस्तित्व प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है और इस कारिकामें बताया है कि नास्तित्व अपने प्रतिषेध्य अस्तित्वके साथ अविनाभावी है सो ये दोनों ही अनुमान सही नहीं बैठते कि अस्तित्व नास्तित्व धर्म हों और जीवादिक धर्मी हों इस रीतिमें संगत नहीं बनता। इसी प्रकार दार्शनिक और भी कहे जा रहे हैं कि वस्तु सर्वथा अभिलाप्य याने शब्दके द्वारा कहे जाने योग्य नहीं हैं, क्योंकि जो वस्तुस्वरूप है वह अनभिलाप्य है वह शब्द द्वारा कहा नहीं जा सकता। उसको कहने वाला तो विकल्पज्ञान होता है। जो साक्षात् स्वलक्षण है, जिसकी परमार्थसे सिद्धि करनी हो उसका शब्द द्वारा कथन नहीं हो सकता। तथा और भी कह रहे हैं कि जीवादिकसे ये दोनों अस्तित्व और नास्तित्व भिन्न ही हैं। क्योंकि प्रतिभास भेद है। अस्तित्वका विषय कुछ है नास्तित्वका विषय कुछ है और जीवादिक विषय अन्य है। जब इसमें प्रतिभासभेद है तो यह अलग ही चीज है, जीवादिक वस्तु अलग है। जहाँ प्रतिभासभेद होता है वहाँ भिन्नता ही होती है, जैसे घट पट। ये दोनों परस्पर भिन्न हैं, तो यह प्रतिभासभेद इसमें है अतः भिन्न हैं। इसी प्रकार अन्य कोई दार्शनिक कहते हैं कि वस्तु अस्तित्वस्वरूप नहीं हो सकती, क्योंकि अगर वस्तु अस्तित्वमय हो गयी, नास्तित्वमय हो गई तो अस्तित्व नास्तित्व तो धर्म है और वस्तु है धर्मी, अब धर्मी हो गया धर्ममय तो सब एकमेक हो गए। अब वहाँ वह व्यवस्था कौन बनायेगा कि ये जीवादिक वस्तु तो धर्मी हैं और अस्तित्व नास्तित्व धर्म हैं। फिर तो धर्मी और धर्ममें संकर दोष हो जायगा, आदिक रीतिसे अनेक दार्शनिक वस्तुको विधिनिषेधात्मक माननेमें तैयार नहीं हो रहे। उनके प्रति आचार्य देव कहते हैं—

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥१९॥

पदार्थकी विधेय प्रतिषेध्यात्मकता, विशेष्यता व शब्दगोचरता—सर्व जीवादिक पदार्थ विधेय प्रतिषेध्यात्मक अर्थात् अस्तित्व नास्तित्व स्वरूप हैं और विशेष्य हैं, शब्दके विषयभूत हैं। जैसे साध्य धर्म अपेक्षासे हेतु भी होता है और अहेतु भी होता है इसी प्रकार समस्त पदार्थ विधेयस्वरूप हैं और प्रतिषेध्य स्वरूप हैं। कारिका में कहे गए शब्दोंका अर्थ और भाव इस प्रकार है। विधेय नाम है अस्तित्वका।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो विधान किया जाय उसका नाम है विधेय। अस्तित्व इसका पर्यायान्तर है और जो प्रतिषेध किया जाय, व्यतिरेकरूप हो, अभावरूप बताया जाय वह है प्रतिषेध्य नास्तित्व सो यहां प्रयोग किया गया कि वस्तु विधेय प्रतिषेध्यात्मक है विशेष्य होनेसे। इस कारिकामें यद्यपि विशेष्य शब्द प्रथमान्त है किन्तु दार्शनिक पद्धतिके अनुसार यह हेतु बन जाता है। प्रत्येक पदार्थ अस्तित्व नास्तित्वरूप है क्योंकि विशेष्य होनेसे। इसमें उदाहरण दिया गया है साध्यधर्मका। जैसे कि साध्यधर्म अपेक्षासे हेतु होता है और अहेतु होता है, साध्यधर्मका जो आधार है उसे इस प्रसंगमें धर्मी माना। तब कहा गया है कि साध्यधर्म धर्म तो धर्मीमें होता है, तो साध्य यहां बनाया जा रहा है विधि और निषेधको। तो विधि निषेध यद्यपि धर्म है तो भी विधि निषेध धर्म होतेहुये भी इसमें लेकिन जब अन्य बात सिद्ध करनी हुई तो साधनाके प्रसंगमें यहीं धर्मी बन जाता है। तो साध्य हुआ धर्मी। उसका धर्म हुआ उत्पत्ति स्थिति विनाश याने उत्पादादिक अथवा कहिये उत्पत्तिमत्त्वादि। तो साध्यका धर्म अर्थात् उत्पत्तिमत्त्वादि यह हेतु भी है और अहेतु भी है। जब अनित्य साध्य बनाया जा रहा हो उस प्रयोग में यह उत्पत्तिमत्त्वादि हेतु बनता है अर्थात् अनुमान प्रयोग बन जाता है कि पदार्थ अनित्य है उत्पत्तिमान होनेसे। तो यहां जब अनित्य सिद्ध कर रहे हैं तो उत्पत्तिमत्त्व निर्दोष हेतु बन गया। और जब इस तरहका प्रयोग करें कि पदार्थ नित्य है उत्पत्तिमान् होनेसे तब यह उत्पत्तिमत्त्व अहेतु बन गया उत्पत्तिमत्त्व हेतु नित्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। तो जैसे साध्य धर्म अनित्यत्व साध्यकी अपेक्षासे हेतु है और नित्यत्व साध्यकी अपेक्षासे अहेतु बनता है क्योंकि उक्त साध्य धर्ममें गमकत्व और अगमकत्व दोनोंका योग है अर्थात् उत्पत्तिमत्त्वादि अनित्यत्वका तो गमक है और नित्यत्वका अगमक है क्योंकि इसी प्रकार साध्यका अविनाभाव और साध्यका विनाभाव इसमें पाया जा रहा है। साध्य जब अनित्य बना तो वहां साध्यके साथ अविनाभाव है हेतुका और जब नित्यत्व साध्य बनाया जायगा तो साध्यके साथ विनाभाव है, मायने साध्यके बिना उत्पत्तिमत्त्व हेतु हो गया है इस कारण इस हेतुमें गमकत्व और अगमकत्व दोनोंका सम्बन्ध है। तो निर्दोष उदाहरण व हेतु वाले इस तरहके अनुमानसे जीवादिक पदार्थ अस्तित्व नास्तित्वात्मक सिद्ध होता ही है।

वस्तुको विधेयप्रतिषेध्यात्मक, विशेष्य व शब्दगोचर सिद्ध करने वाले अनुमान प्रयोग—यहां अनुमान प्रयोग यों बना कि सर्व पदार्थ अस्तित्व नास्तित्व स्वरूप हैं विशेष्य होनेसे। तो यहां विशेष्यत्व हेतु कहा गया, वह असिद्ध नहीं है। याने सर्व पदार्थोंमें विशेष्यपना सिद्ध होता है। अनुमान प्रयोग भी करें कि ये जीवादिक पदार्थ विशेष्य हैं शब्द गोचर होनेसे हेतुकी तरह। इस अनुमानसे इन जीवादिक पदार्थोंमें विशेष्यत्व हेतु सिद्ध होता है तो यहां तक यह सिद्ध हुआ कि जीवादिक पदार्थ अस्तित्व नास्तित्वरूप हैं विशेष्य होनेसे और ये पदार्थ विशेष्य हैं शब्दगोचर होनेसे। अब यहां कोई आशंका कर सकता है कि हमको तो यह जचता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि पदार्थ शब्दगोचर हो नहीं है। पदार्थमें शब्दगोचरत्व असिद्ध है। तो इस शंका के उत्तरमें कहते हैं कि जीवादिक पदार्थ शब्दगोचर हैं इसको भी सिद्ध करने वाला अनुमान प्रयोग इसी कारिकामें ध्वनित हो रहा है। जीवादिक पदार्थ शब्दगोचर हैं विशेष्य होनेसे, हेतुकी तरह। इस अनुमानसे जीवादिक पदार्थोंमें शब्दगोचरता सिद्ध है। इस तरह उन्हीं जीवादिक पदार्थोंमें विशेष्यत्व और शब्दगोचरत्व परस्पर हेतु देकर बताया है। किन्तु इसमें इतरेतराश्रय दोष न समझ लेना कि जब पदार्थ शब्द-गोचर सिद्ध हो लें तब तो वह विशेष्य सिद्ध होगा और जब विशेष्य सिद्ध हो ले तब वह शब्द गोचर सिद्ध होगा। ऐसा इतरेतराश्रय दोष क्यों नहीं आता ? उसका कारण यह है कि जो दार्शनिक सर्वथा वस्तुको अनभिलाप्य कह रहे हैं उनको शब्द गोचर सिद्ध करना है तो उनके प्रति शब्दगोचरत्व साध्य बनाया गया और उसमें विशेष्यत्व हेतु कहा गया। और, जो सर्वथा अविशेष्य मानते हैं वस्तुको अर्थात् शब्दाद्वैतवादी हैं उनके प्रति विशेष्यत्व सिद्ध करनेके लिए शब्दगोचरत्व साधन रूपसे कहा गया है। इसी प्रकार जो दोनों ही बातें नहीं मानते न तो वस्तुको विशेष्य मानते हैं और न शब्दगोचर मानते हैं यों दोनोंका असत्व कहने वाले दार्शनिकके प्रति वस्तुत्व हेतु कहना चाहिए, क्योंकि वस्तुत्व हेतु दोनोंके मतमें प्रसिद्ध है। विशेष्य नहीं मानते हैं और शब्दगोचर नहीं मानते वे भी वस्तुत्व मानते हैं और शब्दगोचर नहीं मानते वे भी वस्तुत्व मानते हैं। तो दोनोंके यहाँ प्रसिद्ध विशेष्यत्व हेतुका यहाँ प्रयोग समझना चाहिए और दोनोंका ही सत्त्व न मानने वालोंके प्रति जब वस्तुको विधेय प्रतिषेध्यात्मक सिद्ध कर रहे हों तब वस्तुत्वात् यही हेतु यहाँ भी प्रयुक्त करना चाहिए। वस्तुत्वात् इस हेतुसे वस्तु विधेय प्रतिषेध्यात्मक सिद्ध हो जाता है तथा इसी हेतुसे वस्तु शब्दगोचर सिद्ध होता है। इस प्रकार इस कारिकामें उन सभी दार्शनिकोंको आशंकाका निराकरण किया गया है और यह सिद्धान्त पुष्ट किया गया है कि जो भी सत् हैं वे समस्त सत् विधेय प्रतिषेध्यात्मक ही होते हैं।

अस्तित्व आदि विशेषणोंकी अप्रमेयताकी आशङ्का—यहां निरंशवादी दार्शनिक शङ्का करता है कि प्रत्यक्षकी विधिमें अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानमें तो वस्तु स्व-लक्षण ही ज्ञात होती है अस्तित्व नास्तित्व आदि विशेषण प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं जाना जाता है क्योंकि निर्विकल्प दर्शन द्वारा जो वस्तु परिचयमें आता है वह स्वलक्षण-मात्र है। जो है सो प्रतिभासमें आया। परन्तु अस्तित्व या नास्तित्व आदिक कोई विशेषण प्रतिभासमें नहीं आते क्योंकि प्रत्यक्ष विधि तो समस्त विकल्पोंसे रहित है, वह तो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष विकल्पको जब विषय ही नहीं करता तो अस्तित्व नास्तित्व आदिक विशेषण कैसे ग्रहणमें आयेंगे ? अस्तित्व नास्तित्व आदिक व्यवहारोंकी सिद्धि तो सविकल्प ज्ञानमें ही होती है। इस तरह स्वलक्षण ही वस्तु है, पर अस्तित्व आदिक कोई तत्त्व चीज नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अस्तित्वादिक विशेषणोंकी प्रतीति सिद्ध करते हुए उक्त शङ्का समाधान

उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि निरंशवादका यह कहना कि केवल स्वलक्षण ही वस्तु है, वही प्रतिभासमें आता है अस्तित्व आदिक नहीं, सो यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। अस्तित्व आदिक अनेक विकल्पात्मक वस्तु अंश सहित ही प्रतीतिमें आरही है, अर्थात् वस्तु सत् है, असत् है, नित्य है अनित्य है। जो जो वस्तुमें धर्म हैं उन समस्त धर्मोंसे युक्त है वस्तु यों प्रतीतिमें आती है। यह निरंशवादी ऐसा तो स्वीकार करता है, अपना अभिप्राय बनाता है कि कोई पदार्थ किसी अस्तित्वादिक विशेषणसे विशिष्ट ग्रहणमें आ रहा है तो वहाँ वह पदार्थ किस विधिसे ग्रहणमें आता है कि प्रथम ग्रहणमें आया है स्वलक्षण, फिर उसमें विशेषण विशेष्यका परिचय हुआ, उसके अनन्तर विशेषण विशेष्यके सम्बन्ध ज्ञानके कारणसे वहाँ लोक स्थित हुई, लोकोंका परस्पर उस प्रकारका व्यवहार हुआ। उसके संकलनसे अर्थात् उतनी बातोंका जब संकलन हो जाता तब जाकर वह वस्तु विशेषण विशिष्ट रूपसे ग्रहणमें आता है अन्य प्रकारसे नहीं, इतना तो अभिप्राय रख रहे हैं निरंशवादी लोग, अब यहाँ देखो कि ऐसे अभिप्रायमें भी विधि प्रतिषेध स्वभाव वाले वस्तुके उस प्रत्येक तत्त्वका, वस्तुका, विधिका, प्रतिषेधका, प्रत्येक तत्त्वका दर्शन होना अवश्यंभावी हो गया है वस्तुका ही दर्शन होता है विधि और प्रतिषेध स्वभाव वाले विशेषणोंका दर्शन नहीं होता है यह नहीं कहा जा सकता। जब वस्तुका दर्शन हुआ तो वह वस्तु है विधि प्रतिषेधात्मक तो उस वस्तुके दर्शनके ही साथ विधि और प्रतिषेध उन स्वभाव विशेषणोंका भी ग्रहण हो जाता है। जैसे पदार्थके निरखते ही ग्रहण करनेका अर्थ ही यह है कि यह यही है, अन्य नहीं है। तो ग्रहण करनेके ही साथ विधि और प्रतिषेध भी ग्रहण हो जाता है। विधि और प्रतिषेधका ग्रहण न हो तो वस्तुका ही ग्रहण नहीं है।

सदसत्स्वभाव शून्य स्वलक्षणका दर्शन माननेपर सत्त्व असत्त्वका सविकल्पज्ञानसे भी निर्णय किये जानेकी अशक्यता

सदसत्स्वभाव शून्य स्वलक्षणका दर्शन माननेपर दूसरा दोष यह है कि यदि सत् असत् स्वभावसे रहित स्वलक्षणका दर्शन माना जाय अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा केवल स्वलक्षण जाना गया, जिसमें न सत् स्वभाव समझा गया न असत् स्वभाव समझा गया याने वास्तवमें स्वलक्षणमें सत् स्वभाव और असत्स्वभाव हैं ही नहीं यों सत् असत् स्वभावसे रहित स्वलक्षणका दर्शन माना गया, तो सदसत्स्वभावसे रहित स्वलक्षणका दर्शन माननेपर अब उस दर्शनके पश्चात् होने वाला जो सविकल्प ज्ञान है उस सविकल्प ज्ञानसे भी सत्त्व और असत्त्वका निर्णय नहीं बन सकता। क्योंकि दर्शनमें तो सत्त्व असत्त्व जाना नहीं और दर्शनके बाद जो सविकल्प ज्ञान बनता है उसका प्रयोजन यह मानते कि दर्शनसे जाने हुए विषय किए हुए पदार्थका ही निर्णय करदे, इसीलिए तो सविकल्पज्ञानको माना है। अब दर्शनमें सत्त्व असत्त्व जाना नहीं गया। तो उसके पश्चात् होने वाले सविकल्प ज्ञानसे सत्त्व असत्त्वका निर्णय कैसे होगा ? क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कभी ऐसा होता है कि पीलके दर्शनके पश्चात् जो सविकल्प ज्ञान बना उससे वहाँ नीलपनेका निर्णय किया गया हो। जैसा दर्शन किया हो वैसा ही तो उसके बाद निर्णय होगा। पीतलक्षणका दर्शन किया तो उसके बाद होने वाले सविकल्पज्ञानमें पीतपनेका ही तो निर्णय होगा कि नीलादिकका निर्णय हो जायगा? ऐसा तो माना नहीं खुद भी और न प्रतीतिमें आता कि दर्शन तो हो और कुछका उसके बाद ज्ञान द्वारा निर्णय होता है तो वह ज्ञान अथवा वह दर्शन मिथ्या कहलायगा? तो मानना होगा कि दर्शनके द्वारा भी विधि विषेधात्मक वस्तुका दर्शन होता है। इस कारण प्रमाणित किये गये ये विधि और प्रतिषेध स्वलक्षणकी सविकल्पताको सिद्ध करते हैं अर्थात् स्वलक्षणमें विधि और प्रतिषेध स्वभाव है इस प्रकार इन दोनों अंशोंसे तन्मयताको सिद्ध करते हैं।

स्वलक्षणकी सामान्यविशेषात्मकताका निश्चयन यदि विधि और निषेधरूप भेद वस्तुमें न माना जाय याने विधि और निषेध धर्म है हो नहीं, ऐसा स्वीकार करनेपर तो यह वस्तु सत् है यह असत् है ऐसा उसमें दर्शन न बन सकेगा। अथवा मैं इसको ग्रहण करता हूँ इसको नहीं, इसे जानता हूँ इसको नहीं, इस प्रकार के विकल्प उत्पन्न न हो सकेंगे। किन्तु होता तो है ही सदसद्विषयक दर्शन और निर्णय। दर्शन भी विकल्परूपमें हो जाता है और ऐसा ही विकल्पसे ग्रहण भी होता है कि मैं इसको जानता हूँ इसको नहीं। तब यह सिद्ध हुआ कि वस्तु अथवा स्वलक्षण सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य विशेषात्मक वस्तुको ही स्वलक्षण कहा गया है। किन्तु समस्त विकल्पोंसे रहित स्वलक्षण नहीं है, जो केवल विशेषमात्र हो अथवा सामान्य मात्र हो या परस्पर अपेक्षा न रखकर सामान्यस्वरूप और विशेषस्वरूप हो ऐसा कोई स्वलक्षण नहीं होता। प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक ही है, क्योंकि वस्तु केवल सामान्यरूपसे व्यवस्थित नहीं या निरपेक्षतया सामान्य और विशेषरूपसे व्यवस्थित नहीं है किन्तु सामान्य विशेषात्मक ही वस्तुका स्वरूप है। उसे न केवल विधिरूप कह सकेंगे न केवल निषेधरूप कह सकेंगे, किन्तु जात्यन्तरस्वरूप है और ऐसे जात्यंतर स्वरूपसे लक्ष्यमें कुछ आया हुआ पदार्थ ही स्वलक्षण कहलाता है, ऐसा माननेमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है।

एकधर्मीमें विधिप्रतिषेध धर्मका तादात्म्य लक्षण सम्बन्ध—अब यहाँ कोई जिज्ञासा करे कि विधेय और प्रतिषेध्यका धर्मी कौन है? अर्थात् विधि और निषेध ये जो धर्मी सिद्ध किए जा रहे हैं, इनका आश्रयभूत आधार कौन है और फिर विधि और प्रतिषेधमें सम्बन्ध क्या है? जिससे कि विशेषण विशेष्य भाव समझा जा सके कि पदार्थ विधेयप्रतिषेध्यात्मक है। ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसका समाधान करते हैं कि सुनो! यहाँ धर्मी दो सिद्ध किए जा रहे हैं—अस्तित्व और नास्तित्व। तो इन दोनों धर्मोंका धर्मी है सामान्य। निरंशवादियोंके सिद्धान्तके अनुसार जहाँ विशेषण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विशेष। भाव या विकल्प या निर्णय किया जाता है उसको सामान्य शब्दसे कहा करते हैं वे तो सामान्य अर्थात् सर्वसाधारण जनोंकी दृष्टिसे अभिमत पदार्थ तो अस्तित्व नास्तित्व धर्मा धर्मी है। पदार्थमें याने उस धर्मीमें अस्तित्व नास्तित्व दोनों रहते हैं। उनका परस्पर सम्बन्ध है तादात्म्यरूप अर्थात् पदार्थ हो विधिनिषेधात्मक है। तो तादात्म्यरूप ही तो सम्बन्ध हुआ। वही विधि निषेधरूप है। वही निषेध विधिरूप है स्वरूपसे सत्त्व है पररूपसे असत्त्व है। यों स्वरूपसे सत्त्व व पररूपसे असत्त्व यह उभय धर्म उस वस्तुमें तन्मयतासे है, इस कारण विधेय और प्रतिषेध्यमें तादात्म्य लक्षण सम्बन्ध है। अन्य सम्बन्धकी कल्पना करनेपर अनवस्था दोष आयगा। समवाय या अन्य कोई सम्बन्ध माननेपर कि उस सम्बन्धके द्वारा विधि और प्रतिषेधमें सम्बन्ध बना तो अब विधि और प्रतिषेधका इनके सम्बन्धका उस सम्बन्धान्तरसे क्या सम्बन्ध है? उसका सिद्ध करनेके लिए फिर अन्य सम्बन्धान्तर मानना होगा। यों अनवस्था दोष आयगा। तब बात यही सिद्ध होती है कि विधेय और प्रतिषेध्यमें तादात्म्य लक्षण सम्बन्ध है।

प्रत्यक्ष एवं परोक्षज्ञानमें सामान्यविशेषात्मक वस्तुका ही निर्बाध परिचय— विधेयप्रतिषेध्यात्मक स्वलक्षण होनेके कारण निरंशवादियोंका यह कहना सारभूत नहीं है कि जात्यादिमान याने सामान्यादिक धर्म वाले पदार्थोंका प्रत्यक्षसे ग्रहण नहीं हो सकता याने प्रत्यक्षके द्वारा जाति सामान्य आदिक वाले पदार्थोंका ग्रहण नहीं होता। यह कहना सारभूत नहीं है तथ्य तो यह है कि सामान्य विशेषादिक न हों उनका अभाव हो तो प्रत्यक्षसे ग्रहण होना सम्भव नहीं है। देखिये— जो कुछ प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण होता है, जो प्रमाणभूत किया जाता है उसमें यह क्रम नहीं पड़ा हुआ है कि पहिले सत्त्व असत्त्व विशेषणसे विशिष्ट वस्तुके ग्रहणमें पहिले सत्त्वादिक सामान्य रूप विशेषणका ग्रहण किया जाता हो और उसके पश्चात् फिर विशेष्यका ग्रहण किया हो विशेषणका ग्रहण करके विशेष्यके ग्रहणके विशेष्यका ग्रहण किया गया हो और फिर उस विशेष्यके ग्रहणके बाद विशेष्य विशेषणके सम्बन्धका ग्रहण किया हो और फिर उस विशेष्य विशेषणके व्यवहारके कारण फिर लोकस्थितिका ग्रहण किया हो अर्थात् सर्वजन जिस प्रकारसे समझते हैं व्यवहार करते हैं उसका ग्रहण किया गया हो और फिर लोकस्थितिके ग्रहणके अनन्तर फिर उसका संकलन किया गया हो याने वस्तुके जाननेका सम्बन्ध और योग फिट बैठाया गया हो सो ऐसा प्रतीतिक्रम सम्भव नहीं है, घटित नहीं होता है, क्योंकि जो कुछ प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञानमें क्षयोपशमके अनुसार निर्बाध अनुभव हो रहा है वह विशेषण विशेष्यात्मक अथवा सामान्य विशेष स्वरूप वस्तुका ही ग्रहण होता है। होता है क्षयोपशमके अनुसार, लेकिन सभी जीवोंको जितना भी वस्तुओंका बोध होता है निर्बाध इस तरहसे ही बोध होता है कि जैसे वह सामान्य विशेषात्मक वस्तु है, उससे विपरीत अर्थात् केवल सामान्यरूप केवल विशेष विशेषरूप अथवा सामान्य और विशेष दोनोंसे रहित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
या निरपेक्ष सामान्य विशेषरूप वस्तुकी प्रतीति नहीं होती।

निर्विकल्प प्रत्यक्ष, सविकल्प प्रत्यक्ष व शाब्दिक बोधमें विषयभेदके एकान्तका निराकरण—जब प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञानमें जात्यंतर अर्थात् सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ही निर्बाध रूपसे बोध हुआ तब यह मानना होगा कि दर्शन और विकल्प और शब्द इनके एकान्ततः विषयभेद नहीं है। जैसे कि निरंशवादी कहते हैं कि प्रत्यक्षज्ञानका विषय और है सविकल्प ज्ञानका विषय और है और शाब्दिक ज्ञान का, आगमका विषय अन्य है सो बात नहीं है। वस्तु एक वही प्रतिभासमें आता है। सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ही दर्शनके द्वारा प्रतिभास हुआ था, वही सविकल्पज्ञानके द्वारा जाना गया और फिर शब्दों द्वारा उसीका ही प्रतिपादन किया गया तब दर्शन विकल्प और अभिधानका एकान्तसे विषयभेद नहीं कहा जा सकता। हाँ कथंचित् प्रतिभासभेद है वह रहा आये, कोई ज्ञान स्पष्ट रूपसे जगता है, कोई अस्पष्ट रूपसे जगता है तो प्रतिभासकी पद्धतिमें भेद हुआ तिसपर भी प्रतिभासमें वही पदार्थ जाना गया, कहा गया जो पदार्थ दर्शनके द्वारा ग्रहणमें आया। तो यह मानना पड़ेगा अब कि शब्दों द्वारा विशेषण भाव व विशेष्य भाव कहा जाता है सो यह विशेषण विशेष्यात्मक वस्तु सविकल्पज्ञानसे भी ग्रहणमें आया और ऐसा ही सविकल्प, विशेषण विशेष्यात्मक सामान्य विशेष स्वरूप पदार्थ दर्शनमें प्रतिभात हुआ। तब इसका निराकरण निरंशवादी नहीं कर सकता कि वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है, विधेय प्रतिषेध्यात्मक है।

दृष्टान्तपूर्वक, दर्शन, सविकल्पज्ञान व शाब्दिक बोधके विषयभेदाभावकी सिद्धि—दर्शनमें सविकल्प ज्ञानमें और शाब्दिक बोधमें सविकल्प ज्ञानमें और शाब्दिक बोधमें प्रतिभास उस एक विषयका ही हुआ है—इसके लिए दृष्टान्त लीजिए कि जैसे समीपमें खड़े हुए और दूरमें खड़े हुए पुरुषको किसी एक वृक्षका प्रतिभास हो रहा है तो उनके प्रतिभासमें एक पदार्थ आ रहा है। लेकिन निकट रहने वालोंको तो स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है और दूर रहने वालेको अस्पष्टरूपसे प्रतिभास हो रहा है, सो भले ही प्रतिभासकी पद्धतिमें भेद है किन्तु जाना तो उस एक ही वृक्षको ना। यदि प्रतिभासभेदसे विषयभेदका आग्रह कर लिया जाय तो योगियोंका प्रत्यक्ष और लौकिक जनोंका प्रत्यक्ष जब एकको विषय कर रहा है तो वहांपर भी विभिन्न विषय होनेका प्रसंग आ जायगा। सामान्य विशेषात्मक वस्तु ही प्रत्यक्षमें आया है उसको प्रत्यक्षने ग्रहण किया इस कथनसे यह भी समझ लेना चाहिए कि वस्तुको विधिप्रतिषेध्यात्मक सिद्ध करने वाले अनुमानमें कथित् उदाहरणमें जो बात कही गई है वह भी प्रत्यक्ष प्रमाणके विषयभूत है। उदाहरणमें बताया गया है कि हेतु साध्यकी अपेक्षासे हेतु कहलाता है। और असाध्यकी अपेक्षासे अहेतु कहलाता है जैसे धूम आदिक हेतु कहे गए तो वह धूम आदिक है साध्य धर्मीका धर्म, सो वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साध्यकी अपेक्षा तो हेतु है और जो साध्य नहीं किया जा रहा उसकी अपेक्षा अहेतु है। तो अब इसलिये उस साध्यधर्मीके धर्ममें हेतुत्व विशेषण आया, अहेतुत्व विशेषण आया, तो इस तरहका परिज्ञान भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी तरह कृतकत्व अनुमानके प्रमाणमें जो हेतु उद्धृत किया गया है उसमें भी साध्य धर्ममें वह कृतकत्व तो व। जब अनित्य सिद्ध किया जा रहा हो उसकी अपेक्षासे तो कृतकत्व है हेतु और जब नित्य सिद्ध कर रहे हों तो उसके लिए कृतकत्व है अहेतु तो उस कृतकत्वमें हेतुत्व विशेषण है, अहेतुत्व विशेषण है। उससे युक्त उस हेतुका प्रत्यक्षसे बोध हो ही रहा है। धूम हेतु बताया जाता है अग्निको सिद्ध करनेके लिए धूम हेतु कहा तो वह हेतु बन गया। पर पानी सिद्ध करनेके लिए तो धूम हेतु न बनेगा। इसी प्रकार कृतकत्व हेतु दिया जाता है विनाश सिद्ध करनेके लिए। पदार्थ अनित्य है, उसका विनाश होता है, तो विनाश साध्यके लिए कृतकत्व हेतु है और नित्यता सिद्ध करनेके लिए कृतकत्व अहेतु है तो इसमें जैसे हेतु स्वभाव बना अहेतु स्वभाव बना तो इन स्वभावोंसे शंकाकार धूम आदिक कृतकत्व आदिकका साक्षात्कार कर लेवे समझ लेवें कि हाँ बात यह सही है कि यह ही हेतु स्वभाव वाला है और यही अहेतुस्वभाव वाला है। यदि ऐसा निर्बाध बोध न हो तो फिर विशेष्यका ज्ञान किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं हो सकता। अतः मानना होगा कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, विधेय प्रतिषेध्यात्मक है तो वस्तुमें अस्तित्व विशेषण भी है और नास्तित्व विशेषण भी है।

विशेषणत्वको सिद्ध करनेका आधारभूत मूल प्रसंग—मूल प्रसंग यह चल रहा है कि वस्तु विधिप्रतिषेधात्मक है उसमें केवल विधिको ही मानने वालोंके प्रति यह कहा गया कि अस्तित्व अपने प्रतिषेध्यके साथ नास्तित्वके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे और इसही प्रकार केवल नास्तित्वको मानने वालोंके प्रति यह कहा गया कि नास्तित्व अपने प्रतिषेध्यकेसाथ अस्तित्वके साथ अविनाभावी है जो लोग अस्तित्व और नास्तित्वको विशेषण ही मानना चाहते उनके प्रति यह कहा गया कि वस्तु विधेय प्रतिषेध्यात्मक है विशेष्य होनेसे तो वस्तुमें विशेष्यता और वस्तुके अस्तित्वधर्ममें विशेषणत्व सिद्ध किया जा रहा है तो जब शंकाकारकी ओरसे इसके ऊहापोहके बीच जब यह कहा गया कि प्रत्यक्ष विधिमें तो वस्तु स्वलक्षण मात्र ही प्रतिभासमें आती है, किन्तु अस्तित्वादिक विशेषण नहीं तब उनके प्रति अस्तित्व और नास्तित्वको विशेषण सिद्ध किया जा रहा है और अस्तित्व नास्तित्वको विशेषण सिद्ध करनेके प्रयोगमें उदाहरण दिया गया है यह जैसे कि साध्य धर्म अपेक्षासे हेतु भी है व अहेतु भी है। तो साध्य धर्मको हेतुत्व विशेषणसे दिखाया गया है और अहेतुत्व विशेषणसे दिखाया गया है।

हेतुकी विशेषणोंसे जानकारी न बताने पर दोषापत्तियाँ—हेतु को विशेषणोंके रूपमें समझने के लिये शंकाकार से पूछा जा रहा कि शंकाकार यह बताये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जब धूम हेतु बताया गया अग्निको सिद्ध करनेके लिए तो उस धूममें हेतुत्व और अहेतुत्व दोनों ही बातें हैं कि नहीं ? अग्निको सिद्ध करनेके प्रसंगमें तो धूम हेतुत्व विशेषण वाला है और पानीको साध्य सिद्ध करनेमें धूम अहेतुत्व विशेषण वाला है यह बात माननी ही पड़ेगी कि यदि नहीं मानते तो देखिये जब धूम आदिकको हेतुत्व और अहेतुत्वके विशेषणसे नहीं मानते तो ऐसा वह शंकाकार विशेष्य धूमको कैसे समझ सकेगा कि धूम तो विशेष्य है । इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे इस अनुमान प्रयोगमें अग्नि भी विशेष्य है और धूम भी विशेष्य है पर यह धूम विशेष्य को कैसे समझ पाया कि यह हेतु है, जब कि धूमके सम्बन्धमें यह जान लिया कि यह साध्य के साथ तो अविनाभावी है और असाध्यके साथ विनाभावी है । तो जो साध्यके साथ अविनाभावी हो, जिसमें साध्यके साथ अविनाभावीपना पाया जाय उसमें हेतुत्व कहा जायगा । तो साध्यकी दृष्टिसे धूममें हेतुत्व आया और जिसे साध्य न किया जा सकेगा ऐसे जल को साध्य बनानेके प्रसंगमें धूम को अहेतुत्व रूप में निरखा जायगा । यदि शंकाकार हेतुत्व और अहेतुत्व विशेषणको नहीं समझ पा रहा है धूममें तो धूम को भी न समझ पायगा । दूसरा दृष्टान्त लीजिए ! जहाँ अनुमान प्रयोग किया कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे तो कृतकत्व हेतु का साध्य है विनश्वरता । कृतकत्व बता कर शब्दकी विनश्वरता ही तो सिद्ध की जाती हो तो विनश्वरता साध्य बनानेपर कृतकत्वमें हेतुपना आया और नित्यत्व को साध्य बनानेपर कृतकत्वमें अहेतुपना आया । तो अब यह समझमें आ रहा है कि कृतकत्व साधनमें हेतुत्व भी है अहेतुत्व भी है तो हेतुत्व विशेषणसे युक्त और अहेतुत्व विशेषणसे युक्त रूपसे जो कृतकको न जान रहा हो तो विशेष्य कृतकको कैसे जान पायगा ? और जब कृतकत्व धूमवत्त्व इन विशेष्योंको न जान सका हेतुओंको न समझ सका तो विशेष्य साध्योंको भी कैसे समझ लेगा ? अनुमान प्रसंगमें जब धूमको न जान पाया तो अग्निको कैसे जान लेगा ? कृतकको नहीं जान पाया तो विनश्वरको कैसे जान लेगा ? लेकिन ऐसा नहीं है, शंकाकार जान रहा है और सभी पुरुष समझ रहे हैं कि यह हेतु है, यह साध्य है और यह हेतु इसी साध्यके लिए हेतु है, अन्यके लिए अहेतु है ! ये सब बातें साधारण जनोंकी प्रतीतिमें आ रही हैं । और शंकाकार भी मान रहा है तब उन हेतुओंको यह शंकाकार साक्षात्कार करले अर्थात् यह मानले कि विशेषण और विशेष्य ये सब प्रत्यक्षगोचर होते हैं ।

साध्यधर्मीधर्ममें साध्येतरकी अपेक्षासे हेतुत्व व अहेतुत्वका स्पष्ट परिचय—अनुमान प्रयोगमें जिन हेतुओंका प्रयोग किया गया है सो वे इस प्रकारसे साक्षात्काररूप होते हैं कि साध्यकी अपेक्षा होनेपर तो उनमें साधनका स्वभाव पाया जा रहा है और जो साध्य नहीं हैं उनकी अपेक्षा होनेपर हेतुमें साधन स्वभाव नहीं पाया जा रहा, असाधनत्व पाया जा रहा तो साधनत्व और असाधनत्व स्वभावसे उन धूमकृतकत्व आदिक हेतुवोंका साक्षात्कार करनेमें कोई विरोध नहीं है । हाँ यदि साध्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

असाध्यकी अपेक्षा न रखी जाय तो उन हेतुवोंके साक्षात्कार करनेमें विरोध है। किसी भी एक जगह अर्थात् किसी भी साध्यको सिद्ध करने वाले हेतुवोंके साधनत्व रहें और असाधनत्व रहें इसमें कोई विरोध नहीं है। सभी जन जानते हैं कि अग्निको सिद्ध करनेमें धूम साधन है और पानीको सिद्ध करनेमें धूम असाधन है। तो इस तरह जो उदाहरण दिया गया है वह प्रसिद्ध है। उदाहरण यह दिया गया है कि हेतुमें हेतुत्व धम और अहेतुत्व धर्म विशेषण हुए, इसका साक्षात्कार हो जाता है तो ऐसे ही विधि और प्रतिषेध ये भी विशेषण होकर भी अथवा विशेष्य होकर भी प्रत्यक्षके विषयभूत हो जाते हैं। तो तब यह उदाहरण प्रसिद्ध हो गया। वादी और प्रतिवादी दोनोंकी सम्मतिमें आ गया तब यह फल निकला कि जो अभिधेय है वह विशेष्य होता है।

अनेक रहस्योंका कथन तथा अनेक अपमतोंका निराकरण—इस कारिकामें अनेक बातें सिद्ध की जा रही हैं। वस्तु विधि निषेधात्मक है विशेष्य होने से, विधि और निषेध विशेष्य है शब्दके विषयभूत होनेसे। विधि निषेध अभिधेय है, वक्तव्य है विशेष्य होनेसे। इन सब अनुमान प्रयोगोंमें जो जो भी साध्य बनाये गए हैं निर्बाध सिद्ध हो जाते हैं। तो यह फलित अर्थ मान लेना चाहिए कि जो अभिधेय है वे सब विशेष्य होते हैं जैसे उत्पत्ति आदिक साधन साध्य और असाध्यकी अपेक्षासे हेतु भी है और अहेतु भी है उसी प्रकार विवादापन्न जो सत्त्व अभिधेयत्व आदिक हैं वे भी विशेष्य हैं, क्योंकि शब्दोंके द्वारा अभिधेय हैं और ये ही सत्त्व अभिधेय आदिक विशेषण भी हैं। जब प्रयोग किया कि सब क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे तो उन सब प्रयोगोंमें यह देख लीजिए कि प्रत्येक शब्द विशेषणरूप भी बन जाता है और विशेष्य रूप भी बन जाता है। किसी भी शब्दमें अथवा सत्त्वादिक धर्ममें विशेषणात्मकता भी है और विशेष्यात्मकता भी है, उनमें विरोध नहीं होता। हाँ विशेषण मानने की अपेक्षा अन्य हैं और विशेष्यपना समझनेकी अपेक्षा अन्य है। अथवा अब दूसरे अनुमान प्रयोगपर दृष्टि कीजिए जो विशेष्य होते हैं वे अभिधेय होते हैं, शब्दों द्वारा कहे जा सकते हैं जैसे उत्पत्ति आदिक और विशेष्य है अस्तित्व आदिक वस्तुके रूप इस कारण ये अस्तित्व आदिक अभिधेय याने कहे जाने योग्य हैं। इस तरह जो दार्शनिक वस्तु के स्वरूपको अवक्तव्य कहता था उसके मंतव्य का निराकरण हो जाता है। जो दार्शनिक अस्तित्व आदिकमें विशेषण नहीं मानते थे अथवा विशेष्य नहीं मानते थे उनके मंतव्य का भी निराकरण हो गया। और मूल अनुमान में कि समस्त वस्तुयें विधेयप्रतिषेध्यात्मक हैं जैसे उत्पत्ति आदिक साधन साध्यकी अपेक्षासे हेतु है और असाध्यकी अपेक्षासे अहेतु है, तो इसी प्रकार सत्त्व और अभिधेयत्वादिक भी धर्म विशेषणरूप भी हैं और विशेष्यरूप भी है, इस तरह सिद्ध होता है कि समग्र वस्तु विधेय प्रतिषेध्यात्मक है, इस कारिकामें मुख्यतया तृतीय भङ्ग की उत्पत्ति बतायी गई है कि वस्तुमें सत्त्व और असत्त्व दोनों हैं। द्रव्य दृष्टिसे तो वस्तु में सत्त्व है और पर्याय दृष्टिसे व्यतिरेक दृष्टिसे वस्तुका असत्त्व है, और इन दोनों को ही जब क्रमसे विवक्षित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया जाता है तो वस्तु उभयात्मक है। तो वस्तु स्यात् अस्ति स्यात नास्ति इस तृतीय भङ्ग का इस कारिकामें समर्थन किया गया हैं। अब जिज्ञासु जानना चाहता है कि शेष के भङ्ग जो चार और शेष रहे हैं वे किस प्रकार निकालना चाहिए ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर आचार्यदेव अगली कारिकामें कहते हैं—

शेष भंगश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः।
न च कश्चिद्विरोधोस्ति मुनीद्र तव शासने ॥२०॥

प्रथम तीन भङ्गोंकी सिद्धिके लिए प्रयुक्त हेतुओंसे शेषभङ्गोंकी भी सिद्धि—शेषभङ्ग भी यथोक्त हेतुओंके प्रयोगसे सिद्ध कर लेना चाहिए। उनकी सिद्धिमें भी कोई विरोध नहीं आता। सो हे मुनीन्द्र तुम्हारे शासनमें वस्तु स्वरूपकी सिद्धिमें पूर्वापर कहीं भी विरोध नहीं है। पहिली कारिकाओंमें स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति इन दोनों भङ्गोंको युक्तिपूर्वक सिद्ध किया गया है तब शेष भङ्गोंका अर्थ लगाना कि ५ भङ्ग सिद्ध करना है और इसके ऊपरकी कारिकामें तृतीय भङ्गका भी वर्णन किया है, उससे यह अर्थ लगाता है कि ३ भङ्ग तो बताये जा चुके हैं अब शेषके चार भङ्ग सिद्ध करना है। तो शेषके चार भङ्ग सिद्ध करनेमें वे ही हेतु समर्थ हैं जिनसे प्रथम, द्वितीय, तृतीय भङ्ग सिद्ध किया गया है। वस्तु विधेय प्रतिषेध्यात्मक है, इस कथनसे तृतीय भङ्गकी सिद्धि की गई है। अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है यह तृतीयभङ्ग, तब वह सिद्ध करता है कि वस्तु कथंचित् अवक्तव्य है। ये तीन भङ्ग वक्तव्य हैं और स्पष्ट वक्तव्य हैं। तो जब ये वक्तव्य हैं तो वक्तव्यत्व धर्म अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है। वक्तव्यका प्रतिषेध्य है अवक्तव्य सो इसमें ध्वनित होता है कि वस्तु स्यात् अवक्तव्य है इस तरह चतुर्थभङ्ग इन ही हेतुओंसे सिद्ध करना चाहिये।

पूर्वोक्त हेतुओंसे ही शेष भङ्गोंकी सिद्धिका विवरण—शेष भंगोंको सिद्ध करने के लिए इस कारिका में जो यह 'यथोक्तनययोगत:" यह जो हेतु बताया गया है अर्थात् उक्त हेतुवों के योगसे तो इसमें ये सब हेतु ग्रहण कर लिए जाते हैं, विशेषणत्वात् विशेष्यत्वात् अभिधेयत्वात्, वस्तुत्वात। इन चार हेतुओंसे शेष भंगोंकी भी सिद्धि होती है, इस कारण प्रकृत्य आदिक भी किसी एक धर्मके साथ, जो कि अपने से विरुद्ध हो याने वक्तव्यपने के स्वभावके साथ अविनाभावी सिद्ध होता है अर्थात् किसी धर्मीमें अवक्तव्यत्व धर्म है, क्योंकि वक्तव्यपना भी अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी है अर्थात् प्रथम जो तीन अंग हैं—स्यात अस्ति स्यात नास्ति स्यात अस्ति नास्ति, ये वक्तव्य कहलाते हैं और यदि अवक्तव्य कहलाते हैं और यदि अवक्तव्य है तो वक्तव्य हो तभी वक्तव्य की बात कही जा सकती है। और अब वक्तव्यपना वक्तव्यत्व के साथ अविनाभावी है याने वक्तव्य को गौण करके अवक्तव्यको ही प्रधानतया कहा जाता है। तो वक्तव्यके तीन धर्म हैं, उनके विरुद्ध है अवक्तव्यपना। तो इस तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चतुर्थ भंग की सिद्धि होती है। इसमें कारण वे हो चार कहे जाने चाहियें। किसी धर्मीमें अवक्तव्यत्वादिक धर्म अपने प्रतिपक्षके साथ अविनाभावी हैं विशेषण होनेसे। जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे इसी प्रकार अवक्तव्य भी वक्तव्य धर्मके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे। इसी प्रकार अवक्तव्य आदिक धर्म शब्दगोचर है याने अवक्तव्य है इस शब्दके द्वारा कहा जाता है विशेष्य होनेसे। अथवा अवक्तव्य विशेष्य है क्योंकि शब्दोंके द्वारा कहा जाता है आदिक रूपसे जैसे प्रथम तीन भंगोंकी सिद्धि की है उसी प्रकार इस चतुर्थ भंगकी भी सिद्धि होती है। जैसे वस्तुका अस्तित्व, वस्तुका नास्तित्व और वस्तुका विधेय प्रतिषेध्यत्व अपने प्रतिषेधके साथ अपने प्रतिपक्षके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे, विशेष्य होनेसे। शब्दका विषयभूत होनेसे, वस्तुपना होनेसे। जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्यका अविनाभावी है। हेतुमें हेतुत्व और अहेतुत्व जैसे विशेषण बनता है इस तरह जैसा कि सिद्ध किया है उसी प्रकार अवक्तव्य भी पहिलेके कहे गए तीन भंगोंके साथ जो कि वक्तव्य है और उस वक्तव्यपनेके ही विशेष बताये गए हैं उनके साथ अविनाभावी है।

अवक्तव्यत्वके साथ पूर्वोक्त तीन धर्मोंकी भी पूर्वोक्त हेतुओंसे सिद्धि—अन्य संयोगी भङ्ग भी इन्हीं हेतुवोंसे सिद्ध होते हैं। सत् अवक्तव्य असत् अवक्तव्यके साथ अविनाभावी है। असत् अवक्तव्यपना भी सत् अवक्तव्यपनेके साथ अविनाभावी है और सप्तम भङ्ग अर्थात् सत् असत् अवक्तव्यपना दोनों अवक्तव्यपनेके साथ अविनाभावी है। अर्थात् पञ्चम और षष्ठ भङ्गोंमें जैसा प्रयोग किया गया है वह है सप्तम भङ्गका प्रतिपक्ष उसके साथ अविनाभावी है। इस तरह इन सब धर्मोंका अपने प्रतिपक्ष धर्मके साथ अविनाभावीपना सिद्ध किया गया है और ऐसा सिद्ध होने पर इन सब प्रयोगोंमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं आता बल्कि अन्यथा कल्पना करनेपर ही विरोध आता है। जैसे कि अवक्तव्यत्व आदिक धर्मोंके अपने प्रतिपक्ष स्वभावके अविनाभावी नहीं माने जाते हैं तो प्रत्यक्षसे और अन्य प्रमाणसे विरोध उत्पन्न होता है, क्योंकि ऐसा किसी भी समय वस्तुमें देखा नहीं जा रहा है। वस्तु स्वरूपसे सत् है व पररूपसे असत् है ऐसा वस्तुमें देखा ही जा रहा है। और वही वस्तु स्वरूपसे सत् है व पररूपसे नहीं है दोनों धर्मोंको क्रमसे देखे जानेपर उभय है एक साथ निरखनेपर अवक्तव्य है आदिक बातें प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध हैं। अतः इसमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। और, इस रीतिसे हे भगवन् जिनेन्द्र देव! आपके शासनमें कोई विरोध नहीं आता। स्याद्वाद शासनसे विरुद्ध शासनमें ही विरोध देखा जाता है। इस तरह सप्तभङ्गके प्रकारोंमें वस्तुकी अनेकात्मकताकी सिद्धि हुई।

सर्वथा विधि या निषेधसे अनवस्थित अर्थात् कथंचित् विधिरूप व कथंचित् निषेधरूपसे अवस्थित वस्तुकी अर्थ क्रियाकारिताके समर्थनका उपक्रम—यहाँ यह विदित हो रहा है कि वस्तु विधि और प्रतिषेधसे अनवस्थित है अर्थात्

http://sahjanandvarnishastra.org/

न सर्वथा विधिरूप है और न सर्वथा निषेधरूप है तो सर्वथा सत्त्व असत्त्व आदिकसे अनवस्थित होता हुआ ही यह अनेकात्मक पदार्थ अर्थ क्रियाकारी होता है और सप्त-भङ्गीके भेदसे युक्त होता है अन्य प्रकारसे नहीं। अर्थात् यदि सर्वथा विधिरूप हो तो न सप्तभङ्गीके प्रकार बनेंगे और न वह वस्तु किसीकी परिणतिको कर सकेगा। इसी तरह सर्वथा असत्त्व आदिक माननेपर भी यही आपत्ति है। तो विधि निषेधसे अनव-स्थित पदार्थ ही अर्थक्रियाकारी होता है अन्य प्रकारसे नहीं। इस तरह अपने पक्षका साधन और परपक्षका दूषण बताते हुए आचार्यदेव कह रहे हैं।

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः॥ २१॥

सर्वथा विधि निषेधके धर्मोंसे अनवस्थित वस्तुकी अर्थकृत्ताका वर्णन— इस प्रकार विधि और निषेधसे अनवस्थित पदार्थ अर्थक्रियाका करने वाला है अर्थात् जो पदार्थ सर्वथा है, ऐसा नहीं है, सर्वथा नहीं है ऐसा भी नहीं है, सर्वथा विधि निषेध धर्मसे अनवस्थित है वही पदार्थ परिणमन करने वाला होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो युक्तिसंगत व्यवस्था न बनेगी। जैसे कि कार्य यदि सर्वथा सत् ही माना जाय या सर्वथा असत् ही माना जाय तो वह अपने सहकारी और उपादान कारणसे उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसका विवरण इस प्रकार है कि यदि सर्वथा सत् ही कार्य माना जाय कि यह कार्य तो पहिलेसे अनादिसे ही है, वही किया गया तो सर्वथा सद्भूत कार्य में कार्य शब्दका व्यवहार नहीं हो सकता, उपकार ही क्या है? जब था ही पहिलेसे तो वह रचा ही क्या गया है? इसी प्रकार यदि सर्वथा असत् ही कार्य है, किसी भी दृष्टिसे उसका सत्त्व नहीं है। यों ही कि द्रव्य भी कुछ नहीं है और असत् ही कुछ बन गया है तो ऐसा भी सम्भव नहीं है, क्योंकि सर्वथा असत् कार्य बनने लगे तो सर्वथा असत् आकाशपुष्प आदिक भी निर्मित होने लगें। तो सर्वथा सद्भूत या सर्वथा असद्भूत जैसे कार्य बनता नहीं है, कार्यकारी नहीं है इसी प्रकार सर्वथा सत् और सर्वथा असत् पदार्थ भी कार्यकारी नहीं हो सकता।

कथंचिद् विधिनिषेधसे अवस्थित न किये गए वस्तुमें अर्थकारिताका अभाव— अथवा इस कारिकाका द्वितीय अर्थ लीजिए! जो कथंचित् विधि और निषेधसे अनवस्थित् पदार्थ है वह कार्यकारी नहीं होता याने जिसमें कथंचित् विधि रूप कथंचित् निषेधरूपकी सिद्धि नहीं है वह पदार्थ कार्यकारी नहीं बनता। जैसे कि कार्य बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग उपाधिसे विशिष्ट यदि स्याद्वाद पद्धतिका न हो तो वह कार्यकारी नहीं होता। सर्वथा निरंश वस्तुमें कोई भी विशेषण नहीं बन सकता याने जिसमें उत्पत्ति नहीं, विनाश नहीं, किसी प्रकारका परिणमन नहीं है, उसमें किसी भी प्रकारकी अर्थक्रिया नहीं बनती। सत्त्व असत्त्व आदिकमेंसे किसी एक ही भङ्गमें रहने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाला पदार्थ हो तो वह अर्थक्रियाका करने वाला नहीं है, क्यों नहीं है ? इसका कारण सुनो ! सप्तभङ्गीमें अर्थात् स्याद्वादमें जो वस्तु विधि और प्रतिषेधमें समारुढ़ है अर्थात् जो कथंचित् सत् स्वरूप है कथंचित् असत् स्वरूप है वही वस्तु अर्थक्रिया कर सकता है अर्थात् वही परिणमन कर सकने वाला होता है। कथंचित् सत् हो वही पदार्थ हो तो कारण सामग्रामें अपने स्वभावमें अतिशय उत्पन्न कर सकता है।

कथंचित् सत्त्व असत्त्वसे व्यवस्थित वस्तुमें अर्थक्रिया बननेका उदाहरण—जैसे कि स्वर्ण है, अब स्वर्ण चूंकि सत् है तभी तो अनेक कारण सामग्री मिलनेपर उसमें आभूषणोंकी रचना बन सकती है स्वर्णत्वकी दृष्टिसे स्वर्ण सत् ही है, और केयूर कंकण आदिक आभूषणोंके आकार दृष्टिसे वह असत् है, याने उस स्वर्णमें अभी कोई आभूषण नहीं बने हैं। तो आभूषणोंके आकारकी दृष्टिसे असत्त्व है और स्वर्णत्वकी दृष्टिसे सत्त्व है। अब वे स्वर्ण केयूर आदि आभूषणोंरूप परिणमनेकी शक्ति रखते हैं और जितनी अन्य सामग्री हैं, कारण हैं नियत जिस कारणसे उस स्वर्णके आभूषण बना दिए जाते हैं तो उन सब सामग्रियोंमें और चूंकि स्वयं स्वर्णकी उपादान सामग्रीमें उन आभूषणों रूप परिणमनेकी शक्ति है और फिर स्वर्णको बनाने वाले स्वर्णकारका व्यापार हुआ अनुकूल क्रिया सम्पन्न हथौड़ा आदिक ये बाह्य सामग्रियाँ मिलीं। तो जैसे स्वर्णमें आभूषणरूप परिणमनेकी शक्ति है यह तो है अन्तरङ्ग सामग्री और स्वर्णकार उस प्रकारका व्यापार करे और हथौड़ा आदिकका व्यापार करे तो ये सब हैं बाह्य सामग्री। तो ये सब बाह्य सामग्री जब इकट्ठी होती है, समर्थ कारण बनते हैं, तो वे स्वर्ण केयूर आदिक आभूषणोंके आकार रूपसे उत्पन्न हो जाते हैं।

उदाहरणपूर्वक कथंचित् विधिनिषेधात्मक वस्तुमें अर्थक्रियाकी सिद्धि स्वर्णकेयूरादि उदाहरणकी तरह समग्र वस्तुओंकी बात समझना चाहिए कि सत् असत् स्वरूप होकर ही पदार्थ अर्थक्रियाका करने वाला है। पदार्थमें परिणमन हुआ तो उस परिणमनको द्रव्यार्थिक दृष्टिसे तो सत् कहेंगे और पर्यायार्थिक दृष्टिसे असत् कहेंगे। उस प्रकारके परिणमनकी योग्यता द्रव्यमें है और चूंकि वह द्रव्य पहिले था, वही द्रव्य अब है, तो यों द्रव्यार्थिक दृष्टिसे सत् बना और पर्यायार्थिक दृष्टिसे वह परिणमन अभी नहीं है, अब हो गया तो असत् ही हुआ। ऐसे जीवादिक समस्त पदार्थोंमें सत् असत् स्वरूप घटा लेना चाहिए। यदि ऐसा नहीं माना जाता है याने सत् असत्का एकान्त करनेपर उसमें अर्थक्रिया नहीं बन सकती। जैसे उसी स्वर्णमें सोचिये कि क्या केयूर आभूषण सर्वथा सत् है अथवा असत् है ? यदि सर्वथा सत् कहोगे तो फिर उसके बनानेकी आवश्यकता क्या रही ? क्यों स्वर्णकार वहाँ अपना व्यापार करेंगे ? वे आभूषण तो सत् ही हैं। तो प्रतीति प्रमाणित नहीं करती यह बात कि केयूर आदि आभूषण वहाँ सर्वथा सत् हैं। यदि कहा जाय कि सर्वथा असत् ही आभूषण बना है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो मिट्टी पत्थर आदिकमें आभूषण क्यों नहीं बन जाता ? कोई पत्थरको ही हथौड़ासे पीटे पाटे और कोई उसे स्वर्णका आभूषण बनाना चाहे तो क्या वहाँ स्वर्णका आभूषण बन सकेगा ? नहीं बन सकता अथवा किसी आधार बिना ही केयूरादिक नहीं बन सकता। तब समझना चाहिए कि सर्वथा असत् भी आभूषण नहीं किया गया जो सर्वथा सत् बताते उसकी फिर उत्पत्ति ही क्या है ? फिर कारणकी अपेक्षा भी क्यों की जायगी ? और, यदि सर्वथा असत् कार्य माना जायगा तो जो सर्वथा असत् है उस की भी उत्पत्ति बन नहीं सकती। और जो सर्वथा अनुत्पन्न है उसमें न स्थिति बताई जा सकेगी न व्यय बताया जा सकेगा। क्योंकि सर्वथा असत् होनेसे आकाशपुष्पकी तरह। जैसे आकाशपुष्प सर्वथा असत् है तो उसकी न ध्रुवता है न उसका व्यय है, क्योंकि वह उत्पन्न ही नहीं है। तो सर्वथा असत्की उत्पत्ति स्थिति ध्रौव्य ये कुछ भी नहीं बन सकते हैं इस कारण सत्त्वके एकान्तमें और असत्त्वके एकान्तमें किसी भी प्रकारसे अर्थक्रिया सम्भव नहीं होती है।

द्रव्यरूपसे सत् व पर्यायरूपसे असत् कार्यका उत्पाद होनेका सिद्धान्त

शंकाकार कहता है कि ऐसा मान लीजिए कि सामग्रीके पहिले तो वह कार्य अविद्यमान है। यों अविद्यमान कार्यकी उत्पत्ति हुई है ऐसा मान लेनेमें कौनसा दोष आता है ? इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा मानते हुए शंकाकार यदि यह मान रहे हैं कि वहाँ निरन्वय विनाश नहीं है तब तो सत् और असत्के एकान्तका अभाव आ जायगा क्योंकि इस मान्यतामें यही बात सिद्ध होती है कि सामग्रीके पहिले वह कार्य अविद्यमान तो है लेकिन जहाँ यह कार्य बनेगा उसका अन्वय बना हुआ है। वह एक पदार्थ है जिसमें कि परिणमन हुआ करता है। सत् एकान्तका और असत् एकान्तका यहाँ अभाव ही सिद्ध हो जायगा। देखिये ! सामग्रीका निरन्वय विनाश माननेपर जब वह निष्कारण होगया तो उस प्रकारसे उत्पत्ति हो न सकेगी याने स्वर्ण जैसा आभूषण ही बने यह बात तब ही तो मानी जा सकती है जब कि स्वर्णका अन्वय माना जाय, स्वर्णत्वका अन्वय न माननेपर उस स्वर्णके प्रसंगमें अन्य प्रकारके कार्य क्यों न बन जायेंगे ? यदि उसे निष्कारण माना तब तो घट पट संदेह रूप जिस चाहे कार्यकी उत्पत्ति हो जाय. पर निराधार न तो उत्पत्ति हो सकती और न व्यय हो सकता, क्यों कि उत्पन्न होना और व्यय होना यह एक कार्य है, क्रियारूप है स्थितिकी तरह। जैसे कि कोई चीज ध्रुव रहती है तो वह निराधार तो नहीं है कोई द्रव्य ही तो है जिसकी कि ध्रुवता हो रही है। इसी प्रकार जिसका उत्पाद व्यय बन रहा है वह वस्तु निराधार तो नहीं है, मूलभूत द्रव्य है तब उसमें उत्पाद व्यय चल रहा है। यही बात लौकिक दृष्टान्तमें भी प्रत्यक्षसे दिखती है कि उपादान कारण ध्रुव है और बाह्य सामग्रीके मिलनेपर उसमें उत्पाद और व्यय होता है। जैसे मिट्टी पहिलेसे है उसको मानकर पिण्ड बनाकर चाकपर रखकर कुम्हारने घड़ा बनाया तो वह घड़ा सर्वथा असद्भूत नहीं बन गया। द्रव्यरूपसे वह था याने जो घड़ा बना वह वस्तु मिट्टी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपसे पहिलेसे सत् है तब बन गया। यदि सर्वथा ही असत्‌का घड़ा बन जाय तब तो कल्पनामात्रसे अथवा यों ही आकाशमें हाथ पैर चलाकर घड़ा तैयार कर दिया जाना चाहिए, पर ऐसा कहीं होता नही है। तो सर्वथा असत् घड़ेकी उत्पत्ति नहीं हुई। और कोई कहे कि वह सर्वथा सत् ही था जैसे कि सत्कार्यवादी दार्शनिक मानते हैं कि प्रत्येक कार्य उस द्रव्यमें सदा काल रहते हैं, कारणके द्वारा केवल उन कार्योंका व्यक्त कारण होता है, पर वह कार्य सदा काल है। तो भाई जो सदा काल है उसका फिर करना क्या ? जैसे अनेक चीजें कमरेमें रखी हैं और उनपर कपड़ेका आवरण पड़ा है तो आवरण हटानेसे कहीं चीजें नहीं बन गई। चीजें तो बनी हुई पहिले थी, तो यों ही सर्वथा सत्‌को कार्यकारी बताया जाय तो वह कार्य ही नहीं बन सकता। इस कारण अनेकान्तमें ही अर्थक्रिया सम्भव होती है।

उत्पत्त्यादिमान पदार्थकी प्रमाणप्रसिद्धता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि उत्पत्ति आदिक तो क्रिया ही नहीं है, क्योंकि क्षणिक पदार्थकी उत्पत्ति आदिक असंभव है और इसी कारण क्रियारूपत्वात् यह हेतु असिद्ध है, अभी तो यह सिद्ध करने के लिए कि निराधार उत्पत्ति और विनाश नहीं होता है इसमें हेतु दिया गया है क्रियारूपत्वात् तो क्रियारूपपना क्षणिक पदार्थमें सम्भव ही नहीं है। अतः हेतु असिद्ध है। अतः उससे अनुमानकी सिद्धि नहीं होती। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि क्षणिकवादका यह मंतव्य संगत नहीं है क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे ये वचन विरुद्ध हो रहे हैं, चक्षुजन्य ज्ञानमें उत्पत्तिमान पदार्थका बराबर प्रतिभास हो रहा है। यदि इन सब जनोंको चक्षु इन्द्रिय द्वारा यह सब न दिख रहा हो कि यह पदार्थ नष्ट हुआ, अब उत्पन्न हुआ और वहीका वही जातिमें रहा, ऐसा न दिखता हो तो किसीसे पूछकर बताओ। सभी लोग सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि पदार्थ उत्पत्तिमान है विलयमान है। और भी देखिये! निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञानसे उत्पत्ति विनाश और स्थिति क्रियारहित केवल सत्तामात्रका प्रतिभास होना यह बाधित है। जो लोग यह मानते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञानसे एक सिर्फ निर्विशेषण सत् ही जाना जा रहा है कि उत्पत्ति विनाश स्थिति आदिक विशेषण कुछ नहीं विदित होते हैं तो ऐसे उनके मंतव्यमें बाधा आती है। बाधा यों आती है कि यदि दर्शनके द्वारा उत्पत्ति सहित सत्ताका बोध न हो तो फिर विकल्पज्ञानमें उन उत्पत्ति आदिकसे विशिष्ट अर्थका ज्ञान न होना चाहिए, क्योंकि जैसा देखा जाता है वैसा ही उसका निर्णय होता है। यदि दंड और पुरुषका सम्बन्ध न देखा हो तो यह पुरुष दंडी है, डंडा वाला है यह विकल्प नहीं होता। तो इसी तरह यदि दर्शनसे उत्पत्त्यादियुक्त उत्पन्न पदार्थ न देखा जाता हो तो उसके पीछे होने वाले सविकल्प ज्ञानके द्वारा भी ये पदार्थ उत्पत्ति मान हैं, ऐसा निर्णय नहीं हो सकता।

शंकासमाधानपूर्वक उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त पदार्थकी सिद्धि—अब शंका-

Version 1

कार कहता है कि पदार्थमें यद्यपि उत्पत्ति आदि का दर्शन नहीं होता। तो उत्पत्ति आदिकका दर्शन न होनेपर भी उस प्रकारकी जो पूर्व वासना है उत्पत्ति मात्र आदि समझते रहनेका जो पूर्व संस्कार है उस पूर्व वासनाके वशसे उत्पत्ति विशिष्ट विकल्प होता है कि यह पदार्थ उत्पत्तिमान है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह यदि वासनाके कारणसे ही विकल्प मान लिया जाय और वास्तवमें पदार्थमें वह बात न हो तो यह भी कहा जा सकता कि नीलादिक पदार्थ के और सुखादिकके दर्शन न होनेपर भी केवल वासनाकी वजहसे ही नील है यह सुख है यहाँ मैं सुखी हूँ आदिक विकल्प बनाये जा सकते हैं फिर तो नीलक्षण और सुखादिक की व्यवस्था भी नहीं की जा सकती कि यह सुख है, यह नील है, यह अन्य है आदिक कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकती। शंकाकार यदि यह कहे कि व्यवस्थाका विरोध होता हो तो हो और नीलादिक विकल्प भी हो जायें, हम तो वहाँ निरालम्बन विज्ञान मात्र मानते हैं। जो ज्ञान होता है वह आलम्बनसे रहित है। उत्तरमें कहते हैं कि निरालम्बन विज्ञान मात्र माननेपर भी यह कहा जा सकता है कि अन्य संतानोंमें नीलादिक पूर्वापर क्षणका ज्ञान न होनेपर भी और निज संतानमें सुखादिक क्षणों का ज्ञान न होनेपर भी उस प्रकारके विकल्प वासनावश बन जायेंगे, क्योंकि अब तो निरालम्बन ज्ञान ही मान लिया तो फिर उस विकल्पकी भी व्यवस्था कैसे बनेगी ? यदि शंकाकार यह कहता हो कि उस विकल्पकी व्यवस्था नहीं बनती तो मत बनो, हम तो एक ज्ञान मात्र ही मानते हैं तत्त्व, तो इसके उत्तरमें सुनो ! यदि ज्ञानाद्वैत मात्र ही तत्त्व माना जाय तो वहाँ भी यह कहा जा सकता है कि यह ज्ञानाद्वैत स्वरूप केवल वासनाके बलसे हुए प्रतिभासमें आ रहा है। वस्तुतः ज्ञानाद्वैत है नहीं। तो यों ज्ञानाद्वैतके अभावमें भी उसकी वासनाके वशसे ज्ञानस्वरूपका प्रतिभास हो रहा है यह कहा जा सकता है। तब तो फिर उस सत्स्वरूपकी स्वतः गति न बनी। अर्थात् उस सम्वित् स्वरूपका स्वतः ज्ञान नहीं हुआ, किन्तु वासनाके बलपर ज्ञान हुआ है। तो वह भी परमार्थ तत्त्व न रहेगा। यदि शंकाकार यह कहे कि वह ज्ञानस्वरूप तो सत् है, उस सत् ज्ञानस्वरूपका उस प्रकारकी वासनाके बिना ही स्वतः परिचय हुआ है। उसमें वासनाके बलसे ही काम हुआ, यह नहीं कहा जायगा, उसका ज्ञान सचमुच हुआ है। तो इसके उत्तरमें भी यह निर्णय बन सकेगा कि निज संतानमें जो सुख आदिक पूर्व उत्तर परिणमन हैं, क्षण हैं और बाह्य संतानोंमें जो नील पीत आदिक अर्थ हैं अथवा पदार्थोंकी उत्पत्ति विनाश स्थिति रूप जो क्रिया विशेष है वह भी सत् है और उन सतोंका ही दर्शन हुआ है और तब उस प्रकारके विकल्प उत्पन्न होना युक्त है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य निराधार न हो सकनेसे सदसदात्मक वस्तुमें अर्थक्रियाकी सिद्धि—जब उत्पत्ति आदिक क्रिया है, यह बात सिद्ध हो गई तो प्रकृत बात जो यह कही जा रही थी कि निराधार उत्पत्ति विनाश नहीं होते क्रियारूप होनेसे सो उत्पत्ति आदिकका क्रियापना सिद्ध हो गया है, सो इससे यह भी सिद्ध हो गया कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्रिया निराधार नहीं है. उसका आधार है और क्रियाका जो आधारभूत हो वही द्रव्य कहलाता है और वह द्रव्य नित्य है. वही उत्पत्तिव्ययध्रौव्ययुक्त है। उक्त विवरणसे यह बात सिद्ध होती है कि जो पहिले असत् हो सर्वथा, उसकी भी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। द्रव्य दृष्टिसे वह मूलमें है कुछ तब उसकी इस धारामें उत्पत्ति हुई है। यदि शंकाकार यह पक्ष ग्रहण करे कि निरन्वय अविनाश होनेपर अथवा सान्वय रहकर विनाश होनेपर तो यह कहा जा सकेगा कि पहिले जो असत था उसकी ही उत्पत्ति हुई है। तो उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा पक्ष करनेपर तो स्याद्वादका ही आश्रय लिया गया समझिये ! क्योंकि इसमें असत् कार्यवादका विरोध किया गया है। यहाँ कथंचित् प्राप्त सब पदार्थकी ही उत्पत्ति हुई मानी गई है। इस कारण यह वचन पूर्ण युक्तिसंगत है कि एकान्तसे सत् और असत् उत्पत्ति नहीं कर सकते हैं। किसी पदार्थको यदि सत् ही मान लिया जाय तो वहाँ उत्पत्ति सम्भव नहीं है। और किसी पदार्थको सर्वथा असत् ही मान लिया जाय तो भी उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। जैसे एकान्तसे सत् है आकाश। वह तो है ही, शुरू से है अन्त तक रहेगा और उसमें परिवर्तन भी क्या हो रहा है ? तो एकान्तसे सत् आकाशकी उत्पत्ति क्या ? और बंध्यापुत्र आकाश कुसुम, ये एकान्तसे असत् हैं, सर्वथा असत् हैं तो उनकी उत्पत्ति क्या ? तो जो एकान्तसे सत् हो अथवा एकान्तसे असत् हो वह उत्पन्न हो नहीं सकता। जैसे कि आकाश और बंध्यापुत्र यह जो उदाहरण दिया गया है वह उदाहरण सही है क्योंकि यहाँ साध्य और साधनकी विकलता नहीं है।

द्रव्यार्थिकनयसे अनुत्पद्यमान वस्तुमें अर्थक्रियाकी सिद्धि अब यहाँ शंकाकार कहता है कि फिर इस समय अनुत्पन्न आकाश आदिककी स्थिति कैसे मान ली जावेगी, जब कि अभी यह नियम बनाया गया था कि जो अनुत्पन्न हो उसकी स्थिति और विनाश नहीं होता। तो आकाश तो उत्पन्न होता नहीं और यहाँ अनुमान में भी यह सिद्ध कर दिया गया कि आकाश उत्पन्न होता नहीं तो अनुत्पन्न आकाशकी स्थिति कैसे रहेगी ? उत्तरमें कहते हैं कि हमने आकाश आदिकका सर्वथा अनुत्पाद स्वीकार नहीं किया है। हाँ इस समय जो उदाहरणमें कहा है कि सर्वथा सत् आकाश है और उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है तो उसका अर्थ यह है कि द्रव्यनयकी अपेक्षासे हमने इस प्रकार आकाशका उदाहरण दिया है, अथवा लौकिक जनोंकी प्रसिद्धिके द्वारा हमने आकाशका उदाहरण दिया है। लोग भी मानते हैं कि आकाशमें परिवर्तन नहीं होता और वह कभी उत्पन्न नहीं होता है। तो लोककी प्रसिद्धिके अनुसार आकाशका उदाहरण दिया इस कारण यहाँ पूर्वापर विरोध नहीं आता। पहिले तो जो सर्वथा अनुत्पत्तिमान है उसकी स्थितिका निषेध सिद्ध किया था किन्तु जो कथंचित् अनुत्पत्ति मात्र हैं उसका प्रतिषेध नहीं है। जो द्रव्यार्थिकनयापेक्षया अनुत्पन्न नहीं हो अनुत्पद्यमान हो उसकी ही तो स्थिति सम्भव है और यह बात केवल आकाशमें ही क्या घटित करते हो, सभी पदार्थोंमें यह घटित होगा कि द्रव्य दृष्टिसे सभी पदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न नहीं होते केवल पर्यायदृष्टिमें ही उत्पत्ति विनाश माना गया है, इस कारण जो अर्थ क्रियाकारी है वह विधि और प्रतिषेधकी कल्पनासे कल्पित सप्तभंगीके विधानमें आरूढ़ होता हुआ जो विधिके एकान्तसे अनवस्थित है और निषेधके एकान्तसे भी अनवस्थित है वह अर्थकारी होती है। तात्पर्य यह है कि जो भी पदार्थ सर्वथा सत्रूपसे अवस्थित नहीं, सर्वथा असत्रूपसे अवस्थित नहीं। सर्वथा असत्रूपसे अवस्थित नहीं वही परिणमन कर सकता है। सत्त्व और असत्त्वके एकान्त माननेपर वहाँ सर्वथा अर्थक्रियाका विरोध है ऐसा इस कारिकाका अभिप्राय है और इससे यह सिद्ध किया है कि जगतमें जो भी पदार्थ होते हैं वे समस्त पदार्थ कथंचित् विधि और निषेधसे अवस्थित हैं अर्थात् कथंचित सत् है कथंचित असत् है ऐसा तो कहा जा सकेगा, पर सर्वथा सत और सर्वथा असत नहीं बताया जा सकता।

सुनयार्पित विध्वंश व निषेधांशकी भाँति सर्वथा सत् या असत्में अर्थक्रिया हो सकनेकी आशंका—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि सुनयमें जो विवक्षित है विधि अंश अथवा निषेध अंश वह अर्थक्रियाकारी हैं या नहीं? यदि अर्थक्रियाकारी मानते हैं अर्थात् सुनयसे जाने गए सत्त्व या असत्त्व ये अर्थक्रियाकारी बताये जावें, तब तो इससे ही हेतु व्यभिचारी बन जायगा हेतु दिया गया है कि सर्वथा सत और असतमें अर्थक्रियाका विरोध है, लेकिन विधि अंशमें और निषेध अंशमें तो अर्थक्रिया मान ली गई तो दूसरे दार्शनिकोंके लिए जो सत्कार्यवादी हैं या असत कार्यवादी हैं उन्हें दोष दिया जाय और यहाँ स्याद्वाद शासनमें सुनयकी विवक्षासे जानी गई विधि अंशको अर्थक्रियाकारी बता रहे हैं उन्हें दोष नहीं दिया जाता अथवा सुनयमें ही असत्वांश बताया जाय वहाँ भी दोष नहीं देते हैं। तो हेतु व्यभिचारी है इससे यह सिद्ध न किया जा सकेगा कि सर्वथा सत और सर्वथा असत पदार्थमें अर्थक्रिया नहीं हो सकती। जैसे स्याद्वाद शासनमें द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे जाने गए विधि अंशमें अर्थक्रिया होती है और निषेध अंशमें अर्थक्रिया होती है इसी प्रकार सर्वथा सत असतमें अर्थक्रिया बन जायगी। जिस विधि अंशको या जिस निषेध अंशको अर्थक्रियाकारी मान लिया गया वह सप्तभंगीविधिमें समारूढ़ नहीं है, वह तो एक दृष्टिसे एक धर्म वाली बात है। यदि एक सत्त्व अंशमें अथवा असत्त्व अंशमें सप्तभंगीपना लाद दिया जाए तो प्रत्येक एक एक भंगमें सप्तभंगी आ पड़ेगी फिर अनवस्था हो जावेगी। अतः विध्यंश और निषेधांशको अर्थक्रियाकारी नहीं मान सकते। और विध्यंश व निषेधांशको अर्थक्रियाकारी न माननेपर यह सिद्ध हो बैठेगा कि सुनय अवस्तुको विषय करता है, क्योंकि जो अर्थक्रियाकारी हो उसे ही वस्तु माना है। विध्यंश और निषेधांश अर्थक्रियाकारी तो है नहीं सो अवस्तु सिद्ध हुए और इन्हें जाना सुनयोंने तो निष्कर्ष यह निकला कि सुनय अवस्तुको विषय करता है। इस प्रकार निरंशवादीने सर्वथा सत् या असत् एकान्तमें अर्थक्रियाका विरोध है,' इस सिद्धान्तमें बाधा उपस्थित करनेके लिये शंका की है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुनयार्पित अंशकी अर्थक्रियाकारिता सिद्ध करते हुए शंकाका समाधान — उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि सुनयसे अर्पित अर्थात् विवक्षित जो विधि है प्रतिषेधका निराकरण करने वाली नहीं है। जो प्रतिषेधका जिसने निराकरण नहीं किया ऐसी विधिको अर्थक्रियाकारी माना ही गया है। अन्यथा अर्थात् यदि प्रतिषेध निरपेक्ष अस्तित्वका अर्थकार्यकारी मान लिया याने ऐसे सत्वको जो पररूपसे असत्व की अपेक्षा नहीं रखते ऐसे सत्वको यदि अर्थक्रियाकारी मान लिया जाय तो वह दुर्नयका अर्पित सत्व कहा जायगा। तो शंकाकारका यह कहना कि सुनयसे जो विवक्षित विधि अंश है वह यदि अर्थक्रियाकारी हो जाता है तो इस ही घटनासे हेतु का व्यभिचार आयगा। सो यह बात कहना युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि सुनयसे विधि अंश भी अर्थक्रियाका करने वाला है क्योंकि उसने अपने प्रतिपक्षी प्रतिषेधका निराकरण नहीं किया है और यह बात स्यात् शब्दसे ध्वनित है। इस विधिसे, अस्तित्वने सप्तभङ्गीकी विधिमें ही अपना स्वरूप रखा है। सप्तभङ्गीकी पद्धतिमें ही वह प्रविष्ट है, क्योंकि इस विधिमें प्रतिषेधका निराकरण नहीं किया। तो विधि सप्तभंगीकी पद्धतिमें प्रविष्ट है, ऐसा माननेपर अनवस्था भी नहीं बतायी जा सकती। क्योंकि उस विधिमें अन्य विधिकी कल्पना नहीं उत्पन्न होती। पदार्थ स्वरूपसे सत् है ऐसा समझकर अब उस स्वरूप सत्वमें अन्य सत्वकी कल्पना नहीं उठती है। जो प्रथम बार सत्वकी समझ आयी तो वह समझ हो है।

सुनयसे सर्व धर्मोंका और प्रमाणसे ग्रहण करनेपर प्रमाण और नयमें अविशेषताके प्रसंगकी शंका और उसका समाधान — यहाँ शंकाकार कहता है कि सुनयसे विवक्षित जो भंग है वह अन्य भंगोंका निराकरण जब नहीं करता तब एक साथ सर्वभंगोंमें नय विषयत्व प्राप्त हो जायगा और तब फिर नय और प्रमाणमें कोई भेद न रह सकेगा। अथवा प्रमाणका अर्थ यही तो करते हैं कि सर्व धर्मोंका ज्ञान करना वस्तुके अनेक धर्मोंका ज्ञान करना सो प्रमाण है और सुनयमें भी यही किया गया कि सुनयसे अर्पित जो भी एक अंश है उस ज्ञानमें अन्य भङ्गका निराकरण न करना, इसका भाव यही तो है कि अन्य भङ्गका भी बोध किया गया है उस सुनयमें, तो अब नय और प्रमाणके स्वरूपमें भेद क्या रहा? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि विधि भङ्गमें अर्थात् सप्त भङ्गोकी पद्धतिमें जो प्रथम भङ्ग बना है स्याद् अस्ति तो इस भङ्गमें नास्तित्व आदिक जो अन्य भङ्ग हैं वे गौण किए गए हैं और सत्वकी प्रधानता की गई है और जब सप्तभङ्गी पद्धतिमें द्वितीय भङ्गकी बात कही जाती है अर्थात् नास्तित्व बताया जाता है तो उस भङ्गमें अस्तित्वादिक अन्य भङ्गोंको गौण कर दिया जाता है और उस प्रतिषेधको प्रधानता की जाती है। यों नयलक्षण प्रमाणलक्षणसे अलग ही है। क्या बना अब नयका लक्षण कि प्रमाणमे अर्पित तो है प्रधान रूपसे अशेष भङ्ग स्वरूप वस्तु। सो वह तो है प्रमाण-वाक्य, और नय वाक्यमें एक अंश प्रधान है, अन्य अंश गौण है, यों प्रमाणमें और नयमें अन्तर आता है। तात्पर्य यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि प्रमाण वाक्यमें तो सभी अंश प्रधान होते हैं और नय वाक्यमें जिसको बोला गया है स्पष्ट करके वह तो प्रधान होता है और अन्य अंश गौण होते हैं। यदि उन गौण अंशोंका निराकरण कर दे तब तो वह दुर्नय कहलाता है और अंशोंका निराकरण न करे तो वह सुनय कहलाता है। यों सुनय और प्रमाणमें अन्तर है, किन्तु जैसे प्रमाणसे जानी हुई वस्तुमें अर्थक्रिया सिद्ध करते हैं उसी प्रकार सुनयसे अर्पित तत्त्वमें भी अर्थक्रियाकी बात सिद्ध होती है।

प्रथम भङ्गसे ही वस्तुका ग्रहण हो जानेसे शेष भङ्गोंके कथनकी निरर्थकताकी आशंका— अब शंकाकार कहता है कि देखिये! जीवादिक वस्तुओंमें सत्त्वके कथनसे जो कि प्रथम भङ्गमें बताया गया है उस सत्त्वके कथनसे जब समग्र वस्तुको जान लिया गया याने प्रथम भङ्ग सत्त्वके द्वारा जीवादिक वस्तुको समझ लिया गया है तब द्वितीय आदिक भङ्गोंका कहना अनर्थक है। जीव सत् है। अब समझ तो लिया सत्, कमी क्या रही? अब द्वितीय भङ्गोंका बोलना किस प्रयोजनके लिए है? असत्त्व आदिक जो धर्म हैं जिनको द्वितीय आदिक भङ्गोंमें बोला जा रहा है वे तादात्म्य रूपसे ही तो हैं याने जीव सत् है इसी रूप तो अजीवकी अपेक्षा असत् है यह बात बनी। तो यह असत्त्व उस सत्त्वसे तन्मय है, कोई भिन्न चीज तो नहीं है। तब प्रथम भङ्गसे ही उस जीव वस्तुकी प्रतिपत्ति हो गयी। यदि स्वरूप सत्त्वको पररूप सत्त्वसे तन्मय न माना जाय, असत्त्वादिक धर्मोंको यदि इस प्रथम भङ्गसे भिन्न मान लिया जाय तो यह धर्म वस्तुसे भिन्न पड़ जायगा कि जीवमें स्वरूप सत्त्व है वह तो ठीक है अर्थात् पररूप सत्त्व उस जीवसे भिन्न है और अन्य–अन्य भङ्गोंमें बताये गए धर्म भी जीव वस्तुसे भिन्न हैं। यदि अभिन्न हैं तो जब जीवमें सभी भङ्ग अभेद रूपसे रह रहे हैं तो भङ्गोंमें भङ्ग भी अभेद हो गए तब अन्य भङ्गोंके कथन करनेका कोई प्रयोजन न रहा। तो अन्य भङ्गोंमें प्रथम भङ्गोंसे तन्मय माननेपर तो द्वितीय आदिक भङ्गोंका कहना व्यर्थ है और यदि उन भङ्गोंका पृथक मानते हो तो वे वस्तुसे अलग हो जायेंगे क्योंकि अब उनमें विरुद्ध धर्मका प्रतिभास हो रहा है। धर्मी वस्तुकी प्रतीति जो है वह उन धर्मोंकी प्रतीति नहीं कहलाती। वस्तुका प्रतिभास अन्य रूपसे है। जैसे कपड़ा और और पिशाच। जब इनमें विरुद्ध धर्म हैं तब अभिन्नता कैसे कही जायगी? और, जब भिन्न भिन्न मान लिया धर्मोंको तो यह धर्म इन धर्मोंकी तरह है ऐसा व्यपदेश भी तो न बन सकेगा। कैसे यह निश्चय कराया जा सकेगा कि स्वरूप सत्त्व पररूपासत्त्व आदिक धर्म इस जीवके हैं क्योंकि उस वस्तुसे इन धर्मोंका अब सम्बन्ध ही नहीं मान रहे।

धर्मोंका धर्मीसे उपकार्य उपकारक सम्बन्ध माननेके प्रसंगमें धर्मी द्वारा धर्मके उपकारकी असिद्धिका शङ्काकारका कथन— यदि सैद्धान्तिक लोग उन धर्मोंका धर्मी के साथ सम्बन्ध माननेकी बात कहें तो उस प्रसंगमें शंकाकार कहता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रहा है कि सत्त्वादिक धर्मोंका धर्मीके साथ उपकार्य उपकारक भावरूप सम्बन्ध अगर मानते हो तो यह बताओ कि धर्मीके द्वारा धर्मोंका उपकार किया गया या धर्मोंके द्वारा धर्मीका उपकार किया गया ? जैसे जीव वस्तु तो धर्मी है, उसमें धर्म सिद्ध किए जा रहे हैं और स्वरूपासत्त्व पररूपासत्त्व ये सब धर्म हैं तो ये धर्म जीवके हैं यह सिद्ध करने के लिए उपकार्य उपकारक भावकी बात की जा रही है, तो जीव वस्तुके द्वारा उन सत्त्व असत्त्वोंका उपकार किया गया या सत्त्व असत्त्वोंके द्वारा जीवका उपकार किया गया ? यदि कहो कि धर्मीके द्वारा धर्मोंका उपकार किया गया तो धर्मी क्या एक शक्तिसे धर्मोंका उपकार करता है या अनेक शक्तियोंसे यानी जीव वस्तु उन सत्त्व असत्त्वोंका उपकार एक शक्तिसे ही कर डालता है या अनेक शक्तियोंसे कर पाता है ? यदि कहो कि एक शक्तिसे ही जो कि उस धर्मीसे अभिन्न है, उस ही शक्तिसे धर्मी धर्मोंका उपकार करता है तब तो यही बात आयी कि एक धर्मके द्वारा अर्थात् सत्त्व धर्मके द्वारा नाना धर्मोंके उपकारमें निमित्तभूत शक्तिके बलसे धर्मी आत्माकी प्रतिपत्ति की गई है। यहाँ जानकारी एक उपकार कहा जा सकता है या अन्य कुछ बात होना भी उपकार कहा जा सकता है। तो जब नाना धर्मोंका उपकार करनेसे निमित्तभूत शक्तिके द्वारा एक धर्मके माध्यमसे धर्मी आत्माका ज्ञान कर लिया गया तो उसके द्वारा उपकार्य जो समस्त धर्म समूह हैं उनकी भी प्रतिपत्ति हो जायगी। फिर तो समस्त धर्मोंका परिचय हो गया। यदि कहो कि भले ही एक धर्मके माध्यमसे धर्मीकी प्रतिपत्ति हो गई लेकिन वहाँ उपकार्यकी प्रतीति नहीं हुई अर्थात् उपकार किया जाता है सब धर्मोंका तो वहाँ सब धर्मोंकी जानकारी नहीं हो पायी है, तो कहते हैं कि जब उपकार्य धर्मोंकी प्रतीति भी सम्भव नहीं हो सकती। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि धर्मी एक शक्तिके द्वारा उन समस्त धर्मोंका उपकार करता है। यदि कहो कि अपने स्वरूपसे अभिन्न अनेक शक्तियोंके द्वारा धर्मी धर्मोंका उपकार करता है तो यहाँपर भी वही बात सोच लीजिए कि अनेक धर्मोंके माध्यमसे इस धर्मीकी जानकारी हुई तब जानकारी हो ही गई। फिर भिन्न-भिन्न धर्मोंका समूहका प्रयोजन क्या ? और उन उन उपकारक समस्त धर्मोंकी प्रतीति नहीं होती तो उसके उपकारक इस एक जीवादिक वस्तु धर्मीकी भी प्रतीति नहीं बन सकती।

धर्मोंका धर्मीके साथ उपकार्य उपकारक सम्बन्ध माननेके प्रसंगमें धर्मों द्वारा धर्मीके उपकारकी असिद्धिका शंकाकारका कथन—अब शंकाकार दूसरे पक्षको लेकर उलाहना दे रहा है कि यदि यह कहा जाय कि स्वरूपके द्वारा धर्मोंके द्वारा धर्मीका उपकार होता है अर्थात् स्वरूप सत्त्व पररूपासत्त्व आदिक जो अनेक धर्म हैं उन धर्मोंके द्वारा जीवादिक वस्तु धर्मी उपकृत होते हैं तो इस पक्षमें यह बतायें कि एकोपकार्य शक्ति वाला आत्मा वहाँ धर्मोंके द्वारा उपकृत हो रहा है या अनेकोपकार्यशक्ति वाला आत्मा उन धर्मोंके द्वारा उपकृत होता है ? दोनों ही पक्षोंमें यह बात पूछनेपर समस्त धर्म समूहका जो कि इस समय उपकारक बन रहे हैं उनका

ज्ञान अगर नहीं होता तो उपकार्यशक्ति स्वरूप धर्मीका भी ज्ञान नहीं हो सकता। यही बात क्षणिकवाद सिद्धान्तमें बतायी गई है कि नाना सत्त्वादिक धर्मोंके उपकार की कारणभूत शक्तिसे अभिन्न स्वरूप जिसका है ऐसे धर्मीका अगर ग्रहण हो गया तब फिर उस धर्मीके द्वारा उपकार्य अनेक धर्मोंका उस धर्मीसे कोई भेद न रहा तो जब यों एकात्मता आ जाती है तब अनेक भंगोंका कहना निरर्थक है।

धर्मोंकी उपकारिका व उपकार्या शक्तियोंको धर्मीसे भिन्न माननेपर उपकारकी असिद्धिका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—अब शंकाकार पूछ रहा है कि धर्मोंका उपकार करने वाली शक्तियाँ और उपकार्य जो बन रही हैं ये शक्तियाँ उस समय उन शक्तियोंके द्वारा उस धर्मीका कोई उपकार अथवा उस धर्मीके द्वारा उन धर्मियोंका कोई उपकार किया जाता तब तो यह सम्बन्ध भी नहीं बताया जा सकता। व्यपदेश भी नहीं किया जा सकता कि ये धर्मीकी शक्तियाँ हैं ये जीवके धर्म हैं। यदि कहो कि धर्मीका जो उपकार हुआ है वह शक्तियोंसे अभिन्न है तो अभिन्नका अर्थ है वही, तो शक्तियोंने वही कर दिया तो शक्तिमान कोई चीज न रही। क्योंकि जो शक्तिमान वस्तु धर्मी है वह तो शक्तियोंका कार्य बन गया। तो शक्तियोंका कार्य होनेसे वे शक्तियाँ ही कहलायीं। शक्तिमान कोई जीवादिक वस्तु धर्मी न कहला सकेंगे। और फिर यदि उन शक्तियोंसे शक्तिमानको भिन्न मानते हो और फिर ऐसी अभिन्न शक्तियोंके द्वारा शक्तिमान उपकार किया गया है तो अनवस्था दोष आयगा, क्योंकि शक्तियोंके द्वारा किया हुआ उपकार है यह किस तरहसे कहा जायगा? यदि कहो कि अन्य प्रकारसे सिद्ध कर लिया जायगा तो वह उपकार भी भिन्न है। तो यों उपकारान्तर मानते चले जाना पड़ेगा, कहीं भी विराम नहीं हो सकता। यों अनवस्था दोष आयगा। शक्तिमानके द्वारा शक्तियोंका उपकार किए जानेपर भी अन्य अन्य शक्तियोंका विकल्प बना रहना पड़ेगा। तो यों भी अनवस्था दोष है क्योंकि अन्य अन्य शक्त्यांतरका अथवा उपकारान्तरका जब निर्णय न बनाओगे तो पहिली शक्ति और पहिले उपकारका भी निर्णय न हो सकेगा। तब इन सब प्रकरणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि शक्ति और शक्तिमानका व्यवहार नहीं बनता। तब मूल बात शंकाकारकी यह है कि जीव स्वरूपसे सत् है उसमें अपना स्वलक्षण है, इस ही बातसे जब जीव वस्तु सिद्ध हो गई तो प्रथम भंगसे ही धर्मीकी जानकारी बन चुकनेपर फिर द्वितीय आदिक भंगोंका कहना अनर्थक है। इस प्रकार अनेक भंगोंकी सिद्धिमें बाधा देने वाली समस्त शंकाओंका निराकरण करते हुए आचार्य देव कहते हैं।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्मणः।
अंगित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदंगता ॥२२॥

धर्मीके प्रत्येक धर्ममें अन्य अन्य प्रयोजन होनेसे तथा किसी एक धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का अङ्गित्व होनेपर शेष धर्मोंकी अङ्गता होनेसे सभी भङ्गोंके कथनकी सार्थकता बनाते हुए उक्त शंकाओंका समाधान—अनन्त धर्मात्मक धर्मीके धर्म धर्मर्म, प्रत्येक धर्ममें जुदे-जुदे ही प्रयोजन हैं, अतएव उन सब धर्मोंका निरूपण करना आवश्यक है। अब वहाँ यह एक रहस्य समझ लीजिए कि उन सब धर्मोंमें जिन किसी भी धर्मका वर्णन किया जाय लक्ष्यमें लिया जाय तो वह उस समय बन गया अंगी धर्मी, और, उस एक धर्मको धर्मी मान लिए जानेपर शेष जो धर्म हैं उनमें सिद्ध होता है इसका धर्मपना। जैसे एक जीव वस्तुमें अनन्त धर्म हैं, उन अनन्त धर्मोंमेंसे जब एक स्वरूपसत्त्वका वर्णन किया जा रहा है, स्वरूपसत्त्वको दृष्टिमें लिया जा रहा है तो इस स्थितिमें अब स्वरूप सत्त्व अंगी बन गया। इसकी सिद्धि बनायी जा रही है। तो स्वरूपसत्त्वका समर्थन पररूपके असत्त्वसे मिलता है ना। तो अब पररूप का जो असत्त्व है वह स्व पसत्त्व अङ्गीका धर्म बन गया। तो धर्मी धर्मीकी व्यवस्था लक्ष्य और लक्षणोंपर निर्भर है। यहाँ धर्मीका अर्थ है अनन्त धर्मात्मक पदार्थ इसके लिए अनुमान प्रयोग किया जाता है कि अनन्त धर्मात्मक जीवादिक पदार्थ धर्मी है प्रमेयत्व होनेसे। यदि जीवादिक अनन्त धर्मात्मक सत् धर्मी न कहलायें तो इसकी प्रमेयता नहीं बन सकती है। तो चूँकि ये अनन्त धर्मात्मक जीवादिक पदार्थ प्रमेय हैं प्रमाणके विषयभूत हैं इस कारण ये वस्तु सब धर्मी कहलाते हैं। जो अनन्त धर्मात्मक वस्तु है वह ही प्रमेय होती है। जो जो प्रमेय होता है वह अनन्त धर्मात्मक सत् ही होता है।

धर्मीको अनन्त धर्मात्मक सिद्ध करनेके लिये प्रयुक्त प्रमेयत्व हेतुको व्यभिचरित बतानेका शंकाकारका प्रयास शंकाकार कहता है कि जो अभी अनुमान प्रयोग किया गया है कि जीवादिक पदार्थ धर्मी अनन्त धर्मात्मक हैं प्रमेयत्व होनेसे तो इस हेतुका धर्मके साथ व्यभिचार होता है क्योंकि धर्म प्रमेय तो है परन्तु अनन्त धर्मात्मक नहीं है। हेतु तो पाया गया पर साध्य नहीं पाया गया। यदि धर्म को भी अनन्तधर्मा सिद्धकर देंगे तो धर्म तो अभी धर्मी बन गया। जो अनन्त धर्मात्मक है उस ही को तो धर्मी कहते हैं। सो अब यह धर्म तो धर्मी बन गया, तब धर्म नाम इसका न रहा और जब धर्म न रहा तो धर्मके अभावमें धर्मी भी कुछ नहीं कहलाता, यों दोनोंका अभाव हो गया। यों "प्रमेयत्व होनेसे" यह हेतु सदोष है, यदि कहो कि प्रमेयत्व जो साधन धर्म है अर्थात् हेतुरूपमें प्रयोग किया गया धर्म है वह अनन्त धर्मोंसे शून्य है, तो ऐसा माननेपर लो अब तो इस प्रमेयत्वके साथ ही अनैकान्तिक दोष हो गया। प्रमेयत्व हेतु" प्रमेय तो है परन्तु अनन्त धर्मात्मक नहीं है। हेतु पाया जाय और साध्य न पाया जाय इसीको तो अनैकांतिक दोष कहते हैं। यदि इस प्रमेयत्वको भी अनन्तधर्मा मान लोगे तो यह प्रमेयत्व भी धर्मी बन गया। जो अनन्त धर्मात्मक होता है वह धर्मी कहलाता है। तो अब इस प्रमेयत्वके धर्मी हो जाने कारण यह पक्षमें गिना जायगा। जो धर्मी है उसे पक्ष पक्ष कहते हैं तो फिर प्रमेय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्व हेतु न रहेगा यों भी प्रमेयत्व हेतु दूषित हेतु है। उससे पदार्थकी अनन्त धर्मिकता सिद्ध नहीं होती। उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि क्षणिकवादियों द्वारा दिया गया यह उपालम्भ समीचीन नहीं है क्योंकि धर्मीके अतिरिक्त कुछ भी ही किसीके भी सर्वथा धर्मत्व ही रहे यह नियम नहीं है। अर्थात् धर्म भी किसी दृष्टिसे धर्मी बन जाता है। तो किसी भावमें सर्वथा धर्मपना ही रहा जब यह नियम न रहा तो प्रमेयत्व हेतु का धर्मके साथ व्यभिचार न रहेगा। देखिये जो स्वधर्मीकी अपेक्षासे सत्त्वादिक धर्म है वह ही अपने धर्मान्तरकी अपेक्षासे धर्मी बन जाता है, जैसे प्रमेयत्व अथवा सत्त्व ये धर्मी जीवादिक पदार्थोंकी अपेक्षासे धर्म है पर जब इस सत्त्वका लक्ष्य करके इस सत्त्व की विशेषता बताने लगे कि सत्त्व किसे कहते हैं, सत्त्वमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता है, जब यों अनेक विशेषोंका वर्णन करने लगे तो वह ही सत्त्व अब धर्मी बन गया तो स्व-धर्मीकी अपेक्षासे सत्त्वादिक धर्म हैं और सत्त्वादिक अन्य धर्मोंकी अपेक्षासे सत्त्वादिक धर्मी है तो यों सत्त्वादिक अनन्त धर्मात्मक सिद्ध हो जाते हैं। फिर प्रमेयत्व हेतु के व्यभिचारका कोई अवकाश नहीं रहता, इस प्रसंगमें यह आशंका न रखना चाहिए कि फिर तो यह अनवस्थित नामक दोष आ जायगा। जब धर्म को ही अनन्त धर्मात्मक धर्मी कह दिया तो उसके जो धर्म होंगे वे भी धर्मी बन जायेंगे फिर उसका धर्म भी धर्मी बन जायगा। यों तो अनवस्था दोष आ जायगा। ऐसी आशंका न रखना चाहिए, क्योंकि धर्म और धर्मीके स्वभाव भेदका व्यवहार अनादि अनन्त है किसी वृत्तवलयकी तरह जैसे उसके सभी भाग पूर्व और अपर कहलाते हैं अथवा भव्यके संसारकी तरह अनादि अनन्त हैं धर्म धर्मीके स्वभाव भेदका व्यवहार तो अब जिसका लक्ष्य किया उसका और उस लक्ष्यकी अपेक्षा बस दोनोंका सम्बंध रहा और वहीं सिद्ध होने वाला स्वभाव भेद व्यवहारमें आ गया वहाँ अनवस्थाका क्या अवकाश ?

धर्म और प्रमेयत्व नयके विषयभूत होनेसे अनित्य धर्माधर्मीके साध्य करनेमें प्रयुक्त प्रमेयत्व हेतुकी अव्यभिचारिता होनेके कारण अनन्तधर्माधर्मीकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि देखिये! जीवादिक पदार्थोंसे पृथक किया गया धर्म प्रमेय बन गया ना। तो जब पृथक किया गया सत्त्वादिक धर्म स्वतन्त्र बन गया तो वह प्रमेय हो जायगा, स्वतन्त्र एक वस्तु बन जायगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि धर्मी जीवादिकसे पृथक समझा गया धर्म प्रमेय नहीं हो जाता क्योंकि वह धर्म नयविशेषका विषयभूत है, प्रमाणका विषयभूत नहीं है। एक वस्तु जो अनन्त धर्मात्मक है उसका परिचय तो प्रमाणसे मिला। अब उस वस्तुके जो सत्त्वादिक अंश हैं वे अंश नयके विषयभूत हैं अतएव वे धर्म प्रमेय नहीं है, किन्तु नय हैं नयके विषय-भूत हैं, इसी कारण प्रमेयत्व हेतुका उस धर्मके साथ अनैकान्तिक दोष नहीं होता, क्यों कि धर्म प्रमेय नहीं है, किन्तु नय है। इस ही कथनसे यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रमेयत्व धर्म भी खुद नयका विषयभूत है। तो प्रमेयत्व धर्म भी नय बना, वह प्रमेय नहीं बना जिससे कि यह कहा जाय कि लो उस प्रमेयत्वके साथ ही इस हेतुका व्यभि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चार बन जाता है । प्रमेयत्व भी प्रमेय नहीं है, किन्तु नय विषयका आधार होनेसे नय है । अतः इस प्रमेयत्व हेतुका जो कि जीवको अनन्त धर्मात्मक सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त किया गया है उसका न तो धर्मके साथ व्यभिचार है और न प्रमेयत्व साधन धर्मके साथ व्यभिचार है । हाँ प्रमाणका विषयभूत जो प्रमेयत्व हेतु है वह अपने धर्म की अपेक्षासे अनन्त धर्मात्मक है और धर्मी है । एक अपने धर्मकी अपेक्षासे प्रमेयत्व धर्मी बन गया, इस कारण प्रमेयत्वको पक्षमें यदि प्रविष्ट करते हो तो कर दीजिए, विवक्षानुसार वह पक्ष बन जायगा, पर पक्ष बन जानेपर भी प्रमेयत्वमें हेतुपनेका व्याघात नहीं है, क्योंकि स्वपर पदार्थोंका अनन्तधर्मत्व साध्य है वहाँ प्रमेयत्व हेतु बन सकता है अन्यथा अर्थात् प्रमेय और पदार्थ ये अनन्त धर्मात्मक न हो तो प्रमेयत्व साधन की उपपत्ति नहीं बन सकती । स्व और पर याने मेय शब्द द्वारा वाच्य स्व और जीवादिक पदार्थ ये स्वयं अनन्त धर्मात्मक हैं और ऐसा ही साध्य बनानेमें ये हेतु समर्थ हो रहे हैं इस कारण धर्मी अनन्त धर्मात्म है, अथवा जो अनन्त धर्मात्मक है वह धर्मी है यह बात निर्दोष रूपसे सिद्ध होती ही है यहाँ तक अनन्त धर्माधर्मी इस शब्द की व्याख्या की गई है ।

प्रत्येक धर्ममें प्रयोजनभेद व धर्म धर्मीकी कथंचिद्भेदा भेदात्मकता होनेसे भेदाभेदात्मक वस्तुमें विरोधादिका अनवकाश—

अब इस कारिकाकी द्वितीय वार्ता कर रहे हैं उस अनन्त धर्मात्मक धर्मीके प्रत्येक धर्ममें अस्तित्व नास्तित्व आदिक प्रत्येक धर्ममें भिन्न भिन्न प्रयोजन है । जैसे सत्व धर्मका प्रयोजन विधान है असत्व धर्म का प्रयोजन प्रतिषेध है उन्हीं धर्मोंका प्रयोजन प्रवृत्ति निवृत्ति, अज्ञानविच्छेद आदिक अनेक हैं, किन्तु एक ही प्रयोजन नहीं है जिससे कि यह कहा जाय कि प्रथम भंगसे ही वस्तुका परिचय हो जाता है अतएव शेष धर्मोंका कहना अनर्थक है । तब प्रत्येक धर्मके द्वारा जो परिचय कराया जाता है वह भिन्न-भिन्न प्रयोजनमें है तो समग्र प्रयोजन वाला अनन्त धर्मात्मक धर्मी एक धर्मके कथन द्वारा ही कैसे कह लिया जायगा । अतः अन्य धर्मोंका कहना सार्थक है अनर्थक नहीं । धर्म धर्मीसे न तो अभिन्न ही है और न भिन्न ही है अर्थात् न तो अनर्थान्तर है कि वही मात्र अर्थ है और न अर्थान्तर है कि यह धर्म कुछ इन धर्मोंसे भिन्न बन गया हो तो जब धर्म धर्मीसे न भिन्न है न अभिन्न है सर्वथा तो इन दोनों पक्षोंमें दिये जाने वाले दूषणका यहाँ अवकाश नहीं है । धर्मी और धर्म ये कथंचित् भेदाभेदात्मक हैं सो भेदाभेदात्मक वस्तु जात्यन्तररूप है । जैसे चित्राकार और चित्राकारका एक सम्वेदन जैसे चित्र द्वैतवादमें यह बताया गया है कि ज्ञानक्षण एक है परन्तु उसमें अनेक चित्राकार हैं. अनन्त पदार्थ जो ग्रहणमें आते हैं, उन सबका आकार है तो पूछा जाय कि उस ज्ञानमें जो अनेक आकार पड़े हुए हैं वे भिन्न हैं या अभिन्न तो वहाँ सर्वथा कुछ कहा न जा सकेगा यदि वह चित्राकार एक ज्ञानसे भिन्न है तो वह चित्र सम्वेदन ही क्या कहलायेगा? और, यदि अभिन्न है तो भी चित्र सम्वेदन

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या कहलायेगा ? तो जैसे भिन्न और अभिन्नता से परे किसी जात्यंतर रूपमें चित्राकार एक सम्वेदनको मानता है इसी प्रकार भेदाभेदात्मक वस्तु भी एक जात्यंतर रूप है। भेदाभेदात्मक वस्तुमें विरोध आदिकको कोई अवकाश नहीं है।

अन्यतम धर्मकी अङ्गिता होनेपर शेष धर्मोंकी अङ्गता और प्रतिधर्मकी अपेक्षा धर्मीमें स्वभाव भेदका वर्णन— अब यहाँ तीसरी बात परखिये जिसका कि संकेत इस कारिकामें किया गया है कि उन अस्तित्वादिक धर्मोंमेंसे जो एक वस्तुमें पाये जाते हैं उनमेंसे कोई भी धर्म लो, उस धर्मको जब प्रधानता दी, उसको एक अङ्गी रूपमें निरखा तो उस समय स्यात् शब्दसे सूचित अन्य धर्म उसके अङ्ग बन जावेंगे। अर्थात् अन्य धर्मोंकी गौणता हो जाती है। और उसको स्पष्ट कहनेसे उस धर्मकी प्रधानता हो जाती है। क्योंकि जानने वालेकी इच्छा विशेषके अनुसार ऐसी ही विवक्षा बनी है। ऐसा ही उसने लक्ष्यमें लिया है और ऐसा ही विवक्षा बनी है। ऐसा ही कहनेकी प्रवृत्ति बनी है तो यहाँ यह निर्णय समझ लेना चाहिए कि एक भंगके बोलनेपर अन्य भंगोंका बोलना निरर्थक नहीं होता। समस्त धर्मोंका प्रयोग युक्त ही है क्योंकि प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। जो धर्म बोला गया है उस धर्मका प्रधान रूपसे परिचय हुआ है और शेष धर्मोंका वहाँ गौणरूपसे परिज्ञान है इस कारण अन्य धर्मोंका प्रयोग करना युक्त ही है। इन सब कारणोंसे धर्मीके प्रत्येक धर्मकी दृष्टिसे कथंचित् स्वभावभेद सिद्ध हो जाता है। जिस नयका विषय होनेसे धर्ममें नेयत्व स्वभाव आया प्रमाणका विषय होनेसे प्रमेयत्व स्वभाव आया वही धर्म जब अंगीरूपसे विवक्षित हुआ तो वह प्रमाणका विषय बन गया। जो धर्म ग्रहणमें आया उसकी अपेक्षासे गृहीतत्व स्वभाव बना। जो धर्म ग्रहणमें न आया उसकी अपेक्षासे अगृहीतत्व स्वभाव बना यों धर्मीमें प्रत्येक धर्मकी दृष्टिसे कथंचित् स्वभाव भेद सिद्ध होता है।

प्रत्युपाधि स्वभावभेद न माननेपर प्रमाणान्तरकी अनुपपत्तिका प्रसङ्ग— यदि प्रत्येक धर्मके प्रसंगमें परमार्थतः स्वभावभेद न माना जाय तो जो पदार्थ दृष्ट हुआ है अर्थात् निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा प्रतिभान हुआ है अथवा जो अवाहित बन गया है फिर उस पदार्थके सम्बधमें अनुमान आदिक अन्य प्रमाणोंका कहना अथवा अन्य वचनोंका बोलना निरर्थक हो जायगा, क्योंकि वस्तुमें निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा पहिले ही ग्रहण कर लिया गया। तो अब अन्य प्रमाणसे ग्रहण करने पर ग्रहीत ग्रहणका दोष आता है अर्थात् प्रमाण द्वारा ग्रहीत किए गए तत्वका ही ग्रहण किया है, और पुनरुक्ति दोष भी आता है तो इसके दोष को दूर करनेके लिए जैसे उस स्वलक्षणमें भी स्वभावभेद मानना पड़ेगा ऐसे ही धर्मीके प्रत्येक धर्मके प्रसंगमें भी स्वभावभेद मान लेना चाहिये। यदि परमार्थसे धर्म धर्मके प्रति स्वभावभेद न माना जाय ज्ञानके द्वारा जान लिया जानेपर फिर उस पदार्थको जाननेके लिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अनुमान या आगम आदिक निरर्थक हो जायेंगे क्योंकि जो दर्शन और सविकल्प ज्ञानके द्वारा पदार्थ ग्रहण किया गया था उस ही का ग्रहण अन्य प्रमाणसे हो रहा है। वह किस प्रकार उसका वर्णन सुनो !

प्रत्युपाधि स्वभावभेद न माननेपर स्वार्थानुमानकी निरर्थकता—जब शब्दादिकका साक्षात प्रतिभास कर लिया गया अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा शब्दादिकका दर्शन किया, प्रतिभास किया तो उस शब्दके बारेमें फिर क्षणिकपनेको सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनाते हैं सो न बन सकेगा क्योंकि जब शब्दको निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जान लिया तो फिर गृहीत हो गया। अब गृहीतका ग्रहण फिर अनुमान द्वारा प्रत्यक्षसे जान लिया तो फिर गृहीत हो गया। अब गृहीतका ग्रहण फिर अनुमान द्वारा कराया जाता है। तो ग्रहीत ग्रहण होनेसे वह अप्रमाण हो जायगा। तो अब शब्द शब्दके बारेमें स्वार्थानुमानका प्रयोग नहीं हो सकता। अथवा किसी भी तत्वको सिद्ध करनेके लिए स्वार्थानुमानका प्रयोग बन ही न सकेगा, क्योंकि जिस विषयको स्वार्थानुमानसे सिद्ध किया जा रहा उसका तो ज्ञान पहिले दर्शन और सविकल्प ज्ञानसे ही हो चुका था। धर्मीके ज्ञान होनेपर अब कोई ऐसा स्वभाव नहीं रहा जो जाना न गया हो। ऐसी स्थितिमें कोई साध्य ही नहीं हो सकता है। शंकाकारके यहाँ दो ख्याल थे एक तो यह कि पदार्थमें स्वभावभेद नहीं होता। दूसरे यह कि पदार्थको दर्शन आदिकके द्वारा जब प्रतिभासमें ले लिया तो उसका कोई सा भी स्वभाव अज्ञात न रहा, सब कुछ ज्ञात हो गया और इसी कारण पदार्थमें यह स्वभावभेद भी नहीं बन सकता। तो इसीके उत्तरमें कहा जा रहा है कि किसी पदार्थका ज्ञान होनेपर फिर वहाँ कोई अप्रतिपन्न स्वभाव रहा हो नहीं, तो अब किसे सिद्ध करना है? दूसरा कारण यह है कि स्वभावमें अतिशय किसी भी प्रकार नहीं माना गया है इस कारण स्वार्थानुमानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

प्रत्युपाधि स्वभावभेद न माननेपर परार्थानुमानकी निरर्थकता—अब परार्थानुमानकी बात सुनो परार्थानुमान होता है वचनात्मक स्वार्थानुमानसे तो स्वयंका प्रतिबोध कराया जाता है और परार्थानुमानसे दूसरेको प्रतिबोध कराया जाता है। तो वचनात्मक जो परार्थानुमान है वह भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि जब अनुमान प्रयोग चलेंगे तो सबसे पहिले धर्मीको कहना पड़ता। जैसे यह पर्वत अग्निमान है धूमवान होनेसे तो यहाँ यह पर्वत इतना अंश धर्मी कहलाता है, पक्ष कहलाता है। तो जब धर्मीका प्रथम बोलना बना तो धर्मीके कथनमात्रसे ही साध्यका निर्देश सिद्ध हो जायगा क्योंकि शङ्काकारने यह माना है कि पदार्थका किसी भी प्रकार ज्ञान हो तो वहाँ सर्व अंशोंका अवयवका ज्ञान हो जाता है। तो जब पर्वत इतना जाना गया तो अग्निमान है आदिक जो भी विशेषण हो सकते हैं सबका ज्ञान हो जायगा। साधन धर्मीके वचनमात्रसे साध्यका निर्देश बन जाता है, अतः परार्थानुमान

http://sahjanandvarnishastra.org/

का प्रयोग करना गृहीत ग्रहण है इस कारण अप्रमाण होगा। धर्मीका एक बार जब वचन कह दिया गया तो फिर उसमें कुछ भी सिद्धि करना पुनरुक्त कहलायगा। क्योंकि शब्दसे जब जान लिया पहिले या जिस किसी भी धर्मीको प्रथम जान लिया तो जान लिया। अब उसमें स्वभावका अतिशय तो हो नहीं सकता। शंकाकार स्वयं यह मानता है कि पदार्थमें स्वयं भेद नहीं है। जो पहिली बार परखा सो परखमें आ गया। उसमें कोई गृहीत अगृहीत भ्रम हो ऐसा भेद नहीं हुआ करता। तो इन सब कारणों से अनुमान आदिक प्रमाणोंका प्रयोग करना निरर्थक हो जायगा।

अनन्त धर्मात्मक धर्मीका निर्णय—यदि प्रमाणान्तरोंको निरर्थकताके दोषसे बचना है तो यह मानना होगा कि पदार्थमें धर्म धर्मीके प्रति स्वभावभेद पड़ा हुआ है और जब स्वभावभेद है तो वहाँ अनन्त धर्म सिद्ध होते हैं। फिर उन अनन्त धर्मोंमें प्रत्येक धर्मके परिज्ञानका प्रयोजन भिन्न-भिन्न है। और तब वहाँ जिस किसी भी धर्मको लक्ष्यमें लेते हैं तो वह अंगी बनता है और शेष जो और धर्म हैं वे अङ्ग कहलाने लगते हैं इस बातमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं है। तो उक्त विवरणसे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थ निरंश नहीं है, सावयव है, सांश है, अनन्त धर्मात्मक है। इसी प्रकार निरंशवादियोंका यह कहना भी बिना विचारे हुआ है कि जब पदार्थ निरंश है तो किसी भी पदार्थको जब देख लिया निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा विषयभूत हो गया तो उसके सारे धर्म ही जान लिए गए, देख लिए गए, क्योंकि पदार्थ निरंश है। पदार्थको जाननेपर सब कुछ जान लिया, वहाँ यह जाना गया और यह धर्म नहीं जाना गया यह भेद नहीं होता, क्योंकि वहाँ तो उतने अंश और धर्म है ही नहीं। केवल निरंश पदार्थके सम्बन्धमें भ्रान्ति रहती है उसका कारण निश्चय नहीं हो पाता तब साधनकी प्रवृत्ति होती है और अनुमान प्रयोग बनता है, ऐसा निरंशवादियोंका कहना बिना विचारे ही कहना है, क्योंकि जो स्वभाव देख लिया गया, जिस पदार्थका निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा प्रतिभास हो गया उसमें यदि स्वभावका अतिशय नहीं मानते तो समस्त गुणोंके साधनका विरोध होता है। समस्त गुण क्या? जब स्वभावमें कोई अतिशय नहीं मानते, भेद ही नहीं मानते तो 'सारे गुण" यह कहना ही स्ववचन बाधित है।

अनन्त धर्मा धर्मीमें स्वभावातिशय न माननेपर विडम्बनान्तका दिग्दर्शन—यदि यहाँ निरंशवादी यह कहे कि समस्त गुणोंके दर्शनको विरुद्ध कैसे कहा जा रहा है? जितने दृष्ट अर्थमें और समस्त गुण वाले धर्मी मात्रमें अभ्रान्ति है तो उतने रूपसे धर्मीमें अभ्रान्ति है, पर समस्त गुणोंमें अभ्रान्ति नहीं है। एक धर्मीको जान लिया तो धर्मी मात्रके जाननेमें कोई भ्रम नहीं है, पर उसके जो समस्त गुण है उन गुणोंमें भ्रान्ति हो सकती है और उस गुणकी सिद्धिके लिए फिर अनुमान बनाना सार्थक होता है, इसलिए समस्त गुणोंके दर्शन हो ही गये और अनुमान प्रयोग करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरर्थक है यह कहना उचित नहीं रहा ऐसा निरंशवादी कहें तो उसका समाधान सुनो कि जब धर्मी मात्र अभ्रान्तिमें निर्बाध सिद्ध हो गया तो अब साध्य स्वभावमें भी भ्रान्ति नहीं रह सकती। यदि साध्यमें भ्रान्तिम मान ली जाय तो फिर साधन में भी भ्रान्ति आ पड़ेगी। जैसे कहते कि शब्द क्षणिक है सत्व होनेसे तो शब्दकी क्षणिकतामें भ्रम हो गया, उसको दूर करनेके लिए अनुमान प्रयोग बताते तो शब्द की सत्तामें भी भ्रम हो गया तो भ्रम वाले साधनसे तो पदार्थका निश्चय न होगा। तो अनुमान प्रयोग यों भी न बन पायगा। और यदि शब्दके सत्वमें निर्णय समझते हो कि शब्दका सत्व तो निश्चित है वहाँ भ्रान्ति नहीं हुई है तो शब्दके अनित्यपनमें भी क्यों अनिश्चय बताते? जब ही शब्दका निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा प्रतिभास हुआ वैसे ही अनित्यपना भी जान लिया गया उस पदार्थके सम्बन्धमें जितने भी धर्म और गुण हैं वे सब जान लिए गए। यदि नहीं जान लिए गए तो स्वभावका अतिशय फिर मानना ही पड़ेगा कि कोई धर्म नहीं जाना गया। अंश जाना गया। अब जाना गया। तो अब पदार्थमें कोई विशेषता समझी गई। यदि निश्चित धर्मका और अनिश्चित धर्मका जैसे कि साधनको तो निश्चित माना और साध्यको अनिश्चित माना तो ये दोनों ही एक स्वभाव वाले हो जायें, स्वभाव भेद न माना जाय तो इसमें तो व्यवहार ही बिगड़ जायगा। अत्यन्त भिन्न पदार्थ भी एक हो बैठेंगे। कपड़ा और पिशाच ये दोनों भी एक हो जायेंगे, इस कारण स्वभावभेद प्रति धर्म अपेक्षासे वस्तुमें है, यह न माननेपर अनेक प्रकारकी विडम्बनायें बन जायेंगी।

स्वभावभेद प्रतिधर्म अपेक्षासे होनेमें अनेक विडम्बनायें—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि यद्यपि पदार्थमें स्वतः स्वभावका अतिशय नहीं है, स्वभावभेद नहीं है तो भी विजातीय भेदके कारण स्वभावका अतिशय बन जायगा। याने अन्य व्यावृत्तिसे या विजातीय जो उनके प्रतिपक्षी हैं अनेक पदार्थ उनके भेदके कारण स्वभावमें अतिशय हो जायगा, पर स्वभावातिशय पदार्थमें स्वतः नहीं है तब परमार्थतः जो सिद्धान्त बताया है उसका घात न होगा। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर देखिये—सत्व उत्पत्ति एवं कृतकत्व आदिक जो हेतु कहे जाते हैं उनमें स्वतः कोई प्रतिपक्ष स्वभाव विशेष तो रहा नहीं, याने सत्वका प्रतिपक्ष स्वभाव हुआ असत्व। उत्पत्तिका प्रतिपक्ष स्वभाव हुआ अनुत्पत्ति कृतकत्वका प्रतिपक्ष स्वभाव हुआ अकृतकत्व तो प्रतिपक्ष स्वभाव विशेष तो माना नहीं, तब, यह कल्पना भी कैसे बन जायगी कि जितने स्वरूप हैं, जितने विजातीय हैं उतने ही वहाँ व्यावृत्तियां हैं। जैसे एक घट पदार्थको कहना है तो घटके अलावा लोकमें जितने भी पदार्थ हैं, हैं वे सब अनन्त पदार्थ। तो उन प्रत्येक पदार्थोंकी घटमें व्यावृत्ति है अर्थात् घटमें सारे ही अन्य अनन्त पदार्थ नहीं हैं, तो जितने भी पर पदार्थ हैं उनकी व्यावृत्ति है इस कारणसे वहाँ स्वभावभेद बन जायगा, यह कल्पना भी नहीं बन सकती, क्योंकि जब घटमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयं प्रतिपक्ष स्वभाव वहीं पड़ा हुआ है तब पररूपकी दृष्टिसे वहाँ भी भेद है यह कल्पना करना असंगत है।

सत्त्वादि हेतुओंके व्यावर्त्य पररूपका अभाव होनेसे असिद्ध होनेके कारण सत्त्व असत्वादि अनेक धर्म और उनकी विवक्षावश अङ्गिता व अङ्गताकी सिद्धि—कोई भी पदार्थ असत् या अनुत्पत्ति वाला या अमूनक वस्तुभूत निरंशवादियोंके यहाँ नहीं है, सो इन हेतुओंका कोई पररूप नहीं है, क्योंकि स्वभाव विशेष माना ही नहीं गया वस्तुमें। तो फिर किससे निवृत्त होता हुआ शब्दादि स्वलक्षण परमार्थतः स्वभावभेद होनेपर भी विजातीय भेदकी वजहसे स्वभाव भेद वाला कल्पित किया जा सकेगा? यदि शङ्काकार यह कहे कि दूसरे लोग मानते हैं स्वरूपका प्रतिपक्ष स्वभाव उससे सिद्धि हम कर लेंगे तो उसका उत्तर स्पष्ट है कि दूसरेने जो कुछ माना वह शंकाकारको तो प्रमाणभूत नहीं है, शङ्काकारकी निगाहमें तो वह अप्रमाण है। तो अप्रमाणसे जिसकी सिद्धि है, प्रमाणसे नहीं है, उससे कुछ सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि शङ्काकार यह कहे कि वह स्वभावभेद कल्पनासे आरोपित होता है तो यह बतायें फिर वे उस कल्पनाकी उत्पत्ति कैसे होती है? यदि यह कहा जाय कि अनादि कालसे जो अविद्या साथ लगी है उसके उदयके कारण कल्पनाकी होती है तब सुनो कि फिर उसी अनादि अविद्याके कारण सत्वादिक धर्मकी कल्पना भी करलो। फिर वहाँ असत्व व्यावृत्ति, परपदार्थकी व्यावृत्ति याने अन्यापोहकी कल्पना बनानेका श्रम क्यों किया जाता है? वास्तविकता यह है कि जो कुछ भी सत् है वह स्वयं सत् है। स्वरूपसे सत् है और उसीका ही यह विशेषण है कि पररूपसे असत् है। तो अन्यापोह और स्वरूप सत्त्व इन दोनोंका परस्पर अविनाभाव है। अब शब्द द्वारा वाच्य केवल अन्यापोह मानना तो असंगत है और निर्विकल्प अवाच्य केवल स्वलक्षण मानें, अन्यापोह स्वरूप न मानें, पररूपका असत्व न माने तो भी असंगत है। तो पदार्थमें स्वरूपकी अपेक्षासे सत्त्व है पररूपकी अपेक्षासे असत्त्व है इसी तरह अन्य भी अनेक धर्म हैं। अन्य उन धर्मोंमें जिसका निर्णय किया जा रहा हो वह बन जाता है धर्मी और शेष अन्य धर्म जो कि गौण रूपसे ज्ञात है वे बन जाते हैं उसके अंग।

शंकाकार द्वारा सत्त्व उत्पत्तित्व कृतकत्वके व्यावर्त्य परिकल्पित पररूपोंकी सिद्धिका प्रयास—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सत् ही कोई, गौण है विधि स्वभाव जिसमें ऐसा वह सत् ही निषेधकी प्रधानतासे असत् कहा जाता है। जो पदार्थमें प्रथम भङ्ग स्वीकार किया है स्याद्वादियोंने कि सत है तो वही सत् निषेधकी प्रधानतासे असत्रूप कहा जाता है, क्योंकि असत्त्व नाम है उसका जो अन्य सत्त्वसे रहित को ही असत्वका व्यपदेश किया गया है। एक वस्तुमें जो सत् है उसके अलावा वस्त्वन्तरमें जो सत् है उसको कहते हैं अन्य सत् उस अन्य सत्से रहित है यही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहलाया है अ स्व इसी तरह अन्य उत्पत्तिवानपना न रहे उसे कहते हैं उत्पत्तिमान। ऐसा उत्पत्तिमान ही कुछ अनुत्पत्तिमान शब्दसे कहा जाता है इसीतरह कृतक ही अकृतक कहा जाता है अर्थात् उसमें कृतकान्तर न हो इसी प्रकार वस्त्वान्तरसे रहित वस्तु ही अवस्तु कही जाती है तो यह सब व्यवहार जो चल रहा है वह सब निषेधकी प्रधानतासे व्यवस्थित पद थंश चलता है।

उक्त कथनमें भी सत्वादिक वस्तु धर्मोंकी सिद्धि बताते हुए शंकाका समाधान—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस कथनमें भी तो परमार्थसे सत्वादिक वस्तु स्वभाव भेदोंकी सिद्धि हो जाती है खुद ही कहा है कि अन्य वस्तुओंका सत् नहीं होना वही विवक्षित वस्तु असत् है। तो आखिर उस वस्तुमें सत्व हो असत्व हो यह स्वभाव तो जाना ही गया। यों स्वभाव भेद सिद्ध हो जाता है, जिसमें स्वभाव भेद न हो उसे वस्तु रूप ही माननेमें विरोध आता है माना भी कैसे जायगा। जो स्वभाव सत् है, उनमें गौणभाव और प्रधानभाव बनता है। जैसे कि शरीर अंग हैं शिर और पैर तो उनमें गौण और प्रधानभाव बन जायगा। शिरकी प्रधानता है पैरकी गौणता है। तो जो सत् स्वरूप है ऐसे स्वभावमें तो गौणभाव और प्रधानभाव बन जाता है, किन्तु जो असत् हो, खरगोशके सींग आकाशके पुष्प आदिक इनमें गौण और प्रधानभाव बनाया कैसे जा सकेगा ? इस कारण कल्पना किए गए अन्यापोहके द्वारा धर्मान्तरकी व्यवस्था बनाना अनर्थक प्रलाप मात्र है। जैसे असत्वकी व्यवस्था यों बनायी जाती है निरंशवादमें कि अन्य वस्तुका सत्व इस विवक्षितमें नहीं है, यही असत्व कहलाया। तो केवल कल्पित व्यावृत्ति मात्रसे धर्मान्तरकी व्यवस्था बताना यह केवल प्रलाप मात्र है। जो विवक्षित वस्तु है वह ही स्वयं अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नहीं है। इससे अस्तित्वकी तरह नास्तित्व धर्म भी व्यवस्थित है। यों न माना जाय तो वस्तुके स्वभावका अभाव ही बन जायगा। फिर तो जिस किसी भी बातके लिए कुछ भी कुछ कहा जा सकता। यों भी कहा जा सकता कि वस्तु कोई चीज नहीं होती अवस्तुकी व्यावृत्तिसे वस्तु नामका व्यवहार होता है। और व्यावृत्ति बतानेके लिए कल्पित वस्तु व्यावृत्तिसे अवस्तुका व्यवहार माना गया है।

परस्पराश्रयता बताकर उक्त उपालम्भकी व्यावृत्ति बतानेमें शंकाकारके इष्टकी असिद्धि—यहां शंकाकार कहता है कि यह उपालम्भ देना कि यह भी कहा जा सकता है कि वस्तु कोई चीज नहीं है. वस्तुका तो अवस्तुकी व्यावृत्तिसे व्यवहार होता है और कल्पित वस्तुकी व्यावृत्तिसे अवस्तुका व्यवहार बनता है, ऐसा उपालम्भ देना यों संगत नहीं बनता कि इसमें परस्पर आश्रयणका दोष आयगा। अवस्तु व्यावृत्तिसे वस्तुका व्यवहार बनाया और वस्तुकी व्यावृत्तिसे अवस्तुका व्यवहार बनाया तो इस कथनमें परस्पर आश्रयका दोष हो गया। जब वस्तु व्यवहार सिद्ध हो ले तो अवस्तु व्यवहार बने। जब अवस्तु व्यवहार बने तब वस्तु व्यवहार बने तो ऐसा इतरे-

Version 1

तराश्रय दोष होयेसे यह उपालम्भ नहीं दिया जा सकता अथवा ऐसी कल्पना नहीं हो सकती और न करनी चाहिए। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर कल्पित असत्त्वकी व्यावृत्तिसे सत्त्वकी मान्यता करना और सत्त्वको व्यावृत्तिसे असत्त्वकी कल्पना करना यह भी न किया जांय, ऐसी कल्पना न होना चाहिए, क्योंकि यहां पर भी परस्परमें आश्रयकी समानता है। जब असत्त्व व्यावृत्तिसे सत्त्व सिद्ध हो सो यहाँ पर भी परस्पर आश्रय होनेसे यह भी कल्पना मत बनाओ।

सत्त्वादि न मानकर स्ववासना सामर्थ्यसे सत्त्वादि कल्पनाकी उत्पत्ति माननेपर अनेक विडम्बनाओंका दिग्दर्शन - यदि शंकाकार कहे कि देखिये— अपनी वासनाकी सामर्थ्यसे सत्त्व और असत्त्व आदिक कल्पनाओंकी उत्पत्ति होती है और उन कल्पनाओंकी उत्पत्तिसे सत्त्व असत्त्वका व्यवहार बनता है। तो इसका उत्तर है यह कि यह सत्त्व असत्त्वका व्यवहार हो परस्पर अपेक्षा रखता है। सो इसमें तो अपेक्षा चल रही है। परस्पर आश्रयका दोष यहाँ न बनेगा। समस्त धर्म धर्मीके जो विकल्प हैं और शब्द हैं ये स्वलक्षणको विषय नहीं करते। न तो विकल्पज्ञानका विषय स्वलक्षण है और न शब्दोंका विषय स्वलक्षण है इस कारण कल्पित अन्यकी व्यावृत्ति इसका विषय बनता है स्वलक्षणको तो केवल निर्विकल्प दर्शन ही प्रतिभासमें लेता है। तो स्वलक्षण विकल्प ज्ञानका विषय नहीं और शब्दोंका विषय नहीं, तो विकल्पज्ञानका और शब्दोंका विषय नही, तो विकल्पज्ञानका और शब्दोंका विषय अन्य व्यावृत्ति है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस तरहकी कल्पना बनानेपर कि विकल्पज्ञान केवल अन्यापोहको विषय करता है और शब्द भी अन्यापोहको विषय करता है, इस तरह माननेपर यही तो अर्थ बनेगा कि इन्द्रियज ज्ञान भी फिर स्वलक्षणके विषय करने वाले न माने जायेंगे। और वह इन्द्रियजन्य ज्ञान केवल व्यावृत्तिको ही देखे क्योंकि ऐसा सिद्धान्त मानते हैं कि दर्शन जिस पदार्थको विषय करे उस ही पदार्थको प्रमाणित करनेके लिए विकल्पज्ञान बनता है। तो जो पदार्थ देखा नहीं गया उसमें विकल्प ज्ञानका सम्बन्ध न बन सकेगा और यदि न देखे गए न ग्रहण किए गए पदार्थको विकल्पज्ञान जानने लगे तब तो नील पदार्थमें पीत वा श्वेत आदिकका विकल्प उठने लगेगा। क्योंकि विकल्प ज्ञानको अब यह सम्बन्ध माननेकी बात न रही कि वह किसी देखे हुए पदार्थके बारेमें ही अनुभव करे जैसे नील पदार्थमें पीत आदिक नहीं देखे गए तो नील पदार्थमें पीत आदिक विकल्पोंकी उत्पत्ति भी नहीं मानी गई क्योंकि वहां नील पदार्थ ही देखा गया है और उसी कारण नील विकल्पोंकी ही उत्पत्ति होती हैं। तो जैसे यह बात मान लेना चाहिए कि जब निराकार दर्शनसे असत्त्व व्यावृत्ति न देखी गई तब विकल्प ज्ञानसे असत्त्व व्यावृत्तिका विकल्प न होना चाहिए, और निराकार दर्शनमें स्वलक्षणको ही देखा है तो विकल्पज्ञानके द्वारा स्वलक्षणका हीं विकल्प होना चाहिए। किन्तु शंकाकार ऐसा तो नहीं मानते। निरंशवादमें माना यह गया है कि अन्यापोहमें ही विकल्पज्ञानकी उत्पत्ति होती है।

http://www.jainkosh.org

असत्त्वादि व्य वृत्तियोंका दर्शनसे ग्रहण न होनेपर भी अनादिवासना से सद्विषयक सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर नील रूपादि व सुख दिकी व्यवस्थाका अभाव प्रसंग — अब शंकाकार कहता है कि कोई असत्त्व व्यावृत्तिको निराकर दर्शनने नहीं देखा, फिर भी अनादिकालकी वासनाके कारणसे असत्त्व व्यावृत्तिकी कल्पना उत्पन्न होती है ऐसा स्वीकार किया जाता है। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते है कि फिर तो इसी प्रकार यह भी कह लीजिए कि नीलादिक विकल्पों की उत्पत्ति हो जायगी और ऐसा यदि बन बैठे कि नील पदार्थका निराकर दर्शनसे प्रतिभास न हो और विकल्प ज्ञानने इसको जान लिया तब तो नीलादिक रूपकी व्यवस्था न होनी चाहिए अर्थात् जब निराकर दर्शनने उस वस्तुको प्रतिभासा ही नहीं तो सविकल्पज्ञान जो कुछ हो रहा वह कुछ भी हो जाय, उसमें अब कोई निश्चयकी बात तो न रहेगी कि वह नील ही कहा गया है अथवा रतो कहा गया है और इस तरह सुखादिककी भी व्यवस्था किसी तरह सम्भव नहीं हो सकती जैसे नील रूपके न देखने पर भी वासनाके कारण नील विकल्प माना तो ऐसी ही वहाँ कहा जा सकेगा कि सुखादिकका दर्शन न होनेपर भी केवल वासनाकी सामर्थ्यसे ही सुखादिकका विकल्प बन जाता है तो इस विधिमें यह सुख है यह दुःख है ऐसे अनुभवकी कोई व्यवस्था हो न बन सकेगी। यदि यह आशंका करें कि स्वसम्वेदनके द्वारा ही सुखादिक प्रतिभासमें आते हैं तो स्वसम्वेदन व्यवस्था भी बनानी कठिन हो जायगी, क्योंकि कह देंगे कि अनादि वासनासे ही निश्चयकी उत्पत्ति होती है। तो उस निश्चयमें भी अब क्या दम रहा जो व्यवस्था कुछ बना सके यदि शंकाकार ऐसी आशंका करे कि अनादि वासना के कारण सुखादिक विकल्पोंकी उत्पत्तिको कह कौन रहा है जिससे कि सुखादिककी व्यवस्था न बन सके तो यों यदि फिर वासनासे सुखादिक विकल्पोंकी उत्पत्ति नहीं मानते हो तो उस सम्वेदनकी अथवा सुख आदिककी अव्यवस्था होना अपने आप सिद्ध हुआ क्योंकि सुख आदिकको दर्शनने भी ग्रहण नहीं किया और अनादि वासनाके सहयोगसे भी विकल्प न बना। तो सुखादिककी अव्यवस्था अपने आप बन बैठो। जैसे कि स्वर्गरचना करानेकी शक्ति इसे कैसे सिद्ध कर सकोगे? अथवा वेद्याकारका भेद कौन निश्चित कर सकेगा? तो यों यदि विकल्पसे सुख आदिककी बात नहीं मानी जाती और वासनाको ही मानते हो तो सुख आदिककी व्यवस्था न बनेगी और यदि वस्तुके जो सही स्वरूप हैं उस ढंगसे बात करोगे तो सब व्यवस्थायें बन जायेंगी। शंकाकार यदि ऐसा कहे कि स्वरूपका ज्ञान तो स्वत: हो जाता है यह तो बाह्य पदार्थों के ज्ञानकी बात है कि अनादि वासनासे बने विकल्पसे बने, पर स्वरूपकी तो जानकारी स्वत: बन जाती है, तो ऐसी यदि आशंका करे तो भी यह बात सिद्ध न हो पायेगी क्योंकि उस प्रकारका निश्चय नहीं बनता। स्वरूपकी स्वत: गति कैसे सिद्ध की जा सकेगी? कोई युक्ति ही नहीं है। जैसे कि अद्वैतवादका निश्चय निरंशवादी नहीं मानते। तो यों कथन मात्रसे स्वरूपका स्वत: ही परिचय हो जाता है यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वीकार कर लिया जायगा ? तो जब सुखादिकके दर्शन न होनेपर सुखादिककी व्यवस्था न बनी तब वस्तुके दर्शनसे उत्पन्न होने वाले निश्चयसे यान विकल्पज्ञानसे वस्तुके स्वभावभेदकी व्यवस्था माननी पड़ेगी और इस स्वभावभेदकी व्यवस्थासे सत्त्वादिक धर्मका निश्चय बनेगा।

वस्तुमें सत्त्वादिक धर्मोंकी परमार्थतः व्यवस्था—उक्त विवरणसे वस्तु स्वरूपका निर्णय करते हुए मान लेना चाहिए कि वस्तुमें सत्त्वादिक धर्मभेदकी व्यवस्था वास्तवमें है ये सत्त्व असत्त्व आदिक अनन्त धर्म वस्तुमें स्वतः न हों तो किसी भी जगह अवस्थित, निर्णय नहीं हो सकता। जब सत्त्वादिक धर्मोंकी व्यवस्था परमार्थसे मान ली जाती है तो सत्त्वादिक सप्तभंगी समीचीन सिद्ध हो गई। क्योंकि सत्त्वादिक धर्मों की व्यवस्था सुनयके द्वारा बनायी गयी। वस्तुमें अनन्त धर्म हैं। उन धर्मोंमें जिस किसी भी धर्मका भंग अथवा प्रयोग किया जाता है तो उस समय शेष अन्य धर्म गौण, रूपसे परिचित हो जाते हैं। उनका विरोध न करके सुनय अपने विषयभूत धर्मको ग्रहण करता है और, इस पद्धतिमें सत्त्वादिक सप्तभंगोंकी व्यवस्था सिद्ध होना वास्तविक ही है। अब इस समय सत्त्व असत्व सम्बन्धी सप्तभंगीकी तरह एक अनेकपनेकी सप्तभंगीमें भी उस ही प्रक्रियाका निर्देश करते हुए आचार्य देव कहते हैं ?

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत् ।
प्रक्रियां भंगिनीमेनां नयैर्नयविशारदः ॥२३॥

एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मोंकी सप्तभंगी विधिसे योजना—एक और अनेक विकल्प आदिकमें भी सप्तभंगीकी उस ही प्रक्रियासे इन धर्मोंकी व्यवस्था बनाना चाहिए। नयोंके पण्डित जन नयोंके द्वारा प्रतिधर्मसे सम्बन्धित सप्तभंगीकी योजना ऐसी बनाते हैं स्यात एक—अनेक ही है, यह एकत्व और अनेकत्वके प्रसंगमें स्याद्वाद विशेष का विचार है और, इसमें जो प्रक्रिया पहिले बताई गई है उस ही प्रक्रियासे इसकी योजना है। इसी प्रकार स्यात् नित्य है, स्यात अनित्य है, अथवा कोई भी एक धर्म माना जाय तो उसके प्रतिपक्षभूत धर्म भी मानने पड़ते हैं। तो ऐसी स्थितिमें किसी भी एक धर्मके बोलनेपर उसके प्रतिपक्षभूत अन्य धर्म स्वतः कहे हुए हो जाते हैं। उन दोनोंकी क्रमसे विवक्षा किए जानेपर तृतीय उभय धर्मकी निष्पत्ति होती है और एक साथ दोनों कहे जाना अशक्य है। इस कारण अवक्तव्यपनेकी निष्पत्ति होती है। फिर क्रम अर्पित पद्धतिसे शेषके तीन भंग भी प्रयुक्त हो जाते हैं। तो यों स्याद्वादी जन युक्तिके अनुसार एकत्व अनेकत्व आदिक विकल्पोंमें भी सप्तभंगीकी योजना करते हैं। स्याद्वाद शासनसे विपरीत बुद्धि रखने वाले मनुष्योंको यह अधिकार नहीं है कि वस्तु धर्मकी सही योजना बना सकें। अब एकत्व और अनेकत्वके सम्बन्धमें किस प्रकार सप्तभंगीकी निष्पत्ति होती है सो सुनो ! जब सद्द्रव्यनयकी अपेक्षा करते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो वहाँ विदित होता है कि वस्तु स्याद् एक है। सत् पर्यायनयकी अपेक्षासे अथवा सर्वथाकी दृष्टि लग कर सब एक हैं यह कहना युक्त नहीं बनता क्योंकि इसमें प्रमाणसे विरोध है। जैसे किसी एक मनुष्यका जब पिता बताया जा रहा है तो पुत्रकी अपेक्षा से वह पिता कहा जा सकता है, उसका पिताकी अपेक्षासे पिता नहीं कहा जा सकता या जगतके सभी मनुष्योंकी अपेक्षा पिता नहीं कहा जा सकेगा, क्योंकि इसमें प्रत्यक्षसे विरोध आता है।

सद्द्रव्यनयकी दृष्टिसे भी जीवादिक छहों द्रव्योंमें एकत्वकी अनुपपत्तिकी आशंका—यहाँ शंकाकार कहता है कि सद्द्रव्यनयकी भी अपेक्षा लगा लें फिर भी जीवादिक द्रव्य एक तो न बन जायेंगे क्योंकि छहों द्रव्योंको एक माननेमें प्रतीतिसे विरोध आता है; क्योंकि उन सभी द्रव्योंके विषयमें एकत्व प्रत्यभिज्ञान नहीं बन रहा है कि जो ही यह जीव है सो ही यह अजीव है। प्रत्यभिज्ञान न होनेपर एकत्वकी प्रतीति नहीं बन सकती। तो छहों द्रव्योंमें एकत्वकी प्रतीति तो की ही नहीं जा सकती। तो सद्द्रव्यनयकी अपेक्षासे छहों द्रव्योंको एक न कहा जा सकेगा। वहाँपर भी क्रम-क्रमसे ही एक-एक पदार्थकी सिद्धि की जा सकेगी। इसका कारण यह है कि एकत्व प्रत्यभिज्ञानके द्वारा ही साध्य होता है अन्यथा प्रत्यभिज्ञानकी दृष्टिसे विपरीत हो और उसे एक मान लिया जाय तो इसमें बड़ी विड़म्बना बन जायगी। देवदत्त और यज्ञदत्त ये दो भिन्न भिन्न पुरुष हैं, उनमें भी एकत्व बन बैठेगा।

सत्त्व व द्रव्यत्वकी दृष्टिसे छहों द्रव्योंमें एकत्वका अविरोध बताते हुए शंकाका समाधान—उक्त शंकाका समाधान दो प्रकारसे प्राप्त होता है। कुछ दार्शनिक इस प्रकारसे समाधान देते हैं कि जो सद् द्रव्य नयकी अपेक्षासे स्यात् एक कहा गया है सो यहाँ सद्द्रव्य नयका अर्थ है कि सत् ही द्रव्य है, यह तो समाससे सिद्ध हुआ सद्द्रव्य और सद्द्रव्य विषयक नय है, परम संग्रहनय, शुद्धसंग्रहनय। जिस संग्रह नयमें सबका संग्रह है ऐसे संग्रहनयकी अपेक्षासे समस्त वस्तुओंमें एकत्वकी बात कहनेमें कोई दोष नहीं है अर्थात् जितने भी पदार्थ हैं वे सब सत्स्वरूप हैं। उस सत्त्वकी अपेक्षा से सर्व एक है, ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। कुछ दार्शनिक ऐसा समाधान करते हैं कि सद् द्रव्यनयका अर्थ यों होता है कि सद् द्रव्य ही नय कहलाता है क्योंकि सत् द्रव्य समस्त द्रव्योंमें पाया जाता है, नीयमान है अर्थात् सभी पदार्थोंमें सत्त्व निरखा जाता है। उसकी अपेक्षासे सब पदार्थ एक हैं क्योंकि जीवादिक ६ पदार्थोंका अथवा उनके जो और भेद प्रभेद है अनन्तानन्त द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे, पर्याय रूपसे वे सब उस सद्द्रव्यकी पर्याय हैं अर्थात् भेद हैं। कहा भी है कि एक द्रव्य है और वह अनन्तपर्यायात्मक है। तो यों विवक्षासे सद्द्रव्य नयकी अपेक्षामें आकर सब वस्तु एक हैं और इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि वे सद्द्रव्य सब जगह सर्वथा पाये जाते हैं। किसी जगह विच्छेद नजर नहीं आता। जो वह है उसमें ही सत्त्व है। तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

यों प्रतीतिसे विरोध नहीं है और सब पदार्थोंमें यह असत् ही है, यह सत् ही है, इस तरह अबाधित रूपसे प्रत्यभिज्ञानका सद्भाव पाया जा रहा है। जब कि प्रध्वंसाभाव रूप भी कुछ अभाव है ऐसा तो द्रव्यसे भिन्न है द्रव्य नहीं है, किन्तु पदार्थ है। जैसे कि पदार्थ ७ प्रकारके कहे गए हैं—द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय और अभाव। तो द्रव्य तो नहीं है अभाव किन्तु पदार्थ है। यदि यह कह दिया जाय कि सब वस्तुओंमें भाव पाया जा रहा सद्द्रव्यता प्रतीत हो रही है, तो यह व्यभिचरित बात है, क्योंकि अभावमें तो द्रव्यपना नहीं है, वह तो द्रव्यसे पृथक पदार्थ है। उस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जब अभाव भी सद्द्रव्यकी पर्याय है तो कोई दूषण नहीं दिया जा सकता। अभाव कोई तुच्छाभाव नहीं है अर्थात् किसी भी वस्तुका सद्भाव न हो और एकदम असत्में अभावकी बात कही जाती हो सो नहीं है। सर्वथा असत्में न तो भावकी कल्पना होती है और न अभावकी कल्पना होती है। अभाव भी भावस्वरूप होता है इस कारण यह दूषण नहीं दिया जा सकता कि सब पदार्थोंमें सत् ही है, इस प्रकारसे प्रत्यभिज्ञान पाया जाता है।

जीवादिक पदार्थोंमें स्वस्वलक्षणकी अपेक्षाभेद होनेपर भी सत्वकी अपेक्षासे अभेद — अब शंकाकार कहता है कि जीवादिक जो विशेष पदार्थ हैं अनेक प्रकारके चेतन अचेतन व्यक्तिरूप पदार्थ हैं वे परस्परमें व्यावृत्तरूप हैं अर्थात् एक दूसरेसे हटे हुए हैं। उनको निवृत्तिरूप विवर्त ही विशेष है अथवा वे निवृत्तिरूप पर्याय में हैं तब फिर क्यों कहा जा रहा कि द्रव्य एक है? जब अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं और सभी एक दूसरेसे भिन्न हैं तब यह कैसे कह दिया कि एक द्रव्य है? इसमें तो विरोध आता है। सभी प्रकट भिन्न-भिन्न हैं, सब सत्ता न्यारी न्यारी है। तो एक द्रव्य नहीं है अनेक द्रव्य हैं. उन सभी पदार्थोंको एक बनानेमें विरोध है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जीवादिक यद्यपि नाना हैं और वे परस्पर एक दूसरेसे निवृत्त स्वभाव वाले हैं फिर भी उन सबको कथंचित् एक रूपसे कहनेमें विरोध नहीं है, क्योंकि कथंचित् सत्त्व विशिष्टताका वहाँ प्रतिभास भेद है ही। यद्यपि वे जीवादिक समस्त विशेष पदार्थ अनेक हैं और परस्परमें एक दूसरेके सत्त्वसे निवृत्त हैं अन्यापोह रूप हैं और काल आदिकके भेदसे उनमें भेद नजर आ रहा है, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव सभी प्रत्येक वस्तुमें उनके उनमें ही हैं, ऐसे विभिन्न होनेपर भी सद्रूपता सबमें एक समान है इस कारणसे उनमें एकत्व कहा जाय सद्रूपताकी अपेक्षासे तो इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। जैसे कि चित्र ज्ञानमें नीलादिक प्रतिभासकी बात कही जाती है, चित्रज्ञान कहते उसे हैं कि नील पीत आदिककी बुद्धिका प्रतिभास जहाँ चलता हो फिर भी वह अपने स्वरूपमें एक ही है। तो जैसे वहाँ नीलादिक प्रतिभास अनेकानेक हैं। फिर भी ज्ञानकी अविशेषतासे वहाँ एक ज्ञानाद्वैत मान लिया गया है वह चित्र प्रतिभास वाली बुद्धि एक ही कहलाती है क्योंकि जो बाह्यमें नानापन है, नाना पदार्थ हैं उनसे विलक्षण है यह चित्र प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाग वाली बुद्धि देखिये ! जो बाह्य विचित्रतायें हैं उनमें भेद कर देना तो शक्य है। उनमें विशेषता भेद, उनका स्वरूप स्वभाव, स्वलक्षण सर्व बता करके उनमें पृथक्करणकी बात कही जा सकती है, पर बुद्धिमें जो नीलादिक आकार आये हैं वह अशक्य विवेचन है। उनका पार्थक्य करना अशक्य है। इस कारणसे चित्रज्ञानको अशक्य विवेचन कहा है और तभी वे नीलादिक अनेक प्रतिभास भेद होनेपर भी एक ही माने गए हैं। तो जैसे एक चित्रज्ञानमें नीलादिक प्रतिभास अनेक माने गए हैं और उसे एक ही कहा गया है इसी प्रकार जीवादिक विशेषका भेद बहुत है। अनन्त जीव हैं, अनन्त पुद्गल हैं। अन्य भी द्रव्य हैं तो इतना विशेष होनेपर भी हैं तो सब एक सद्द्रव्य अर्थात् सबमें वह एक समान सत्त्व है। अस्तित्वका सामान्यमें क्या भेद।

पदार्थोंमें कालभेद देशभेद आकारभेदकी अपेक्षासे भेद होनेपर भी सत्त्वकी दृष्टिमें भेदका अभाव-- कालभेद होनेपर भी उस सद्रूपताका पार्थक्य नहीं किया जा सकता। भले ही उनमें विभिन्न परिणाम होते हैं, हों पर सद्रूपता तो सबमें समान है। पदार्थोंमें देशभेद भी पाया जा रहा। कोई पदार्थ किसी जगह है कोई पदार्थ अन्य देशमें है, और यों स्पष्ट प्रथक् समझमें आ रहा है, पर देशभेद होने पर भी सद्रूपतासे उनको प्रथक् नहीं किया जा सकता। सत् यहाँ भी पदार्थ है और सत् दूर देशमें, अन्य देशमें पड़ा हुआ भी पदार्थ है। और भी देखिये, जैसे आकार भेद तो बता दिया जाता है। घड़ा इस आकारमें है, कपड़ा उस आकारमें है। देश भेदसे रहने वाले पदार्थमें आकार भेदकी तो प्रतीति हो जाती है पर आकारभेद होने पर भी सत्त्वमें क्या भेद है ? यह भी है वह भी है ? तो इस तरह सद्रूपतासे उन पदार्थोंमें भेद नहीं माना गया है। और यदि सद्रूपतासे उन विशेषोंका किसी समय किसी जगह पार्थक्य बन जाय, अर्थात् वह सद्रूप न रहे तो उनका स्वरूप ही नष्ट हो गया। इस कारण संग्रहनयकी दृष्टिसे इन समस्त जीवादिक पदार्थोंमें एकत्वरूपसे व्यवहार कहा गया है।

किसी भी पदार्थ या धर्मको सद्रूपतासे पृथक माने जानेकी अशक्यता अब शङ्काकार कहता है कि देखिये ! जैसे सामान्य विशेष और समवाय इन तीनमें सद्रूपता नहीं है फिर भी उनके स्वरूपका अभाव नहीं है। वैशेषिक सिद्धान्त में सद्रूप तो द्रव्य, गुण, कर्म ये तीन पदार्थ माने गये हैं, किन्तु सामान्य, विशेष और समवाय ये तीन पदार्थ सद्रूप नहीं हैं और फिर भी उनका स्वरूप है। तो उस ही दृष्टिसे शंका की जा रही है कि जैसे सामान्य विशेष, समवाय, इनकी सद्रूपताका विवेचन है, पार्थक्य है फिर भी उनका अभाव नहीं। और इसी प्रकार प्रागभाव आदिक जो चार पदार्थ हैं प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव, ये भी सद्रूपसे अलग हैं। फिर भी ये पदार्थ माने गए हैं इसी तरह जीवादिक पदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी सद्रूपतासे पृथक् हो जानेपर भी उनका अभाव नहीं थोया जा सकता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सामान्य, विशेष समवाय और अभाव भी उस सत्के ही विवर्त हैं। इस कारणसे इस सामान्य, विशेष समवाय, अभावमें भी सद्रूपका पार्थक्य सिद्ध नहीं कर सकते। कारण यह है कि सामान्य कोई स्वतंत्र सत्त्व नहीं है। किन्तु जिस क्षेत्रमें जातिकी अपेक्षासे धर्मको निरखा जा रहा है सामान्यात्मक वही पदार्थ तो है। तो जैसे पदार्थ सत् है ऐसे ही वह सामान्य सत् है। यों ही विशेष, समवाय तादात्म्य जो कुछ भी देखे जा रहे हैं और यहाँ तक कि अभाव भी निरखा जा रहा है तो वह भी वस्तुके भावस्वरूप है। जैसे प्रागभाव उत्तर पर्यायका पहिली पर्यायमें अभाव तो उत्तर पर्यायका अभाव पहिली पर्यायके सद्भावरूप तो है, वही तो उत्तर पर्यायका प्रागभाव है। प्रध्वंसाभाव है, पूर्व पर्यायका उत्तर पर्यायमें अभाव, यों कहो व्यय और उत्पाद। तो जो व्यय है, पूर्व पर्यायका अभाव है वह उत्तर पर्यायके उत्पाद रूप ही तो है तो इस तरह अभाव भी भावस्वरूप सिद्ध होता है। तो इसका भी सद्रूपसे पार्थक्य कहना असिद्ध है। अन्यथा अर्थात् यदि इन तत्त्वोंको सद्रूपसे पृथक् कर दिया जाय तो फिर इनकी प्रमेयता नहीं बन सकती, अर्थात् ये प्रमाणके विषय न बन सकेंगे। और, तब अवस्तु बन जायेंगे क्योंकि जो सर्वथा सत्त्वसे भिन्न है उसको तो असत् ही कहा गया है इस कारण जीवादिक विशेष अर्थात् सभी पदार्थ काल आदिकका भेद रख रहे हैं। देश अलग है, काल अलग है, उनका पिण्ड अलग है, उनकी व्यक्तियाँ न्यारी हैं तिसपर भी स्यात् एक द्रव्य है क्योंकि सद्रूपताकी अविशेषता होनेसे। जैसे कि नीलादिकके पतिभास भेद होनेपर भी ज्ञानरूपताकी अविशेषता होनेसे चित्रज्ञानको एक कहा जाता है। इस तरह एकत्व और अनेकत्वके सम्बन्धमें वह पहिला भंग बना कि वस्तु सद्द्रव्यनयकी अपेक्षासे स्यात् एक है।

वस्तुमें व्यतिरेक दृष्टिसे स्याद् अनेकत्वकी सिद्धि—अब यह बतलाते हैं कि जिस प्रकार स्यात् एकपनेकी सिद्धि है उसी प्रकार व्यतिरेक दृष्टिसे, पर्याय अपेक्षासे जीवादिक विशेष अनेक हैं यह भी सिद्ध होता है। क्योंकि भेद रूपसे उनका दर्शन हो ही रहा है। प्रत्येक जीव न्यारे-न्यारे हैं, प्रत्येक पदार्थ पृथक् पृथक् हैं इस प्रकार भेदरूपसे ये सब पदार्थ पाये जाते हैं। जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने संख्या और संख्यावान पदार्थको भेदरूपसे देखा है। अथवा सभी जन समझते हैं कि संख्या कोई अलग है, संख्यावान पदार्थ अलग है। जैसे कहा १० केले तो १० की संख्याका अर्थ अलग है और केलेका अर्थ अलग है। जैसे संख्यावान वह पदार्थ केलेमें संख्याके स्वरूपसे अलग है। ऐसे ही जीवादिक विशेष भी भेद रूपसे देखे जा रहे हैं इस कारण स्यात् एक है स्यात् अनेक है। कोई ऐसा सोचे कि संख्या और संख्यावानमें भेद तो नहीं देखा जा रहा सो बात नहीं कह सकते। यदि संख्या और संख्यावानमें भेद न देखा जाय तो विशेष विशेष्यका विकल्प नहीं बन सकता। अथवा जैसे—किसी पुरुषको कहा कि यह कुण्डली है, क्योंकि वह अपने कानोंमें कुण्डल (आभूषण) पहिने हुए है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो देखिये, विशेषण विशेष्य भावरूपसे प्रयोग किया गया ना, कि यह पुरुष कुण्डली है, तो कुंडल और पुरुष जब इन दोनोंको भेदरूपसे भी देखा जाता हो तब ही तो विशेषण विशेष्य भाव बनता है। जैसे कहा—नीलकमल, तो वह कमल नीला है, तभी तो वहाँ विशेषण भावरूपसे प्रयोग किया गया है कि नील कमल। और, दृष्टान्तमें भेद इस कहने वालेके चित्तमें पड़ा हुआ है कि नीलका अर्थ और है, कमलका अर्थ और है। जो जो कमल हैं वे सब नील हैं, जो जो नील हैं वे सब कमल हैं। ऐसा नहीं है यह बात प्रतीतिमें है तो नील और कमल इनको भेदरूपसे जब प्रतीतिमें रख रहा है कोई तब ही कोई ऐसा प्रयोग कर सकता है कि नीलकमल। तो इस प्रकार सब जगह भेद देखा जा रहा है। भेद न देखा जानेपर फिर अनेक व्यवहार लुप्त हो जायेंगे।

वस्तुमें सर्वथा भेद व अनेकत्वकी भी अशक्यता—ऐसा भी कोई शङ्काकार न कह सकेगा कि फिर तो सब ही प्रकारसे भेद ही मान लीजिए। यदि जीवादिक विशेष भिन्न हैं अनेक हैं तो अनेक ही हैं, फिर उनको किसी प्रकार एक न मानना चाहिए। तो सर्वथा भेदका एकान्त मान लेनेपर उनमें संख्या संख्यावानमें सर्वथा एकपना मान लेनेपर फिर व्यपदेश भी न बन सकेगा कि ये १० हैं क्योंकि १० का नाम भी केला है और केलेका नाम भी १० है। तो जहाँ १० केले रखे हैं वहाँ यह प्रयोग है कि १० केले हैं तो यह व्यपदेश फिर न बन सकेगा, जब कि संख्या और संख्यावानमें सर्वथा भेद नहीं है। अब यहां शङ्काकार कहता है कि संख्यावान पदार्थ है इस प्रकार व्यपदेश होनेका कारण समवाय है, संख्या आदिक है और उसका संख्यावान पदार्थमें समवाय सम्बन्ध होता है। उस समवाय सम्बन्धके कारण संख्यावान पदार्थ हैं, १० केले हैं आदिक व्यवहार बन जाते हैं। इसके समाधानमें कहते हैं कि समवाय भी मान लें तिसपर भी चूँकि संख्या और संख्यावान भेद ही मान लिया गया तो समवाय भी उस व्यपदेशका कारण नहीं बन सकता। जो भिन्न पदार्थ है विन्ध्याचल हिमालय पर्वत आदिक ये जब बिल्कुल न्यारे न्यारे हैं तो उनमें कैसे कह दिया जायगा कि यह इसका है? तो यों ही संख्या संख्यावान जब एकान्ततः भिन्न मान लिए गए तो उनमें कुछ भी कल्पनायें करके व्यवहार नहीं बनाया जा सकता, उन्हें विशेषण विशेष्य भाव रूपसे नहीं कहा जा सकता। शङ्काकार कहता है कि १० केले हैं ऐसा जो संख्या संख्यावानका व्यवहार होता है उसका कारण है विशेषण-विशेष्य भाव अर्थात् समवेत जो संख्या संख्यावान है, अर्थात् जिनका समवाय सम्बन्ध बनाया गया है ऐसे संख्या संख्यावानमें विशेषण विशेष्यभाव है। १० हुए विशेषण केले हुए विशेष्य। यों विशेषण विशेष्य भाव उनके व्यवहारका निमित्त हो जायगा। तो इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह बताओ कि विशेषण विशेष्य भाव संख्या संख्यावानसे क्या सर्वथा भिन्न है जैसे कि भेदैकान्तकी हठ की है। तो यदि संख्या संख्यावानसे विशेषण विशेष्यभाव भिन्न है तो फिर उसका व्यपदेश करनेके लिए अन्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नामान्तरकी जरूरत पड़ेगी। फिर दूसरा विशेषण विशेष्य भाव ढूंढो। फिर वह विशेषण विशेष्यभाव इसका है ऐसा सम्बन्ध जोड़नेके लिए अन्य विशेषण विशेष्यभाव ढूंढो, इस तरह यहाँ अनवस्था दोष आ जायगा, अतः इन दार्शनिकोंको जो कि अभी संख्या संख्यावानमें भेद एकान्त और अभेद एकान्त बता रहे हैं। उन्हें कथंचित् संख्या संख्यावानमें स्वभावभेद दीखना चाहिए, क्योंकि संख्यावानके निश्चय होनेसे कहीं, संख्यावानमें अथवा संख्यामें निर्णय होनेपर भी अन्यत्र संशय देखे जा रहे हैं इससे भेदको समझ बना लेना चाहिए। जैसे एक फलमें रूपका तो निर्णय हो गया, अब रसका संशय चल रहा हो तो उससे सिद्ध होता है कि रूप और रस, इनमें परस्पर स्वभाव भेद है, इस प्रकार समझो भेदकी दृष्टिसे सर्व वस्तु स्यात अनेक हैं, यह सिद्ध होता है।

एकत्व अनेकत्वसे सम्बन्धित शेष पांच भङ्गोंकी निष्पत्ति—एकत्व और अनेकत्वके सम्बन्धमें यहाँ तक दो भंगोंका वर्णन किया है वस्तु स्यात् एक है, वस्तु स्यात् अनेक है इसमें प्रथम भंगकी दृष्टि तो थी सद्द्रव्यनयकी अपेक्षासे तथा व्यतिरेक (पर्याय) दृष्टिसे देखा गया अनेक। यहां पर्यायका अर्थ परिणमन ही नहीं किन्तु गुणभेद. पर्यायभेद। सभी प्रकारके भेदोंकी अपेक्षासे वस्तु अनेक हैं। अब बतलाते हैं कि जब इन्हीं दोनों दृष्टियोंसे क्रमसे विवक्षा की जाय तो वस्तु स्यात् उभय है, सद्द्रव्यनयकी अपेक्षासे एक है और भेद विवक्षासे अनेक है। इस प्रकार यह तृतीय भंग बना। अब जब दोनों दृष्टियोंकी एक साथ कोई विवक्षा करे तो दोनों नयोंको एक साथ दृष्टिमें रखकर वस्तु स्वरूप कहा नहीं जा सकता। इस कारणसे वस्तु स्यात् अवक्तव्य है। यहाँ तक चार भंग हुए अब सद्द्रव्यनयकी अपेक्षा तथा एक साथ कहनेमें असमर्थ है वह स्वरूप। इन दोनों विवक्षाओंसे वस्तु स्यात् एक अवक्तव्य है। अथवा कहो कि वह एक स्वलक्षण है. स्वलक्षण कहलाता है वस्तुका एक अभेद निजस्वरूप। वह है एक तिसपर भी वह कहा नहीं जा सकता इस कारणसे स्यात् एक अवक्तव्य है, यह पञ्चम भङ्ग हुआ। अब भेदकी विवक्षा में और एक साथ कहा जानेके लिए अशक्यता है इन दृष्टियोंमें वस्तु स्यात् अनेक अवक्तव्य है। यहाँ यह बात सिद्ध की गयी कि स्वलक्षण अर्थात् वस्तुका अभेद शाश्वत तन्मय स्वरूप जब भेद विवक्षासे निरखा गया तो वह अनेक प्रतीत होता था लेकिन उस ही को अब दूसरी दृष्टि और रखते हैं अर्थात् एक साथ कहनेकी विवक्षा करते हैं तब वह अवक्तव्य है। यों वस्तु स्यात् अनेक अवक्तव्य है। जब क्रमसे उन दोनों दृष्टियोंकी अपेक्षा करके देखते हैं तो वह सत् एक और अनेक रूप है फिर भी एक साथ कहा जाना अशक्य है अतएव स्यात् एक अनेक अवक्तव्य है। इस प्रकार सप्तभङ्गीकी प्रक्रिया लगा लेना चाहिए जिसका कि इस कारिकामें निर्देश किया है कि उत्तरत्राऽपियोजयेत् याने आगे के भंगोंमें भी ये सब प्रक्रियायें लगा लेना चाहिए।

दार्शनिक पद्धतिसे अनुमान प्रयोग द्वारा भंगोंका विवचन—अब इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही प्रसंगको दार्शनिक पद्धतिसे और उक्त कारिकाओंमें बतायी गई पद्धतियोंसे निरखिये—यहाँ एकत्व तो सिद्ध किया जा रहा है, पर एकत्वको सिद्ध करते समय अनेकान्त स्वतः सिद्ध हो जाता है। प्रधान और गौण विवक्षामें यह पद्धति बनती है। एक वस्तुमें एकत्व अपने प्रतिषेध्य अनेकत्वके साथ अविनाभावी है क्योंकि विशेषण होनेसे। जो विशेषण होता है वह अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी होता है। जैसे कि हेतुमें साधर्म्य वैधर्म्यके साथ अविनाभावी है। हेतुमें सपक्षकी बात कही जाती है तो सपक्षका वर्णन करना विपक्षकी भी याद दिलाता है। हेतुका विपक्षमें असत्व है इस प्रकार एक वस्तुमें एकत्वका वर्णन करना अनेकत्वको याद दिलाता है कि किसी दृष्टिसे वस्तुमें अनेकत्व भी है। इस तरह प्रथम भंगके प्रयोगसे सिद्धि हुई। अब द्वितीय भंगका प्रयोग सुनो! एक धर्मीमें अनेकत्व अपने प्रतिषेध्य एकत्वके साथ अविनाभावी है क्योंकि विशेषण होनेसे जैसे कि हेतुमें वैधर्म्य साधर्म्यके साथ अविनाभावी है, हेतुमें जब विपक्ष व्यावृत्त बतायी जा रही है तो वह वर्णन सपक्ष सत्वकी भी याद दिलाता है। विशेषण है ना अथवा साधर्म्य शब्द कहना ही यह सिद्ध करता है कि कोई वैधर्म्य भी है। इसी प्रकार एक धर्मीमें भेद विवक्षासे जो अनेकत्वकी बात कही जा रही है वह अपने प्रतिषेध्य एकत्वके साथ अविनाभावीपना सिद्ध करती है। इसी प्रकार एकत्व अनेकत्वका उभय भी अपने प्रतिषेध्य अवक्तव्यके साथ अविनाभावी है क्योंकि विशेषण होनेसे। अथवा जो यह उभयात्मकपना है सो अनेक हेतुओंसे सिद्ध होता है। वस्तु स्यात् अनेक है विशेषण होनेसे, विशेष्य होनेसे, शब्दगोचर होनेसे और वस्तु होनेसे। वहाँ एक पदार्थ विशेषण रूप भी होता है और विशेष्य रूप भी होता है। जैसे कि कोई हेतु अपने साध्यको अपेक्षासे हेतु रूप है, और जो साध्य नहीं है उस तत्त्वकी अपेक्षासे अहेतुरूप है। तो जैसे साधन धर्म अपेक्षासे हेतुरूप और अहेतुरूप होता है इसी प्रकार यह विशेष्य है शब्दगोचर होनेसे अथवा शब्दगोचर है विशेष्य होनेसे अथवा विशेष्य है और शब्द गोचर है वस्तु होनेसे। यों परस्पर हेतुओं द्वारा परस्पर तत्त्वकी सिद्धि की जाती है।

विशेषणत्वादि हेतुओंका स्वाभिधेयप्रतिपक्षाविनाभावित्व विशेषणत्व यहाँ साधन धर्म है अर्थात् अनुमान प्रयोगमें हेतुरूपसे प्रयुक्त किया गया है पर विशेषण होनेपर भी जो कि अपने विशेष्यकी अपेक्षा है वह अपने प्रतिषेध्य विशेष्यके साथ अविनाभावी है विशेषण होनेसे। इस अनुमान प्रयोगमें वही अपेक्षासे विशेष्य, विशेषण बनता है इस कारण विशेषणत्वादिक हेतुओंमें व्यभिचार दोष नहीं दिया जा सकता। यहाँ तभी कोई यह आशंका नहीं कर सकता है कि विशेषण तो केवल पक्षका धर्मरूप बन गया सो यहाँ विशेषणत्व हेतु व्यभिचारी हो गया कि देखो साध्य विशेषण है पर यह अपने प्रतिपक्षके साथ अविनाभावी नहीं है। विशेषणत्व विशेष्यत्वके साथ अविनाभावी नहीं है, इसीप्रकार विशेष्यत्व हेतुमें भी व्यभिचार नहीं है क्योंकि अपने विशेषण की अपेक्षा वह विशेष्य है फिर भी अपने प्रतिपक्ष विशेषणत्वके साथ अविनाभावी है,

Version 1

जो भी कहा जाय वह अपने प्रतिपक्षका संकेत कर ही देता है, शब्द गोचरत्वका हेतुका भी जो प्रयोग किया गया है वह भी अनेकांतिक दोषसे दूषित नही है, क्योंकि शब्द-गोचरत्वका अपने प्रतिषेध्य शब्दान्तर गोचरत्व अर्थात् अन्य शब्दोंके द्वारा विषयभूत नहीं है, प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी हैं, जो शब्दगोचर है वह अन्य शब्दोंके द्वारा विषयभूत नहीं है इसी प्रकार वस्तुत्व जो साधन कहा गया है कि ये सब विधेय प्रति-षेधात्मक हैं एकानेकात्मक हैं वस्तुत्व होनेसे, तो वस्तुत्व जो साधन कहा गया है उसमें भी कोई व्यभिचार नहीं है क्योंकि अनेकान्तवादियोंके यहाँ ऐसा भी प्रतीतिमें विरोध नहीं है कि वस्तुत्वधर्म वस्तुका एक अश ही तो कहा गया है, सो वह वस्तुत्वधर्म किसी दृष्टिसे अपने प्रतिषेध्य अवस्तुत्वके साथ अविनाभावी है, तब प्रक्रिया विपरीत रूपसे कर दी जाती है, जैसे पदार्थ अपने स्वरूप चतुष्टयसे नहीं है तब इसी प्रक्रियाको विप-रीत करके बोले कोई कि पररूप चतुष्टयसे है, स्वरूप चतुष्टयसे नहीं है तो इस प्रकारसे तो वह नहीं है। यों इन विपरीत प्रक्रियावोंमें अवस्तु है वह, वस्तु तो वह अपनी शुद्ध प्रक्रियामें है। तो जितने भी ये हेतु कहे गए हैं ये सब हेतु भी अपने प्रतिषेध्यके साथ अविनाभावी हैं इस कारणसे इनका प्रतीतिमें कोई विरोध नहीं है।

सर्वथा विधि निषेधसे अनवस्थित अथवा कथंचित् विधिनिषेधसे अव-स्थित वस्तुकी अर्थक्रियाकारिता—उक्त विवरणसे यह निश्चय कीजिये कि एकत्व और अनेकत्वसे अनवस्थित अर्थात् वस्तु न सर्वथा एक है न सर्वथा अनेक है, यों सर्वथा एकत्व और अनेकत्वसे अनवस्थित सप्तभङ्गीमें आरूढ होकर अपनी सप्तभङ्गी पद्धति प्रयुक्त होकर ये जीवादिक वस्तु हैं अर्थात् जीवादिक पदार्थ न सर्वथा एक हैं न सर्वथा अनेक हैं इस तरहसे सर्वथा विधि निषेधसे सर्वथा अनेक हैं इस तरहसे सर्वथा विधि निषेधसे अनवस्थित होती हुई ही वस्तु कार्यकारी बनती है अन्यथा यदि जीवको सर्वथा एक मान लिया जाय तो उसमें अर्थ क्रिया नहीं बन सकती। जो अपरिणामी है, सर्वथा एक है उसमें जब किसी भी प्रकार भेद नहीं, परिणति नहीं, व्यतिरेककी बात बनती ही नहीं तो वहाँ अर्थक्रिया कहेंगे किसे ? इसी प्रकार वस्तुको सर्वथा अनेक मान लिया जाय, जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने वस्तुमें देखा सामान्य, विशेष गुण पर्यायें तो ऐसा कुछ भेद निरखकर उनको सर्वथा स्वतंत्र सत् मानने लगेंगे कि वस्तु गुण भी है कर्म भी है, सामान्य भी है, विशेष भी है। तो यह हुआ उनका अनेकैकान्त। इस तरह अनेकैकान्त माननेपर भी वस्तुकी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। अर्थक्रिया हुआ करती है क्रमसे अथवा अक्रमसे। तो जब वस्तु सर्वथा एक है तो भी दोनों ही विधियोंसे अर्थ क्रिया नहीं है। जब वस्तु सर्वथा अनेक हो तो अनेक है तो वहां अर्थक्रिया किसमें कहेंगे ? कोई मूलभूत वस्तु तो मानी ही नहीं गई। इस प्रकार सर्वथा एकका एकान्त करेंगे तब भी अर्थक्रिया नहीं बनती, सर्वथा अनेकका एकान्त कहेंगे तब भी अर्थक्रिया नहीं बनती। इस तरह वस्तुको मानना होगा कि वह कथंचित् सत् और असत् है इसी प्रकार वह कथंचित् एक और अनेक है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

एकान्तवादमें दूषण और अनेकान्त शासनकी निर्बाधता दिखाते हुए शासनके प्रणेता वीतराग सर्वज्ञदेवके आप्तत्वकी सिद्धि—इस प्रथम परिच्छेद में जहां कि आप्तमीमांसामें प्रस्ताव किया गया कि आप्त कौन हो सकता है ? तो यह कहा गया कि प्रभु आप ही आप्त हैं, क्योंकि आपका वचन निर्दोष है । आपके शासन में कोई विरोध नहीं है अथवा दूसरेके शासनमें किस तरह विरोध है उसका दिग्दर्शन करानेके लिये यहां थोड़े सत् एकान्त, असत् एकान्त और एक एकान्त अनेक एकान्त इस तरह एकान्त सिद्धान्तोंकी सदोषताका वर्णन करके यह बात स्थापितकी कि सर्वथा एक और अनेकके सिद्धान्तमें अर्थक्रिया नहीं बनती, और जब कथंचित एक और अनेक मान लिया जाता है तो वहां अर्थक्रिया सिद्ध हो जाती है। इस तरह हे प्रभो! आपके शासनमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है अतएव आप ही आप्त हो ।

Version 1